गुप्त धन

१

हिंदुस्तानी एकेडेमी पुस्तकालय

प्रेमचंद

१

प्रस्तुतकर्ता - अमृत राय

हंस प्रकाशन
इलाहाबाद

© अमृत राय

प्रकाशक — हंस प्रकाशन, इलाहाबाद

मुद्रक — सम्मेलन मुद्रणालय, इलाहाबाद

आवरण-सज्जा — कृष्ण चंद्र श्रीवास्तव

प्रथम संस्करण — प्रेमचंद स्मृति दिवस १९६२

मूल्य — आठ रुपया

भूमिका

'गुप्तधन' के दो खण्डों में प्रेमचंद की छप्पन नयी कहानियाँ दी जा रही हैं। ये कहानियाँ इस अर्थ में नयी नहीं हैं कि इतनी नयी पाण्डुलिपियाँ मिली हैं। वह कैसे होता? कहानियों की जिस क़दर माँग रहती है, साधारण जाने-माने लेखक के पास भी कहानी नहीं बचती, प्रेमचंद की तो बात ही और है।

ये कहानियाँ नयी इस अर्थ में हैं कि हिन्दी पाठकों के सामने पहली बार संकलित होकर आ रही हैं। हर कहानी के अंत में सूत्र का संकेत दिया हुआ है और जैसा कि आप देखेंगे, इनमें से अधिकांश कहानियाँ हमको मुंशीजी के उर्दू कहानी-संग्रहों और पुरानी पत्रिकाओं से मिली हैं और कुछ हैं जो हिन्दी की पुरानी पत्रिकाओं में दबी पड़ी थीं। क्यों ये कहानियाँ उर्दू से हिन्दी में नहीं आयीं या जो हिन्दी में हैं भी, क्यों उन्हें संकलित नहीं किया गया—यह मैं नहीं कह सकता। यही अनुमान होता है कि मुंशीजी चीज़ों के रख-रखाव के मामले में जिस क़दर लापरवाह थे, समय पर उनको ये कहानियाँ न मिली होंगी, कटिंग न रखी होंगी, फ़ाइल इधर-उधर हो गयी होगी, शायद कुछ कहानियाँ ध्यान से भी उतर गयी हों, जो भी बात रही हो, ये कहानियाँ छूट गयीं। गुमशुदा कहानियों का यह नया ख़ज़ाना, यह गुप्त धन, आपके सामने रखते हुए मुझे वास्तव में बड़ा हर्ष हो रहा है—यही कि मेहनत ठिकाने लगी, एक ढंग का काम हुआ। 'सोजे वतन' की चार कहानियाँ भी, जो पहले और कहीं नहीं छपीं, इस किताब में शामिल कर ली गयी हैं। इस तरह इन कहानियों को लेकर प्रेमचंद की कुल कहानियों की संख्या २१० से २६६ हो जाती है। मेरा अनुमान है कि अभी तीस-चालीस कहानियाँ और मिलनी चाहिए। उर्दू-हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की पुरानी फ़ाइलें—और हिन्दी से

भी ज्यादा उर्दू पत्र-पत्रिकाओं की फ़ाइलें — आसानी से नहीं मिलतीं। अकसर खण्डित मिलती हैं। कम जाने-माने और साप्ताहिक-पाक्षिक पत्रों की तो प्रायः नहीं मिलतीं। उदाहरण के लिए गणेश शंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' की फ़ाइल का न मिलना बड़े ही कष्ट की बात है। मेरा विश्वास है कि उसमें मुंशीजी की कुछ कहानियाँ मिलनी चाहिए। इतना तो निश्चित है कि उसमें मुंशीजी की पहली हिन्दी कहानी है। एक चिट्ठी में इसका संकेत मिलता है। लेकिन वह कहानी कौन-सी है, कैसी है, किसी संग्रह में संकलित होकर प्रकाशित होती रही है या नहीं — यह सब कुछ भी पता नहीं चल सकता जब तक वह फ़ाइल देखने को न मिले। और कहीं न मिले, 'प्रताप' कार्यालय में ज़रूर मिलेगी, इस विश्वास से मैं वहाँ गया, पर निराश होना पड़ा। पर मैं पूरी तरह निराश नहीं हूँ और सच तो यह है कि पुराने पत्रों की छानबीन अभी उस आत्यंतिक लगन से की भी नहीं जा सकी है जो कि अपेक्षित है। मुझे यक़ीन है कि अगले कुछ बरसों में मुझे या मेरे किसी और उत्साही भाई को और भी कुछ कहानियाँ मिलेंगी।

उर्दू से प्राप्त कहानियों को ज्यों का त्यों छाप देना हिन्दी पाठकों के प्रति अन्याय समझकर मैंने उनको हिन्दी का जामा पहनाया है — मुंशीजी की अपनी हिन्दी का, यानी जहाँ तक मुझसे हो सका। कहानी की आत्मा ही नहीं, भाषा और शैली की भी रक्षा करने के इस प्रयत्न में मुझे कहाँ तक सफलता मिली है या नहीं मिली, इसका निर्णय तो आप करेंगे, पर मुझे संतोष है कि मैंने अपनी ओर से इसमें कुछ उठा नहीं रखा।

उर्दू संग्रहों में मुंशीजी की दो कहानियाँ 'बरात' और 'क़ातिल की माँ' ऐसी मिलीं जो हिन्दी में नहीं मिलतीं। मुझे उनको भी शामिल कर लेना चाहिए था। लेकिन मैंने उनको छोड़ देना ही ठीक समझा क्योंकि वही या लगभग वही कहानियाँ, बहुत थोड़े हेर-फेर के साथ, श्रीमती शिवरानी प्रेमचंद के कहानी संग्रह 'नारी हृदय' में मिलती हैं। उनके शीर्षक क्रमशः 'वर-

यात्रा' और 'हत्यारा' हैं। संग्रह में आने के पहले ये दोनों ही कहानियाँ 'हंस' में छपी थीं, खुद मुंशीजी ने उन्हें छापा था। मुंशीजी के नाम से ये कहानियाँ कब और कैसे उर्दू में छपने लगीं, इस रहस्य का उद्घाटन हुए बिना उन कहानियों को इस संग्रह में शामिल करना ठीक नहीं जान पड़ा। हो सकता है कि वे संग्रह मुंशीजी के देहान्त के बाद प्रकाशकों ने अपने मन से तैयार कर लिये हों। जो भी बात हो, वे कहानियाँ विवादास्पद हैं और उनको यहाँ शामिल नहीं किया गया।

'ताँगेवाले की बड़' और 'शादी की वजह' सही मानों में कहानी की प्रेमचंदी परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आतीं, लेकिन अत्यंत रोचक हैं, कहानी के समान ही रोचक, उन्हें किसी तरह छोड़ा नहीं जा सकता था और लेखों के साथ उनको देना उनकी मिट्टी ख़राब करना होता क्योंकि वे लेख से ज्यादा कहानी के क़रीब हैं और उनकी चाशनी बिल्कुल कहानी की है, इसलिए उन्हें यहीं शामिल कर लिया गया है। ये दोनों ही चीजें 'जमाना' में छपी थीं और 'बंबूक़' के नाम से छपी थीं। पता लगाने पर मालूम हुआ कि अपनी हलकी-फुलकी चीजों के लिए मुंशीजी कभी-कभी इस नाम का इस्तेमाल करते थे जो १९०५ के आसपास कानपुर में ही उन्हें अपने क़रीबी दोस्तों की महफ़िल में मिल चुका था।

अमृत राय

अनुक्रम

गुप्त धन – १

दुनिया का सबसे अनमोल रतन

दिलफ़िगार एक कँटीले पेड़ के नीचे दामन चाक किये बैठा हुआ खून के आँसू बहा रहा था। वह सौन्दर्य की देवी यानी मलका दिलफ़रेब का सच्चा और जान देनेवाला प्रेमी था। उन प्रेमियों में नहीं, जो इत्र-फुलेल में बसकर और शानदार कपड़ों से सजकर आशिक़ के वेश में माशूक़ियत का दम भरते हैं। बल्कि उन सीधे-सादे भोले-भाले फ़िदाइयों में जो जंगल और पहाड़ों से सर टकराते हैं और फ़रियाद मचाते फिरते हैं। दिलफ़रेब ने उससे कहा था कि अगर तू मेरा सच्चा प्रेमी है, तो जा और दुनिया की सबसे अनमोल चीज़ लेकर मेरे दरबार में आ। तब मैं तुझे अपनी गुलामी में क़बूल करूँगी। अगर तुझे वह चीज़ न मिले तो ख़बरदार इधर रुख़ न करना, वर्ना सूली पर खिचवा दूँगी। दिलफ़िगार को अपनी भावनाओं के प्रदर्शन का, शिकवे-शिकायत का, प्रेमिका के सौन्दर्य-दर्शन का तनिक भी अवसर न दिया गया। दिलफ़रेब ने ज्योंही यह फ़ैसला सुनाया उसके चोबदारों ने ग़रीब दिलफ़िगार को धक्के देकर बाहर निकाल दिया। और आज तीन दिन से यह आफ़त का मारा आदमी उसी कँटीले पेड़ के नीचे उसी भयानक मैदान में बैठा हुआ सोच रहा है कि क्या करूँ। दुनिया की सब से अनमोल चीज़ मुझको मिलेगी? नामुमकिन! और वह है क्या? क़ारूँ का ख़ज़ाना? आबे हयात? खुसरो का ताज? जामे-जम? तख्ते ताऊस? परवेज़ की दौलत? नहीं, यह चीज़ें हरगिज़ नहीं। दुनिया में ज़रूर इनसे भी मँहगी, इनसे भी अनमोल चीज़ें मौजूद हैं मगर वह क्या हैं? कैसे मिलेंगी? या खुदा, मेरी मुश्किल क्योंकर आसान होगी?

दिलफ़िगार इन्हीं खयालों में चक्कर खा रहा था और अक्ल कुछ काम नहीं करती थी। मुनीर शामी को हातिम-सा मददगार मिल गया। ऐ काश कोई मेरा भी मददगार हो जाता, ऐ काश मुझे भी उस चीज़ का, जो दुनिया की सबसे बेशक़ीमत चीज़ है, नाम बतला दिया जाता! बला से वह चीज़ हाथ न आती मगर मुझे इतना तो मालूम हो जाता कि वह किस किस्म की चीज़ है। मैं घड़े बराबर मोती की खोज में जा सकता हूँ। मैं समुन्दर का गीत, पत्थर का दिल, मौत की आवाज़ और इनसे भी ज्यादा बेनिशान चीज़ों की तलाश में कमर कस

सकता हूँ। मगर दुनिया की सबसे अनमोल चीज़! यह मेरी कल्पना की उड़ान से बहुत ऊपर है।

आसमान पर तारे निकल आये थे। दिलफ़िगार यकायक खुदा का नाम लेकर उठा और एक तरफ़ को चल खड़ा हुआ। भूखा-प्यासा, नंगे बदन, थकन से चूर, वह बरसों वीरानों और आबादियों की ख़ाक छानता फिरा, तलवे काँटों से छलनी हो गये, शरीर में हड्डियाँ ही हड्डियाँ दिखायी देने लगीं मगर वह चीज़, जो दुनिया की सबसे बेशक़ीमत चीज़ थी, न मिली और न उसका कुछ निशान मिला।

एक रोज़ वह भूलता-भटकता एक मैदान में जा निकला, जहाँ हज़ारों आदमी गोल बाँधे खड़े थे। बीच में कई अमामे और चोग़ेवाले दढ़ियल क़ाज़ी अफ़सरी शान से बैठे हुए आपस में कुछ सलाह-मशविरा कर रहे थे और इस जमात से ज़रा दूर पर एक सूली खड़ी थी। दिलफ़िगार कुछ तो कमज़ोरी की वजह से और कुछ यहाँ की कैफ़ियत देखने के इरादे से ठिठक गया। क्या देखता है, कि कई लोग नंगी तलवारें लिये, एक क़ैदी को, जिसके हाथ-पैर में ज़ंजीरें थीं, पकड़े चले आ रहे हैं। सूली के पास पहुँचकर सब सिपाही रुक गये और क़ैदी की हथकड़ियाँ-बेड़ियाँ सब उतार ली गयीं। इस अभागे आदमी का दामन सैकड़ों बेगुनाहों के खून के छींटों से रंगीन था, और उसका दिल नेकी के खयाल और रहम की आवाज़ से ज़रा भी परिचित न था। उसे काला चोर कहते थे। सिपाहियों ने उसे सूली के तख्ते पर खड़ा कर दिया, मौत की फाँसी उसकी गर्दन में डाल दी और जल्लादों ने तख्ता खींचने का इरादा किया कि वह अभागा मुजरिम चीख़कर बोला——खुदा के वास्ते मुझे एक पल के लिए फाँसी से उतार दो ताकि अपने दिल की आख़िरी आरज़ू निकाल लूं। यह सुनते ही चारों तरफ सन्नाटा छा गया। लोग अचम्भे में आकर ताकने लगे। क़ाज़ियों ने एक मरनेवाले आदमी की अंतिम याचना को रद करना उचित न समझा और बदनसीब पापी काला चोर ज़रा देर के लिए फाँसी से उतार लिया गया।

इसी भीड़ में एक खूबसूरत भोला-भाला लड़का एक छड़ी पर सवार होकर अपने पैरों पर उछल-उछल फ़र्जी घोड़ा दौड़ा रहा था, और अपनी सादगी की दुनिया में ऐसा मगन था कि जैसे वह इस वक्त सचमुच अरबी घोड़े का शहसवार है। उसका चेहरा उस सच्ची खुशी से कमल की तरह खिला हुआ था जो चन्द दिनों के लिए बचपन ही में हासिल होती है और जिसकी याद हमको मरते दम तक नहीं

भूलती। उसका दिल अभी तक पाप की गर्द और धूल से अछूता था और मासूमियत उसे अपनी गोद में खिला रही थी।

बदनसीब काला चोर फाँसी से उतरा। हज़ारों आँखें उस पर गड़ी हुई थीं। वह उस लड़के के पास आया और उसे गोद में उठाकर प्यार करने लगा। उसे इस वक्त वह ज़माना याद आया जब वह खुद ऐसा ही भोला-भाला, ऐसा ही खुश-व-खुर्रम और दुनिया की गंदगियों से ऐसा ही पाक-साफ़ था। माँ गोदियों में खिलाती थी, बाप बलाएँ लेता था और सारा कुनबा जान न्योछावर करता था। आह, काले चोर के दिल पर इस वक्त बीते हुए दिनों की याद का इतना असर हुआ कि उसकी आँखों से, जिन्होंने दम तोड़ती हुई लाशों को तड़पते देखा और न झपकीं, आँसू का एक क़तरा टपक पड़ा। दिलफ़िगार ने लपककर उस अनमोल मोती को हाथ मे ले लिया और उसके दिल ने कहा—बेशक यह दुनिया की सबसे अनमोल चीज़ है जिस पर तख्ते ताऊस और जामे जम और आबे हयात और ज़रे परवेज़ सब न्योछावर हैं।

इस ख़याल से खुश होता, कामयाबी की उम्मीद में सरमस्त, दिलफ़िगार अपनी माशूका दिलफ़रेब के शहर मीनोसवाद को चला। मगर ज्यों ज्यों मंज़िलें तय होती जाती थीं उसका दिल बैठा जाता था कि कहीं उस चीज़ की, जिसे मैं दुनिया की सबसे बेशक़ीमत चीज़ समझता हूँ, दिलफ़रेब की आँखों में क़द्र न हुई तो मैं फाँसी पर चढ़ा दिया जाऊँगा और इस दुनिया से नामुराद जाऊँगा। लेकिन जो हो सो हो, अब तो क़िस्मत-आज़माई है। आख़िरकार पहाड़ और दरिया तय करते शहर मीनोसवाद में आ पहुँचा और दिलफ़रेब की ड्योढ़ी पर जाकर विनती की कि थकान से टूटा हुआ दिलफ़िगार ख़ुदा के फ़ज़ल से हुक्म की तामील करके आया है, और आपके क़दम चूमना चाहता है। दिलफ़रेब ने फ़ौरन अपने सामने बुला भेजा और एक सुनहरे परदे की ओट से फ़रमाइश की कि वह अनमोल चीज़ पेश करो। दिलफ़िगार ने आशा और भय की एक विचित्र मन:स्थिति में वह बूँद पेश की और उसकी सारी कैफ़ियत बहुत पुरअसर लफ्ज़ों में बयान की। दिलफ़रेब ने पूरी कहानी बहुत ग़ौर से सुनी और वह भेंट हाथ में लेकर ज़रा देर तक ग़ौर करने के बाद बोली—दिलफ़िगार, बेशक तूने दुनिया की एक बेशक़ीमत चीज़ ढूंढ़ निकाली, तेरी हिम्मत और तेरी सूझ-बूझ की दाद देती हूँ! मगर यह दुनिया की सबसे बेशक़ीमत चीज़ नहीं, इसलिए तू यहाँ से जा और फिर कोशिश कर, शायद अब की तेरे हाथ वह मोती लगे और तेरी क़िस्मत में मेरी गुलामी लिखी हो।

जैसा कि मैंने पहले ही बतला दिया था, मैं तुझे फाँसी पर चढ़वा सकती हूँ मगर मैं तेरी जाँबख्शी करती हूँ इसलिए कि तुझमें वह गुण मौजूद हैं, जो मैं अपने प्रेमी में देखना चाहती हूँ और मुझे यक़ीन है कि तू जरूर कभी-न-कभी कामयाब होगा।

नाकाम और नामुराद दिलफ़िगार इस माशूक़ाना इनायत से ज़रा दिलेर होकर बोला—ऐ दिल की रानी, बड़ी मुद्दत के बाद तेरी ड्योढ़ी पर सजदा करना नसीब होता है। फिर खुदा जाने ऐसे दिन कब आएँगे, क्या तू अपने जान देनेवाले आशिक़ के बुरे हाल पर तरस न खायेगी और क्या अपने रूप की एक झलक दिखाकर इस जलते हुए दिलफ़िगार को आनेवाली सख्तियों के झेलने की ताक़त न देगी ? तेरी एक मस्त निगाह के नशे से चूर होकर मैं वह कर सकता हूँ जो आज तक किसी से न बन पड़ा हो।

दिलफ़रेब आशिक़ की यह चाव भरी बातें सुनकर गुस्सा हो गयी और हुक्म दिया कि इस दीवाने को खड़े-खड़े दरबार से निकाल दो। चोबदार ने फौरन ग़रीब दिलफ़िगार को धक्का देकर यार के कूचे से बाहर निकाल दिया।

कुछ देर तक तो दिलफ़िगार अपनी निष्ठुर प्रेमिका की इस कठोरता पर आँसू बहाता रहा, और फिर सोचने लगा कि अब कहाँ जाऊँ। मुद्दतों रास्ते नापने और जंगलों में भटकने के बाद आँसू की यह बूंद मिली थी, अब ऐसी कौन-सी चीज़ है जिसकी क़ीमत इस आबदार मोती से ज्यादा हो। हज़रते ख़िज्र ! तुमने सिकन्दर को आबे हयात के कुएँ का रास्ता दिखाया था, क्या मेरी बाँह न पकड़ोगे ? सिकन्दर सारी दुनिया का मालिक था। मैं तो एक बेघरबार मुसाफ़िर हूँ। तुमने कितनी ही डूबती किश्तियाँ किनारे लगायी हैं, मुझ ग़रीब का बेड़ा भी पार करो। ऐ आली-मुक़ाम जिबरील ! कुछ तुम्हीं इस नीमजान दुखी आशिक़ पर तरस खाओ। तुम खुदा के एक खास दरबारी हो, क्या मेरी मुश्किल आसान न करोगे ? ग़रज़ यह कि दिलफ़िगार ने बहुत फ़रियाद मचायी मगर उसका हाथ पकड़ने के लिए कोई सामने न आया। आखिर निराश होकर वह पागलों की तरह दुबारा एक तरफ़ को चल खड़ा हुआ।

दिलफ़िगार ने पूरब से पच्छिम तक और उत्तर से दक्खिन तक कितने ही जंगलों और वीरानों की खाक छानी, कभी बर्फ़िस्तानी चोटियों पर सोया, कभी डरावनी घाटियों में भटकता फिरा मगर जिस चीज़ की धुन थी वह न मिली, यहाँ तक कि उसका शरीर हड्डियों का एक ढाँचा रह गया।

एक रोज़ वह शाम के वक्त किसी नदी के किनारे ख़स्ताहाल पड़ा हुआ था। बेख़ुदी के नशे से चौंका तो क्या देखता है कि चन्दन की एक चिता बनी हुई है और उस पर एक युवती सुहाग के जोड़े पहने सोलहो सिंगार किये बैठी है। उसकी जाँघ पर उसके प्यारे पति का सर है। हज़ारों आदमी गोल बाँधे खड़े हैं और फूलों की बरखा कर रहे हैं। यकायक चिता में से ख़ुद-ब-ख़ुद एक लपक उठी। सती का चेहरा उस वक्त एक पवित्र भाव से आलोकित हो रहा था, चिता की पवित्र लपटें उसके गले से लिपट गयीं और दम के दम में वह फूल-सा शरीर राख का ढेर हो गया। प्रेमिका ने अपने को प्रेमी पर न्योछावर कर दिया और दो प्रेमियों के सच्चे, पवित्र, अमर प्रेम की अन्तिम लीला आँख से ओझल हो गयी। जब सब लोग अपने घरों को लौटे तो दिलफ़िगार चुपके से उठा और अपने चाक-दामन कुरते में यह राख का ढेर समेट लिया और इस मुट्ठी भर राख को दुनिया की सबसे अनमोल चीज समझता हुआ, सफलता के नशे में चूर, यार के कूचे की तरफ़ चला। अबकी ज्यों-ज्यों वह अपनी मंजिल के क़रीब आता था, उसकी हिम्मत बढ़ती जाती थी। कोई उसके दिल में बैठा हुआ कह रहा था—अबकी तेरी जीत है और इस ख़याल ने उसके दिल को जो-जो सपने दिखाये उनकी चर्चा व्यर्थ है। आख़िरकार वह शहर मीनोसवाद में दाख़िल हुआ और दिलफ़रेब की ऊँची ड्योढ़ी पर जाकर ख़बर दी कि दिलफ़िगार सुर्ख़-रू होकर लौटा है, और हुज़ूर के सामने आना चाहता है। दिलफ़रेब ने जाँबाज़ आशिक़ को फ़ौरन दरबार में बुलाया और उस चीज़ के लिए, जो दुनिया की सबसे बेशक़ीमत चीज़ थी, हाथ फैला दिया। दिलफ़िगार ने हिम्मत करके उसकी चाँदी जैसी कलाई को चूम लिया और मुट्ठी भर राख को उसकी हथेली में रखकर सारी कैफियत दिल को पिघला देनेवाले लफ़्ज़ों में कह सुनायी और अपनी सुन्दर प्रेमिका के होंठों से अपनी क़िस्मत का मुबारक फ़ैसला सुनने के लिए इन्तज़ार करने लगा। दिलफ़रेब ने उस मुट्ठी भर राख को आँखों से लगा लिया और कुछ देर तक विचारों के सागर में डूबे रहने के बाद बोली—ऐ जान निछावर करनेवाले आशिक़ दिलफ़िगार! बेशक यह राख जो तू लाया है, जिसमें लोहे को सोना कर देने की सिफ़त है, दुनिया की बहुत बेशक़ीमत चीज़ है और मैं सच्चे दिल से तेरी एहसानमन्द हूँ कि तूने ऐसी अनमोल भेंट दी। मगर दुनिया में इससे भी ज्यादा अनमोल कोई चीज़ है, जा उसे तलाश कर और तब मेरे पास आ। मैं तहेदिल से दुआ करती हूँ कि ख़ुदा तुझे कामयाब करे। यह कहकर वह सुनहरे परदे से बाहर आयी और माशूक़ाना अदा से अपने

रूप का जलवा दिखाकर फिर नज़रों से ओझल हो गयी। एक बिजली थी कि कौंधी और फिर बादलों के परदे में छिप गयी। अभी दिलफ़िगार के होश-हवास ठिकाने पर न आने पाये थे कि चोबदार ने मुलायमियत से उसका हाथ पकड़कर यार के कूचे से उसको निकाल दिया और फ़िर तीसरी बार वह प्रेम का पुजारी निराशा के अथाह समुन्दर में ग़ोता खाने लगा।

दिलफ़िगार का हियाव छूट गया। उसे यक़ीन हो गया कि मैं दुनिया में इसी तरह नाशाद और नामुराद मर जाने के लिए पैदा किया गया था और अब इसके सिवा और कोई चारा नहीं कि किसी पहाड़ पर चढ़कर नीचे कूद पड़ूँ ताकि माशूक़ के जुल्मों की फ़रियाद करने के लिए एक हड्डी भी बाक़ी न रहे। वह दीवाने की तरह उठा और गिरता-पड़ता एक गगनचुम्बी पहाड़ की चोटी पर जा पहुँचा। किसी और समय वह ऐसे ऊँचे पहाड़ पर चढ़ने का साहस न कर सकता था मगर इस वक्त जान देने के जोश में उसे वह पहाड़ एक मामूली टेकरी से ज्यादा ऊँचा न नज़र आया। क़रीब था कि वह नीचे कूद पड़े कि हरे-हरे कपड़े पहने हुए और हरा अमामा बाँधे एक बुज़ुर्ग एक हाथ में तसबीह और दूसरे हाथ में लाठी लिये बरामद हुए और हिम्मत बढ़ानेवाले स्वर में बोले—दिलफ़िगार, नादान दिलफ़िगार, यह क्या बुज़दिलों जैसी हरकत है! तू मुहब्बत का दावा करता है और तुझे इतनी भी खबर नहीं कि मज़बूत इरादा मुहब्बत के रास्ते की पहली मंज़िल है? मर्द बन और यों हिम्मत न हार। पूरब की तरफ़ एक देश है जिसका नाम हिन्दोस्तान है, वहाँ जा और तेरी आरज़ू पूरी होगी।

यह कहकर हज़रते ख़िज्र गायब हो गये। दिलफ़िगार ने शुक्रिये की नमाज़ अदा की और ताज़ा हौसले, ताज़ा जोश और अलौकिक सहायता का सहारा पाकर खुश-खुश पहाड़ से उतरा और हिन्दोस्तान की तरफ़ चल पड़ा।

मुद्दतों तक काँटे से भरे हुए जंगलों, आग बरसानेवाले रेगिस्तानों, कठिन घाटियों और अलंघ्य पर्वतों को तय करने के बाद दिलफ़िगार हिन्द की पाक सरज़मीन में दाखिल हुआ और एक ठंडे पानी के सोते में सफ़र की तकलीफें धोकर थकान के मारे नदी के किनारे लेट गया। शाम होते-होते वह एक चटियल मैदान में पहुँचा जहाँ बेशुमार अधमरी और बेजान लाशें बिना कफ़न के पड़ी हुई थीं। चील-कौए और वहशी दरिन्दे मरे पड़े थे और सारा मैदान खून से लाल हो रहा था। यह डरावना दृश्य देखते ही दिलफ़िगार का जी दहल गया। या खुदा, किस मुसीबत में जान फँसी, मरनेवालों का कराहना, सिसकना और एड़ियाँ

रगड़कर जान देना, दरिन्दों का हड्डियों को नोचना और गोश्त के लोथड़ों को लेकर भागना, ऐसा हौलनाक सीन दिलफ़िगार ने कभी न देखा था। यकायक उसे ख्याल आया, यह लड़ाई का मैदान है और यह लाशें सूरमा सिपाहियों की हैं। इतने में क़रीब से कराहने की आवाज़ आयी। दिलफ़िगार उस तरफ़ फिरा तो देखा कि एक लम्बा-तगड़ा आदमी, जिसका मर्दाना चेहरा जान निकलने की कमज़ोरी से पीला हो गया है, ज़मीन पर सर झुकाये पड़ा हुआ है। सीने से खून का फ़व्वारा जारी है, मगर आबदार तलवार की मूठ पंजे से अलग नहीं हुई। दिलफ़िगार ने एक चीथड़ा लेकर घाव के मुँह पर रख दिया ताकि खून रुक जाये और बोला—ऐ जवाँमर्द, तू कौन है ? जवाँमर्द ने यह सुनकर आँखें खोलीं और वीरों की तरह बोला—क्या तू नहीं जानता मैं कौन हूँ, क्या तू ने आज इस तलवार की काट नहीं देखी ? मैं अपनी माँ का बेटा और भारत का सपूत हूँ। यह कहते-कहते उसकी त्योरियों पर बल पड़ गये। पीला चेहरा गुस्से से लाल हो गया और आबदार शमशीर फिर अपना जौहर दिखाने के लिए चमक उठी। दिलफ़िगार समझ गया कि यह इस वक्त मुझे दुश्मन समझ रहा है, नरमी से बोला—ऐ जवाँमर्द, मैं तेरा दुश्मन नहीं हूँ। अपने वतन से निकला हुआ एक ग़रीब मुसाफ़िर हूँ। इधर भूलता-भटकता आ निकला। बराय मेहरबानी मुझसे यहाँ की कुल कैफ़ियत बयान कर।

यह सुनते ही घायल सिपाही बहुत मीठे स्वर में बोला—अगर तू मुसाफ़िर है तो आ और मेरे खून से तर पहलू में बैठ जा क्योंकि यही दो अंगुल ज़मीन है जो मेरे पास बाक़ी रह गयी है और जो सिवाय मौत के कोई नहीं छीन सकता। अफ़सोस है कि तू यहाँ ऐसे वक्त में आया जब हम तेरा आतिथ्य-सत्कार करने के योग्य नहीं। हमारे बाप-दादा का देश आज हमारे हाथ से निकल गया और इस वक्त हम बेवतन हैं। मगर (पहलू बदलकर) हमने हमलावर दुश्मन को बता दिया कि राजपूत अपने देश के लिए कैसी बहादुरी से जान देता है। यह आस-पास जो लाशें तू देख रहा है, यह उन लोगों की हैं, जो इस तलवार के घाट उतरे हैं। (मुस्कराकर) और गो कि मैं बेवतन हूँ, मगर ग़नीमत है कि दुश्मन की ज़मीन पर मर रहा हूँ। (सीने के घाव से चीथड़ा निकालकर) क्या तूने यह मरहम रख दिया ? खून निकलने दे, इसे रोकने से क्या फ़ायदा ? क्या मैं अपने ही देश में गुलामी करने के लिए जिन्दा रहूँ ? नहीं, ऐसी जिन्दगी से मर जाना अच्छा। इससे अच्छी मौत मुमकिन नहीं।

जवाँमर्द की आवाज़ मद्धिम हो गयी, अंग ढीले पड़ गये, खून इतना ज्यादा बहा कि खुद ब खुद बन्द हो गया, रह-रहकर एकाध बूँद टपक पड़ता था। आख़िर-कार सारा शरीर बेदम हो गया, दिल की हरकत बन्द हो गयी और आँखें मुँद गयीं। दिलफ़िगार ने समझा अब काम तमाम हो गया कि मरनेवाले ने धीमे से कहा—भारतमाता की जय। और उसके सीने से खून का आख़िरी क़तरा निकल पड़ा। एक सच्चे देशप्रेमी और देशभक्त ने देशभक्ति का हक़ अदा कर दिया। दिलफ़िगार पर इस दृश्य का बहुत गहरा असर पड़ा और उसके दिल ने कहा, बेशक दुनिया में खून के इस क़तरे से ज्यादा अनमोल चीज़ कोई नहीं हो सकती। उसने फ़ौरन उस खून की बूँद को, जिसके आगे यमन का लाल भी हेच है, हाथ में ले लिया और इस दिलेर राजपूत की बहादुरी पर हैरत करता हुआ अपने वतन की तरफ़ रवाना हुआ और सख्तियाँ झेलता आख़िरकार बहुत दिनों के बाद रूप की रानी मलका दिलफ़रेब की ड्योढ़ी पर जा पहुँचा और पैग़ाम दिया कि दिलफ़िगार सुर्ख़रू और कामयाब होकर लौटा है और दरबार में हाज़िर होना चाहता है। दिलफ़रेब ने उसे फ़ौरन हाज़िर होने का हुक्म दिया। खुद हस्बे मामूल सुनहरे परदे की ओट में बैठी और बोली—दिलफ़िगार, अबकी तू बहुत दिनों के बाद वापस आया है। ला, दुनिया की सबसे बेशक़ीमत चीज़ कहाँ है ?

दिलफ़िगार ने मेंहदी-रची हथेलियों को चूमते हुए खून का वह कतरा उस पर रख़ दिया और उसकी पूरी कैफ़ियत पुरजोश लहजे में कह सुनायी। वह ख़ामोश भी न होने पाया था कि यकायक वह सुनहरा परदा हट गया और दिलफ़िगार के सामने हुस्न का एक दरबार सजा हुआ नज़र आया जिसकी एक-एक नाज़नीन जुलेखा से बढ़कर थी। दिलफ़रेब बड़ी शान के साथ सुनहरी मसनद पर सुशोभित हो रही थी। दिलफ़िगार हुस्न का यह तलिस्म देखकर अचम्भे में पड़ गया और चित्रलिखित-सा खड़ा रहा कि दिलफ़रेब मसनद से उठी और कई क़दम आगे बढ़कर उससे लिपट गयी। गानेवालियों ने खुशी के गाने शुरू किये, दरबारियों ने दिलफ़िगार को नज़रें भेंट कीं और चाँद-सूरज को बड़ी इज्जत के साथ मसनद पर बैठा दिया। जब वह लुभावना गीत बंद हुआ तो दिलफ़रेब खड़ी हो गयी और हाथ जोड़कर दिलफ़िगार से बोली—ऐ जाँनिसार आशिक़ दिलफ़िगार ! मेरी दुआएँ बर आयीं और खुदा ने मेरी सुन ली और तुझे कामयाब व सुर्ख़रू किया। आज से तू मेरा मालिक है और मैं तेरी लौंडी !

यह कहकर उसने एक रत्नजटित मंजूषा मँगायी और उसमें से एक तख्ती निकाली जिस पर सुनहरे अक्षरों में लिखा हुआ था—

'खून का वह आख़िरी क़तरा जो वतन की हिफ़ाज़त में गिरे दुनिया की सबसे अनमोल चीज़ है ।'

●

शेख़ मख़मूर

मुल्के जन्नतनिशाँ के इतिहास में वह बहुत अँधेरा वक्त था जब शाह किशवर की फ़तहों की बाढ़ बड़े जोर-शोर के साथ उस पर आयी। सारा देश तबाह हो गया। आज़ादी की इमारतें ढह गयीं और जानोमाल के लाले पड़ गये। शाह बामुराद खूब जी तोड़कर लड़ा, खूब बहादुरी का सबूत दिया और अपने ख़ानदान के तीन लाख सूरमाओं को अपने देश पर चढ़ा दिया मगर विजेता की पत्थर काट देनेवाली तलवार के मुक़ाबले में उसकी यह मर्दाना जाँबाज़ियाँ बेअसर साबित हुईं। मुल्क पर शाह किशवरकुशा की हुकूमत का सिक्का जम गया और शाह बामुराद अकेला और तनहा बेयारो मददगार अपना सब कुछ आज़ादी के नाम पर क़ुर्बान करके एक झोंपड़े में ज़िन्दगी बसर करने लगा।

यह झोंपड़ा पहाड़ी इलाक़े में था। आस-पास जंगली क़ौमें आबाद थीं और दूर-दूर तक पहाड़ों के सिलसिले नज़र आते थे। इस सुनसान जगह में शाह बामुराद मुसीबत के दिन काटने लगा, दुनिया में अब उसका कोई दोस्त न था। वह दिन भर आबादी से दूर एक चट्टान पर अपने ख्याल में मस्त बैठा रहता था। लोग समझते थे कि यह कोई ब्रह्म ज्ञान के नशे में चूर सूफ़ी है। शाह बामुराद को यों बसर करते एक ज़माना बीत गया और जवानी की बिदाई और बुढ़ापे के स्वागत की तैयारियाँ होने लगीं।

तब एक रोज़ शाह बामुराद बस्ती के सरदार के पास गया और उससे कहा—मैं अपनी शादी करना चाहता हूँ। उसकी तरफ़ से पैग़ाम सुनकर वह अचम्भे में आ गया मगर चूँकि दिल में शाह साहब के कमाल और फ़क़ीरी में गहरा विश्वास रखता था, पलटकर जवाब न दे सका और अपनी कुँआरी नौजवान बेटी उनको भेंट की। तीसरे साल इस युवती की कामनाओं की बाटिका में एक नौरस पौधा उगा। शाह साहब खुशी के मारे जामे में फूले न समाये। बच्चे को गोद में उठा लिया और हैरत में डूबी हुई माँ के सामने जोश-भरे लहजे में बोले—'खुदा का शुक्र है कि मुल्के जन्नतनिशाँ का वारिस पैदा हुआ।'

बच्चा बढ़ने लगा। अक्ल और ज़हानत में, हिम्मत और ताक़त में, वह

अपनी दुगनी उमर के बच्चों से बढ़कर था। सुबह होते ही ग़रीब रिन्दा बच्चे का बनाव-सिंगार करके और उसे नाश्ता खिलाकर अपने काम-धन्धों में लग जाती थी और शाह साहब बच्चे की उँगली पकड़कर उसे आबादी से दूर चट्टान पर ले जाते। वहाँ कभी उसे पढ़ाते, कभी हथियार चलाने की मश्क़ कराते और कभी उसे शाही क़ायदे समझाते। बच्चा था तो कमसिन, मगर इन बातों में ऐसा जी लगाता और ऐसे चाव से लगा रहता गोया उसे अपने वंश का हाल मालूम है। मिज़ाज भी बादशाहों जैसा था। गाँव का एक-एक लड़का उसके हुक्म का फ़रमाबरदार था। माँ उस पर गर्व करती, बाप फूला न समाता और सारे गाँव के लोग समझते कि यह शाह साहब के जप-तप का असर है।

बच्चा मसऊद देखते-देखते एक सात साल का नौजवान शहज़ादा हो गया। देखकर देखनेवाले के दिल को एक नशा-सा होता था। एक रोज़ शाम का वक्त था, शाह साहब अकेले सैर करने गये और जब लौटे तो उनके सर पर एक जड़ाऊ ताज शोभा दे रहा था। रिन्दा उनकी यह हुलिया देखकर सहम गयी और मुँह से कुछ बोल न सकी। तब उन्होंने नौजवान मसऊद को गले से लगाया, उसी वक्त उसे नहलाया-धुलाया और एक चट्टान के तख्त पर बैठाकर दर्द-भरे लहजे में बोले—मसऊद, मैं आज तुमसे रुख़सत होता हूँ और तुम्हारी अमानत तुम्हें सौंपता हूँ। यह उसी मुल्के जन्नतनिशाँ का ताज है। कोई वह ज़माना था, कि यह ताज तुम्हारे बदनसीब बाप के सर पर ज़ेब देता था, अब वह तुम्हें मुबारक हो। रिन्दा! प्यारी बीवी! तेरा बदक़िस्मत शौहर किसी ज़माने में इस मुल्क का बादशाह था और अब तू उसकी मलिका है। मैंने यह राज़ तुमसे अब तक छिपाया था, मगर हमारे अलग होने का वक्त बहुत पास है। अब छिपाकर क्या करूँ। मसऊद, तुम अभी बच्चे हो, मगर दिलेर और समझदार हो। मुझे यक़ीन है कि तुम अपने बूढ़े बाप की आख़िरी वसीयत पर ध्यान दोगे और उस पर अमल करने की कोशिश करोगे। यह मुल्क तुम्हारा है, यह ताज तुम्हारा है और यह रिआया तुम्हारी है। तुम इन्हें अपने कब्ज़े में लाने की मरते दम तक कोशिश करते रहना और अगर तुम्हारी तमाम कोशिशें नाकाम हो जायें और तुम्हें भी यही बेसरोसामानी की मौत नसीब हो तो यही वसीयत तुम अपने बेटे से कर देना और यह ताज जो उसकी अमानत होगी उसके सुपुर्द करना। मुझे तुमसे और कुछ नहीं कहना है, खुदा तुम दोनों को खुशोखुर्रम रक्खे और तुम्हें मुराद को पहुँचाये।

यह कहते-कहते शाह साहब की आँखें बन्द हो गयीं। रिन्दा दौड़कर उनके

पैरों से लिपट गयी और मसऊद रोने लगा। दूसरे दिन सुबह को गाँव के लोग जमा हुए और एक पहाड़ी गुफ़ा की गोद में लाश रख दी।

२

शाह किशवरकुशा ने आधी सदी तक खूब इन्साफ के साथ राज किया मगर किशवरकुशा दोयम ने सिंहासन पर आते ही अपने अक्लमन्द बाप के मंत्रियों को एक सिरे से बर्खास्त कर दिया और अपनी मर्जी के मुआफ़िक नये-नये वज़ीर और सलाहकार नियुक्त किये। सल्तनत का काम रोज़ ब रोज़ बिगड़ने लगा। सरदारों ने बेइन्साफ़ी पर कमर बाँधी और हुक्काम रिआया पर ज़ोर-ज़बर्दस्ती करने लगे। यहाँ तक कि खानदाने मुरादिया के एक पुराने नमकखोर ने मौक़ा अच्छा देखकर बग़ावत का झंडा बुलन्द कर दिया। आसपास से लोग उसके झंडे के नीचे जमा होने लगे और कुछ ही हफ्तों में एक बड़ी फ़ौज क़ायम हो गयी और मसऊद भी नमकखोर सरदार की फ़ौज में आकर मामूली सिपाहियों का काम करने लगा।

मसऊद का अभी यौवन का आरम्भ था। दिल में मर्दाना जोश और बाजुओं में शेरों की कूवत मौजूद थी। ऐसा लम्बा-तड़ंगा, सुन्दर नौजवान बहुत कम किसी ने देखा होगा। शेरों के शिकार का उसे इश्क़ था। दूर-दूर तक के जंगल दरिन्दों से खाली हो गये। सबेरे से शाम तक उसे सैरो-शिकार के सिवा कोई धंधा न था। लबोलहजा ऐसा दिलकश पाया था कि जिस वक्त मस्ती में आकर कोई क़ौमी गीत छेड़ देता तो राह चलते मुसाफ़िरों और पहाड़ी औरतों का ठट लग जाता था। कितने ही भोले-भाले दिलों पर उसकी मोहिनी सूरत नक्श थी, कितनी हो आँखें उसे देखने को तरसती और कितनी ही जानें उसकी मुहब्बत की आग में घुलती थीं। मगर मसऊद पर अभी तक किसी का जादू न चला था। हाँ, अगर उसे मुहब्बत थी तो अपनी आबदार शमशीर से जो उसने बाप से विरसे में पायी थी। इस तेग़ को वह जान से ज्यादा प्यार करता। बेचारा खुद नंगे बदन रहता मगर उसके लिए तरह-तरह के मियान बनवाये थे। उसे एक दम के लिए अपने पहलू से अलग न करता। सच है दिलेर सिपाही की तलवार उसकी निगाहों में दुनिया की तमाम चीज़ों से ज्यादा प्यारी होती है। खासकर वह आबदार खंजर जिसका जौहर बहुत से मौक़ों पर परखा जा चुका हो। इसी तेग़ से मसऊद ने कितने हो जंगली दरिन्दों को मारा था, कितने ही लुटेरों और डाकुओं को मौत का मजा चखाया था और

उसे पूरा यक़ीन था कि यही तलवार किसी दिन किशवरकुशा दोयम के सर पर चमकेगी और उसकी शहरग के ख़ून से अपनी ज़बान तर करेगी।

एक रोज़ वह एक शेर का पीछा करते-करते बहुत दूर निकल गया। धूप सख़्त थी, भूख और प्यास से जी बेताब हुआ, मगर वहाँ न कोई मेवे का दरख़्त नज़र आया न कोई बहता हुआ पानी का सोता जिसमें भूख और प्यास की आग बुझाता। हैरान और परीशान खड़ा था कि सामने से एक चाँद जैसी सुन्दर युवती हाथ में बर्छी लिये और बिजली की तरह तेज़ घोड़े पर सवार आती हुई दिखायी दी। पसीने की मोती जैसी बूँदें उसके माथे पर झलक रही थीं और अम्बर की सुगन्ध में बसे हुए बाल दोनों कंधों पर एक सुहानी बेतकल्लुफ़ी से बिखरे हुए थे। दोनों की निगाहें चार हुईं और मसऊद का दिल हाथ से जाता रहा। उस ग़रीब ने आज तक दुनिया को जला डालनेवाला ऐसा हुस्न न देखा था, उसके ऊपर एक सकता-सा छा गया। यह जवान औरत उस जंगल में मलिका शेर अफ़गन के नाम से मशहूर थी।

मलिका ने मसऊद को देखकर घोड़े की बाग खींच ली और गर्म लहजे में बोली—क्या तू वही नौजवान है, जो मेरे इलाक़े के शेरों का शिकार किया करता है? बतला तेरी इस गुस्ताख़ी की क्या सज़ा दूँ?

यह सुनते ही मसऊद की आँखें लाल हो गयीं और बरबस हाथ तलवार की मूठ पर जा पहुँचा मगर ज़ब्त करके बोला—इस सवाल का जवाब मैं ख़ूब देता, अगर आपके बजाय यह किसी दिलेर मर्द की ज़बान से निकलता!

इन शब्दों ने मलिका के गुस्से की आग को और भी भड़का दिया। उसने घोड़े को चमकाया और बर्छी उछालती सर पर आ पहुँची और वार पर वार करने शुरू किये। मसऊद के हाथ-पाँव बेहद थकान से चूर हो रहे थे और मलिका शेर अफ़गन बर्छी चलाने की कला में बेजोड़ थी। उसने चरके पर चरके लगाये, यहाँ तक कि मसऊद घायल होकर घोड़े से गिर पड़ा। उसने अब तक मलिका के वारों को काटने के सिवाय ख़ुद एक हाथ भी न चलाया था।

तब मलिका घोड़े से कूदी और अपना रूमाल फाड़-फाड़कर मसऊद के ज़ख़्म बाँधने लगी। ऐसा दिलेर और ग़ैरतमन्द जवाँमर्द उसकी नज़र से आज तक न गुज़रा था। वह उसे बहुत आराम से उठवाकर अपने ख़ेमे में लायी और पूरे दो हफ़्ते तक उसकी परिचर्या में लगी रही यहाँ तक कि घाव भर गया और मसऊद का चेहरा फिर पूरनमासी के चाँद की तरह चमकने लगा। मगर हसरत यह थी कि अब मलिका ने उसके पास आना-जाना छोड़ दिया।

एक रोज़ मलिका शेर अफ़गन ने मसऊद को दरबार में बुलाया और यह बोली—ऐ घमण्डी नौजवान ! खुदा का शुक्र है कि तू मेरी बर्छी की चोट से अच्छा हो गया, अब मेरे इलाक़े से जा, तेरी गुस्ताख़ी माफ़ करती हूँ। मगर आइन्दा मेरे इलाक़े में शिकार के लिए आने की हिम्मत न करना। फ़िलहाल ताकीद के तौर पर तेरी तलवार छीन ली जायगी ताकि तू घमंड के नशे से चूर होकर फिर इधर क़दम बढ़ाने की हिम्मत न करे।

मसऊद ने नंगी तलवार मियान से खींच ली और कड़ककर बोला—जब तक मेरे दम में दम है, कोई यह तलवार मुझसे नहीं ले सकता। यह सुनते ही एक देव-जैसा लम्बा-तड़ंगा हैकल पहलवान ललकारकर बढ़ा और मसऊद की कलाई पर तेग़े का तुला हुआ हाथ चलाया। मसऊद ने वार ख़ाली दिया और सम्हलकर तेग़े का वार किया तो पहलवान की गर्दन की पट्टी तक बाक़ी न रही। यह कैफ़ियत देखते ही मलिका की आँखों से चिनगारियाँ उड़ने लगीं। भयानक गुस्से के स्वर में बोली—ख़बरदार, यह शख़्स यहाँ से जिन्दा न जाने पावे। चारों तरफ़ से आज़माये हुए मज़बूत सिपाही पिल पड़े और मसऊद पर तलवारों और बर्छियों की बौछार पड़ने लगी।

मसऊद का जिस्म ज़ख्मों से छलनी हो गया। ख़ून के फ़व्वारे जारी थे और ख़ून की प्यासी तलवारें ज़बान खोले बार-बार उसकी तरफ़ लपकती थीं और उसका ख़ून चाटकर अपनी प्यास बुझा लेती थीं। कितनी ही तलवारें उसकी ढाल से टकराकर टूट गयीं, कितने ही बहादुर सिपाही ज़ख्मी होकर तड़पने लगे और कितने ही उस दुनिया को सिधारे। मगर मसऊद के हाथ में वह आबदार शमशीर ज्यों की त्यों बिजली की तरह कौंधती और सुथराव करती रही। यहाँ तक कि इस फ़न के कमाल को समझनेवाली मलिका ने खुद उसकी तारीफ़ का नारा बुलन्द किया और उसके तेग़े को चूमकर बोली—मसऊद ! तू बहादुरी के समुन्दर का मगर है। शेरों के शिकार में वक्त बर्बाद मत कर। दुनिया में शिकार के अलावा और भी ऐसे मौक़े हैं जहाँ तू अपने आबदार तेग़ का जौहर दिखा सकता है। जा और मुल्कोकौम की ख़िदमत कर। सैरो शिकार हम जैसी औरतों के लिए छोड़ दे।

मसऊद के दिल ने गुदगुदाया, प्यार की बानी ज़बान तक आयी मगर बाहर निकल न सकी और उसी वक्त वह अपने दिल में किसी की पलकों की टीस लिये हुए तीन हफ़्तों के बाद अपनी बेक़रार माँ के क़दमों पर जा गिरा।

३

नमकख़ोर सरदार की फ़ौज रोज़ ब रोज़ बढ़ने लगी। पहले तो वह अँधेरे के पर्दे में शाही ख़ज़ानों पर हाथ बढ़ाता रहा, धीरे-धीरे एक बाक़ायदा फ़ौज तैयार हो गयी, यहाँ तक कि सरदार को शाही फ़ौजों के मुक़ाबले में अपनी तलवार आज़माने का हौसला हुआ, और पहली लड़ाई में चौबीस क़िले इस नयी फ़ौज के हाथ आ गये। शाही फ़ौज ने लड़ने में ज़रा भी कसर न की मगर वह ताकत, वह जोश, वह जज्बा जो सरदार नमकख़ोर और उसके दोस्तों के दिलों को हिम्मत के मैदान में आगे बढ़ाता रहता था, किशवरकुशा दोयम के सिपाहियों में ग़ायब था। लड़ाई के कलाकौशल, हथियारों की ख़ूबी और ऊपर दिखायी पड़नेवाली शान-शौकत के लिहाज़ से दोनों फ़ौजों का कोई मुक़ाबला न था। बादशाह के सिपाही लहीम-शहीम, लम्बे-तड़ंगे और आज़माये हुए थे। उनके साज-सामान और तौर-तरीक़े से देखनेवालों के दिलों पर एक डर-सा छा जाता था और वहम भी यह गुमान न कर सकता था कि इस ज़बर्दस्त जमात के मुक़ाबले में निहत्थी-सी अधनंगी और बेक़ायदा सरदारी फ़ौज एक पल के लिए भी पैर जमा सकेगी। मगर जिस वक्त 'मारो' की दिल बढ़ानेवाली पुकार हवा में गूंजी, एक अजीबोग़रीब नज्ज़ारा सामने आया। सरदार के सिपाही तो नारे मारकर आगे धावा करते थे और बादशाह की फ़ौज भागने की राह पर दबी हुई निगाहें डालती थी। दम के दम में मोर्चे गुबार की तरह फट गये और जब मस्क़ात के मज़बूत क़िले में सरदार नमकख़ोर शाही क़िलेदार की मसनद पर अमीराना ठाट-बाठ से बैठा और अपनी फ़ौज को कारगुज़ारियों और जाँबाज़ियों का इनाम देने के लिए एक तश्त में सोने के तमग़े मँगवाकर रक्खे तो सबसे पहले जिस सिपाही का नाम पुकारा गया वह नौजवान मसऊद था।

मसऊद पर इस वक्त उसकी फ़ौज घमंड करती थी। लड़ाई के मैदान में सबसे पहले उसी की तलवार चमकती थी और धावे के वक्त सबसे पहले उसी के क़दम उठते थे। दुश्मन के मोर्चों में ऐसा बेधड़क घुसता था जैसे आसमान में चमकता हुआ लाल तारा। उसकी तलवार के वार क़यामत थे और उसके तीर का निशाना मौत का सन्देश।

मगर टेढ़ी चाल की तक़दीर से उसका यह प्रताप, यह प्रतिष्ठा न देखी गयी। कुछ थोड़े से आज़माये हुए अफ़सर जिनके तेग़ों की चमक मसऊद के तेग़ के सामने मन्द पड़ गयी थी, उससे खार खाने लगे और उसे मिटा देने की तदबीरें सोचने लगे। संयोग से उन्हें मौक़ा भी जल्द हाथ आ गया।

किशवरकुशा दोयम ने बागियों को कुचलने के लिए अब की एक ज़बर्दस्त फ़ौज रवाना की और मीर शुजा को उसका सिपहसालार बनाया जो लड़ाई के मैदान में अपने वक्त का इसफ़ंदियार था। सरदार नमकखोर ने यह ख़बर पायी तो हाथ-पाँव फूल गये। मीर शुजा के मुक़ाबले में आना अपनी हार को बुलाना था। आख़िरकार यह राय तय पायी कि इस जगह से आबादी का निशान मिटाकर हम लोग क़िलेबन्द हो जायँ। उस वक्त नौजवान मसऊद ने उठकर बड़े पुरजोश लहजे में कहा—

'नहीं, हम किलेबन्द न होंगे, हम मैदान में रहेंगे और हाथोंहाथ दुश्मन का मुक़ाबला करेंगे। हमारे सीनों की हड्डियाँ ऐसी कमज़ोर नहीं हैं कि तीर-तुपुक के निशाने बर्दाश्त न कर सकें। क़िलेबन्द होना इस बात का एलान है कि हम आमने-सामने नहीं लड़ सकते। क्या आप लोग, जो शाह बामुराद के नामलेवा हैं, भूल गये कि इसी मुल्क पर उसने अपने ख़ानदान के तीन लाख सपूतों को फूल की तरह चढ़ा दिया? नहीं, हम हरगिज़ क़िलेबन्द न होंगे। हम दुश्मन के मुक़ाबिले में ताल ठोंककर आयेंगे और अगर खुदा इंसाफ़ करनेवाला है तो ज़रूर हमारी तलवारें दुश्मनों से गले मिलेंगी और हमारी बर्छियाँ उनके पहलू में जगह पायेंगी।'

सैकड़ों निगाहें मसऊद के पुरजोश चेहरे की तरफ़ उठ गयीं। सरदारों की त्योरियों पर बल पड़ गये और सिपाहियों के सीने जोश से धड़कने लगे। सरदार नमकखोर ने उसे गले से लगा लिया और बोले—मसऊद, तेरी हिम्मत और हौसले की दाद देता हूँ। तू हमारी फ़ौज की शान है। तेरी सलाह मर्दाना सलाह है। बेशक हम क़िलेबन्द न होंगे। हम दुश्मन के मुक़ाबिले में ताल ठोंककर आयेंगे और अपने प्यारे जन्नतनिशाँ के लिए अपना खून पानी की तरह बहायेंगे। तू हमारे लिए आगे-आगे चलनेवाली मशाल है और हम सब आज इसी रोशनी में क़दम आगे बढ़ायेंगे।

मसऊद ने चुने हुए सिपाहियों का एक दस्ता तैयार किया और कुछ इस दम-ख़म और कुछ इस जोशख़रोश से मीर शुजा पर टूटा कि उसकी सारी फौज में खलबली पड़ गयी। सरदार नमकख़ोर ने जब देखा कि शाही फ़ौज के क़दम डगमगा रहे हैं, तो अपनी पूरी ताक़त से बादल और बिजली की तरह लपका और तेग़ों से तेग़ें और बर्छियों से बर्छियाँ खड़कने लगीं। तीन घंटे तक बला का शोर मचा रहा, यहाँ तक कि शाही फ़ौज के क़दम उखड़ गये और वह सिपाही जिसकी तलवार मीर शुजा से गले मिली मसऊद था।

तब सरदारी फ़ौज और अफ़सर सब के सब लूट के माल पर टूटे और मसऊद ज़ख्मों से चूर और खून में रँगा हुआ अपने कुछ जान पर खेलनेवाले दस्तों के साथ मस्कात के क़िले की तरफ़ लौटा मगर जब होश ने आँखें खोलीं और हवास ठिकाने हुए तो क्या देखता है कि मैं एक सजे हुए कमरे में मख़मली गद्दे पर लेटा हुआ हूँ। फूलों की सुहानी महक और लम्बी छरहरी सुन्दरियों के जमघट से कमरा चमन बना हुआ था। ताज्जुब से इधर-उधर ताकने लगा कि इतने में एक अप्सरा-जैसी सुन्दर युवती तश्त में फूलों का हार लिये धीरे-धीरे आती हुई दिखायी दी कि जैसे बहार फूलों की डाली पेश करने आ रही है। उसे देखते ही उन लंबी छरहरी सुन्दरियों ने आँखें बिछायीं और उसकी हिनाई हथेली को चूमा। मसऊद देखते ही पहचान गया। यह मलिका शेर अफ़गन थी।

मलिका ने फूलों का हार मसऊद के गले में डाला। हीरे-जवाहरात उस पर चढ़ाये और सोने के तारों से टकी हुई मसनद पर बड़ी आन-बान से बैठ गयी। साज़िन्दों ने बीन ले-लेकर विजयी अतिथि के स्वागत में सुहाने राग अलापने शुरू किये।

यहाँ तो नाच-गाने की महफ़िल थी उधर आपसी डाह ने नये-नये शिगूफ़े खिलाये। सरदार से शिकायत की कि मसऊद ज़रूर दुश्मन से जा मिला है और आज जान बूझकर फ़ौज का एक दस्ता लेकर लड़ने को गया था ताकि उसे खाक और खून में सुलाकर सरदारी फ़ौज को बेचिराग़ कर दे। इसके सबूत में कुछ जाली ख़त भी दिखाये गये और इस कमीनी कोशिश में ज़बान की ऐसी चालाकी से काम लिया कि आख़िर सरदार को इन बातों पर यक़ीन आ गया। पौ फटे जब मसऊद मलिका शेर अफ़गन के दरबार से विजय का हार गले में डाले सरदार को बधाई देने गया तो बजाय इसके कि कद्रदानी का सिरोपा और बहादुरी का तमग़ा पाये, उसको खरी-खोटी बातों के तीर का निशाना बनाया गया और हुक्म मिला कि तलवार कमर से खोलकर रख दे।

मसऊद स्तम्भित रह गया। यह तेग़ा मैंने अपने बाप से विरसे में पाया है और यह मेरे पिछले बड़प्पन की आख़िरी यादगार है। यह मेरी बाँहों की ताक़त और मेरा सहयोगी और मददगार है। इसके साथ कैसी-कैसी स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं, क्या मैं जीते जी इसे अपने पहलू से अलग कर दूँ? अगर मुझ पर कोई आदमी लड़ाई के मैदान से क़दम हटाने का इलज़ाम लगा सकता, अगर कोई शख़्स इस तेग़े का इस्तेमाल मेरे मुक़ाबिले में ज्यादा कारगुज़ारी के साथ कर सकता, अगर मेरी

बाँहों में तेग़ा पकड़ने की ताक़त न होती तो खुदा की क़सम, मैं खुद ही तेग़ा कमर से खोलकर रख देता। मगर खुदा का शुक्र है कि मैं इन इलज़ामों से बरी हूँ। फिर क्यों मैं इसे हाथ से जाने दूँ? क्या इसलिए कि मेरी बुराई चाहनेवाले कुछ थोड़े से डाहियों ने सरदार नमकख़ोर का मन मेरी तरफ से फेर दिया है। ऐसा नहीं हो सकता।

मगर फिर उसे ख़याल आया, मेरी सरकशी पर सरदार और भी गुस्सा हो जायँगे और यक़ीनन मुझसे तलवार शमशीर के ज़ोर से छीन ली जायेगी। ऐसी हालत में मेरे ऊपर जान छिड़कनेवाले सिपाही कब अपने को क़ाबू में रख सकेंगे। ज़रूर आपस में खून की नदियाँ बहेंगी और भाई भाई का सिर कटेगा। खुदा न करे कि मेरे सबब से यह दर्दनाक मार-काट हो। यह सोचकर उसने चुपके से शमशीर सरदार नमकख़ोर के बग़ल में रख दी और खुद सर नीचा किये ज़ब्त की इन्तहाई कूवत से गुस्से को दबाता हुआ ख़ेमे से बाहर निकल आया।

मसऊद पर सारी फ़ौज गर्व करती थी और उस पर जानें वारने के लिए हथेली में सर लिये रहती थी। जिस वक्त उसने तलवार खोली है, दो हज़ार सूरमा सिपाही मियान पर हाथ रक्खे और शोले बरसाती हुई आँखों से ताकते कनौतियाँ बदल रहे थे। मसऊद के एक ज़रा से इशारे की देर थी और दम के दम में लाशों के ढेर लग जाते। मगर मसऊद बहादुरी ही में बेजोड़ न था, जब्त और धीरज में भी उसका जवाब न था। उसने यह ज़िल्लत और बदनामी सब गवारा की, तल-वार देना गवारा किया, बग़ावत का इलजाम लेना गवारा किया और अपने साथियों के सामने सर झुकाना गवारा किया मगर यह गवारा न किया कि उसके कारण फ़ौज में बग़ावत और हुक्म न मानने का ख़याल पैदा हो। और ऐसे नाज़ुक वक्त में जब कि कितने ही दिलेर जिन्होंने लड़ाई की आज़माइश में अपनी बहादुरी का सबूत दिया था, ज़ब्त हाथ से खो बैठते और गुस्से की हालत में एक-दूसरे के गले काटते, खामोश रहा और उसके पैर नहीं डगमगाये। उसकी पेशानी पर ज़रा भी बल न आया, उसके तेवर ज़रा भी न बदले। उसने खून बरसाती हुई आँखों से दोस्तों को अलविदा कहा और हसरत भरा दिल लिये उठा और एक गुफा में छिप बैठा और जब सूरज डूबने पर वहाँ से उठा तो उसके दिल ने फ़ैसला कर लिया था कि बदनामी का दाग़ माथे से मिटाऊँगा और डाहियों को शर्मिन्दगी के गड्ढे में गिराऊँगा।

मसऊद ने फ़क़ीरों का भेस अख्तियार किया, सर पर लोहे की टोपी के बजाय

लम्बी जटाएँ बनायीं, जिस्म पर ज़िरहबख्तर के बजाय गेरुए रंग का बाना सजा, हाथ में तलवार के बजाय फ़क़ीरों का प्याला लिया। जंग के नारे के बजाय फ़क़ीरों की सदा बुलन्द की और अपना नाम शेख़ मख़मूर रख दिया। मगर यह जोगी दूसरे जोगियों की तरह धूनी रमाकर न बैठा और न उस तरह का प्रचार शुरू किया। वह दुश्मन की फ़ौज में जाता और सिपाहियों की बातें सुनता। कभी उनकी मोर्चेबन्दियों पर निगाह दौड़ाता, कभी उनके दमदमों और क़िलों की दीवारों का मुआइना करता। तीन बार सरदार नमकखोर दुश्मन के पंजे से ऐसे वक्त निकले जब कि उन्हें जान बचाने की कोई आस न रही थी। और यह सब शेख़ मख़मूर की करामात थी। मिनक़ाद का क़िला जीतना कोई आसान बात न थी। पाँच हज़ार बहादुर सिपाही उसकी हिफ़ाज़त के लिए कुर्बान होने को तैयार बैठे थे। तीस तोपें आग के गोले उगलने के लिए मुँह खोले हुए थीं और दो हज़ार सधे हुए तीरन्दाज़ हाथों में मौत का पैग़ाम लिये हुक्म का इन्तज़ार कर रहे थे। मगर जिस वक्त सरदार नमकखोर अपने दो हज़ार बहादुरों के साथ इस क़िले पर चढ़ा तो पाँचों हज़ार दुश्मन सिपाही काठ के पुतले बन गये। तोपों के मुँह बन्द हो गये और तीरन्दाज़ों के तीर हवा में उड़ने लगे। और यह सब शेख़ मख़मूर की करामात थी। शाह साहब वहीं मौजूद थे। सरदार दौड़कर उनके क़दमों पर गिर पड़ा और उनके पैरों की धूल माथे पर लगायी।

४

किशवरकुशा दोयम का दरबार सजा हुआ है। अंगूरी शराब का दौर चल रहा है और दरबार के बड़े-बड़े अमीर और रईस अपने-अपने दर्जे से हिसाब के अदब से साथ घुटना मोड़े बैठे हैं। यकायक भेदियों ने खबर दी कि मीर शुजा की हार हुई और वह जान से मारे गये। यह सुनकर किशवरकुशा के चेहरे पर चिन्ता के लक्षण दिखायी पड़े। सरदारों को सम्बोधित करके बोले—आप लोगों में ऐसा दिलेर कौन है जो इस बदमाश सरदार का सर क़लम करके हमारे सामने पेश करे। इसकी गुस्ताखियाँ अब हद से आगे बढ़ी जाती हैं। आप ही लोगों के बड़े-बूढ़ों ने यह मुल्क तलवार के ज़ोर से मुरादिया खानदान से छीना था। क्या आप उन्हीं पुरखों की औलाद नहीं हैं? यह सुनते ही सरदारों में एक सन्नाटा छा गया, सब के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं और किसी की हिम्मत न पड़ी कि बादशाह की दावत क़बूल करे। आखिरकार शाह किशवरकुशा के बुड्ढे चचा खुद उठे और

बोले—ऐ शाह जवाँबख्त ! मैं तेरी दावत क़बूल करता हूँ, अगरचे मैं बुड्ढा हो गया हूँ और बाजुओं में तलवार पकड़ने की ताक़त बाक़ी नहीं रही, मगर मेरे खून में वही गर्मी और दिल में वही जोश है जिनकी बदौलत हमने यह मुल्क शाह बामुराद से लिया था। या तो मैं इस नापाक कुत्ते की हस्ती ख़ाक में मिला दूँगा या इस कोशिश में अपनी जान निसार कर दूँगा, ताकि अपनी आँखों से सल्तनत की बर्बादी न देखूँ। यह कहकर अमीर पुरतदबीर वहाँ से उठा और मुस्तैदी से जंगी तैयारियों में लग गया। उसे मालूम था कि यह आख़िरी मुक़ाबिला है और अगर इसमें नाकाम रहे तो मर जाने के सिवाय और कोई चारा नहीं है। उधर सरदार नमकख़ोर धीरे-धीरे राजधानी की तरफ़ बढ़ता आता था, यकायक उसे खबर मिली कि अमीर पुरतदबीर बीस हज़ार पैदल और सवारों के साथ मुक़ाबिले के लिए आ रहा है।

यह सुनते ही सरदार नमकख़ोर की हिम्मतें छूट गयीं। अमीर पुरतदबीर बुढ़ापे के बावजूद अपने वक्त का एक ही सिपहसालार था। उसका नाम सुनकर बड़े-बड़े बहादुर कानों पर हाथ रख लेते थे। सरदार नमकख़ोर का ख़याल था कि अमीर कहीं एक कोने में बैठे खुदा की इबादत करते होंगे। मगर उनको अपने मुक़ाबिले में देखकर उसके होश उड़ गये कि कहीं ऐसा न हो कि इस हार से हम अपनी सारी जीत खो बैठें और बरसों की मेहनत पर पानी फिर जाय। सब की यही सलाह हुई कि वापस चलना ही ठीक है। उस वक्त शेख़ मख़मूर ने कहा—ऐ सरदार नमकखोर ! तूने मुल्के जन्नतनिशाँ को छुटकारा दिलाने का बीड़ा उठाया है। क्या इन्हीं हिम्मतों से तेरी आरज़ूएँ पूरी होंगी ? तेरे सरदार और सिपाहियों ने कभी मैदान से क़दम पीछे नहीं हटाया, कभी पीठ नहीं दिखायी, तीरों की बौछार को तुमने पानी की फुहार समझा और बन्दूकों की बाढ़ को फूलों की बहार। क्या इन चीज़ों से इतनी जल्दी तुम्हारा जी भर गया ? तुमने यह लड़ाई सल्तनत को बढ़ाने के कमीने इरादे से नहीं छेड़ी है। तुम सच्चाई और इंसाफ़ की लड़ाई लड़ रहे हो। क्या तुम्हारा जोश इतने जल्द ठंडा हो गया ? क्या तुम्हारी इंसाफ़ की तलवार की प्यास इतनी जल्दी बुझ गयी ? तुम खूब जानते हो कि इंसाफ़ और सच्चाई की जीत जरूर होगी, तुम्हारी इन बहादुरियों का इनाम खुदा के दरबार से ज़रूर मिलेगा। फिर अभी से क्यों हौसले छोड़े देते हो ? क्या बात है, अगर अमीर पुरतदबीर बड़ा दिलेर और इरादे का पक्का सिपाही है। अगर वह शेर है तो तुम शेर मर्द हो; अगर उसकी तलवार लोहे की है तो तुम्हारा तेगा फ़ौलाद का है; अगर

उसके सिपाही जान पर खेलनेवाले हैं तो तुम्हारे सिपाही भी सर कटाने के लिए तैयार हैं। हाथों में तेग़ा मज़बूत पकड़ो और ख़ुदा का नाम लेकर दुश्मन पर टूट पड़ो। तुम्हारे तेवर कहे देते हैं कि मैदान तुम्हारा है।

इस पुरजोश तक़रीर ने सरदारों के हौसले उभार दिये। उनकी आँखें लाल हो गयीं, तलवारें पहलू बदलने लगीं और क़दम बरबस लड़ाई के मैदान की तरफ़ बढ़े। शेख़ मख़मूर ने तब फ़क़ीरी बाना उतार फेंका, फ़क़ीरी प्याले को सलाम किया और हाथों में वही तलवार और ढाल लेकर जो किसी वक्त मसऊद से छीने गये थे, सरदार नमकख़ोर के साथ-साथ सिपाहियों और अफ़सरों का दिल बढ़ाते शेरों की तरह बिफरता हुआ चला। आधी रात का वक्त था, अमीर के सिपाही अभी मंज़िलें मारे चले आते थे। बेचारे दम भी न लेने पाये थे कि एकाएक सरदार नमकख़ोर के आ पहुँचने की ख़बर पायी। होश उड़ गये और हिम्मतें टूट गयीं। मगर अमीर शेर की तरह गरजकर ख़ेमे से बाहर आया और दम के दम में अपनी सारी फ़ौज दुश्मन के मुक़ाबले में क़तार बाँधकर खड़ी कर दी कि जैसे एक माली था कि आया और इधर-उधर बिखरे हुए फूलों को एक गुलदस्ते में सजा गया।

दोनों फ़ौजें काले-काले पहाड़ों की तरह आमने-सामने खड़ी हैं। और तोपों का आग बरसाना ज्वालामुखी का दृश्य प्रस्तुत कर रहा था। उनकी घनगरज आवाज़ से बला का शोर मच रहा था। यह पहाड़ धीरे-धीरे आगे बढ़ते गये। यकायक वह टकराये और कुछ इस जोर से टकराये कि ज़मीन काँप उठी और घमासान की लड़ाई शुरू हो गयी। मसऊद का तेग़ा इस वक्त एक बला हो रहा था, जिधर पहुँचता लाशों के ढेर लग जाते और सैकड़ों सर उस पर भेंट चढ़ जाते।

पौ फटे तक तेग़े यों ही खड़का किये और यों ही ख़ून का दरिया बहता रहा। जब दिन निकला तो लड़ाई का मैदान मौत का बाज़ार हो रहा था। जिधर निगाह उठती थी, मरे हुओं के सर और हाथ-पैर लहू में तैरते दिखायी देते थे। यकायक शेख़ मख़मूर की कमान से एक तीर बिजली बनकर निकला और अमीर पुरतदबीर की जान के घोंसले पर गिरा और उसके गिरते ही शाही फ़ौज भाग निकली और सरदारी फ़ौज फ़तेह का झण्डा उठाये राजधानी की तरफ बढ़ी।

५

जब यह जीत की लहर-जैसी फ़ौज शहर की दीवार के अन्दर दाख़िल हुई तो शहर के मर्द और औरत, जो बड़ी मुद्दत से गुलामी की सख़्तियाँ झेल रहे थे,

उसकी अगवानी के लिए निकल पड़े। सारा शहर उमड़ आया। लोग सिपाहियों को गले लगाते थे और उन पर फूलों की बरखा करते थे कि जैसे बुलबुलें थीं जो बहेलिये के पंजे से रिहाई पाने पर बाग़ में फूलों को चूम रही थीं। लोग शेख़ मख़मूर के पैरों की धूल माथे से लगाते थे और सरदार नमकख़ोर के पैरों पर ख़ुशी के आँसू बहाते थे।

अब मौक़ा था कि मसऊद अपना जोगिया भेस उतार फेंके और ताजोतख़्त का दावा पेश करे। मगर जब उसने देखा कि मलिका शेर अफ़गन का नाम हर आदमी की ज़बान पर है तो ख़ामोश हो रहा। वह ख़ूब जानता था कि अगर मैं अपने दावे को साबित कर दूँ तो मलिका का दावा ख़त्म हो जायगा। मगर तब भी यह नामुमकिन था कि सख़्त मारकाट के बिना यह फ़ैसला हो सके। एक पुरजोश और आरज़ूमन्द दिल के लिए इस हद तक ज़ब्त करना मामूली बात न थी। जबसे उस ने होश सँभाला, यह ख़्याल कि मैं इस मुल्क का बादशाह हूँ, उसके रगरेशे में घुल गया था। शाह बामुराद की वसीयत उसे एक दम को भी न भूलती थी। दिन को वह बादशाहत के मनसूबे बाँधता और रात को बादशाहत के सपने देखता। यह यक़ीन कि मैं बादशाह हूँ, उसे बादशाह बनाये हुए था। अफ़सोस, आज वह मंसूबे टूट गये और वह सपना तितर-बितर हो गया। मगर मसऊद के चरित्र में मर्दाना ज़ब्त अपनी हद पर पहुँच गया था। उसने उफ़ तक न की, एक ठंडी आह भी न भरी, बल्कि पहला आदमी जिसने मलिका के हाथों को चूमा और उसके सामने सर झुकाया, वह फ़क़ीर मख़मूर था। हाँ, ठीक उस वक्त जब कि वह मलिका के हाथ को चूम रहा था, उसकी ज़िन्दगी भर की लालसाएँ आँसू की एक बूंद बनकर मलिका की मेंहदी-रची हथेली पर गिर पड़ीं कि जैसे मसऊद ने अपनी लालसा का मोती मलिका को सौंप दिया। मलिका ने हाथ खींच लिया और फ़क़ीर मख़मूर के चेहरे पर मुहब्बत से भरी हुई निगाह डाली। जब सल्तनत के सब दरबारी भेंट दे चुके, तोपों की सलामियाँ दग़ने लगीं, शहर में धूमधाम का बाज़ार गर्म हो गया और ख़ुशियों के जलसे चारो तरफ़ नज़र आने लगे।

राजगद्दी के तीसरे दिन मसऊद ख़ुदा की इबादत में बैठा हुआ था कि मलिका शेर अफ़गन अकेले उसके पास आयी और बोली—मसऊद, मैं एक नाचीज़ तोहफ़ा तुम्हारे लिए लायी हूँ और वह मेरा दिल है। क्या तुम उसे मेरे हाथ से क़बूल करोगे? मसऊद अचम्भे से ताकता रह गया, मगर जब मलिका की आँखें मुहब्बत के नशे में डूबी हुई पायीं तो चाव के मारे उठा और उसे सीने से लगाकर बोला—मैं तो

मुद्दत से तुम्हारी बर्छी की नोक का घायल हूँ, मेरी क़िस्मत है कि आज तुम मरहम रखने आयी हो।

७

मुल्के जन्नतनिशाँ अब आज़ादी और खुशहाली का घर है। मलिका शेर अफ़गन को अभी गद्दी पर बैठे साल भर से ज्यादा नहीं गुज़रा मगर सल्तनत का कारबार बहुत अच्छी तरह और खूबी से चल रहा है और इस बड़े काम में उसका प्यारा शौहर मसऊद, जो अभी तक फ़क़ीर मख़मूर के नाम से मशहूर है, उसका सलाहकार और मददगार है।

रात का वक्त था, शाही दरबार सजा हुआ था, बड़े-बड़े वज़ीर अपने पद के अनुसार बैठे हुए थे और नौकर ज़र्क-बर्क़ वर्दियाँ पहने हाथ बाँधे खड़े थे कि एक खिदमतगार ने आकर अर्ज़ की—दोनों जहान की मलिका, एक ग़रीब औरत बाहर खड़ी है और आपके क़दमों का बोसा लेने की गुज़ारिश करती है। दरबारी चौंके और मलिका ने ताज्जुब-भरे लहजे में कहा—अन्दर हाज़िर करो। खिदमतगार बाहर चला गया और ज़रा देर में एक बुढ़िया लाठी टेकती हुई आयी और अपनी पिटारी से एक जड़ाऊ ताज निकालकर बोली—तुम लोग इसे ले लो, अब यह मेरे किसी काम का नहीं रहा। मियाँ ने मरते वक्त इसे मसऊद को देकर कहा था कि तुम इसके मालिक हो, मगर अपने जिगर के टुकड़े मसऊद को कहाँ ढूंढू। रोते-रोते अंधी हो गयी, सारी दुनिया की खाक छानी, मगर उसका कहीं पता न लगा। अब ज़िंदगी से तंग आ गयी हूँ, जीकर क्या करूँगी। यह अमानत मेरे पास है, जिसका जी चाहे ले ले।

दरबार में सन्नाटा छा गया। लोग हैरत के मारे मूरत-से बन गये कि जैसे एक जादूगर था जो उंगली के इशारे से सब का दम बन्द किये हुए था। यकायक मसऊद अपनी जगह से उठा और रोता हुआ जाकर रिन्दा के पैरों पर गिर पड़ा। रिन्दा अपने जिगर के टुकड़े को देखते ही पहचान गयी, उसे छाती से लगा लिया और वह जड़ाऊ ताज उसके सर पर रखकर बोली—साहबो, यही मेरा प्यारा मसऊद और शाहे बामुराद का बेटा है, तुम लोग इसकी रियाया हो, यह ताज इसका है, यह मुल्क इसका है और सारी खिलक़त इसकी है। आज से वह अपने मुल्क का बादशाह है, अपनी क़ौम का खादिम।

दरबार में क़यामत का शोर मचने लगा, दरबारी उठे और मसऊद को हाथों

हाथ ले जाकर तख़्त पर मलिका शेर अफ़गन के बग़ल में बिठा दिया। भेंटें दी जाने लगीं, सलामियाँ दग़ने लगीं, नफ़ीरियों ने खुशी का गीत गाया और बाजों ने जीत का शोर मचाया। मगर जब जोश की यह खुशी ज़रा कम हुई और लोगों ने रिन्दा को देखा तो वह मर गयी थी। आरज़ूओं के पूरे होते ही जान निकल गयी। गोया आरज़ूएँ रूह बनकर उसके मिट्टी के तन को ज़िन्दा रखे हुए थीं।

•

शोक का पुरस्कार

आज तीन दिन गुज़र गये। शाम का वक्त था। मैं युनिवर्सिटी हाल से खुश-खुश चला आ रहा था। मेरे सैकड़ों दोस्त मुझे बधाइयाँ दे रहे थे। मारे खुशी के मेरी बाँछें खिली जाती थीं। मेरी ज़िन्दगी की सबसे प्यारी आरज़ू कि मैं एम० ए० पास हो जाऊँ, पूरी हो गयी थी और ऐसी खूबी से जिसकी मुझे तनिक भी आशा न थी। मेरा नम्बर अव्वल था। वाइस चान्सलर साहब ने खुद मुझसे हाथ मिलाया था और मुस्कराकर कहा था कि भगवान तुम्हें और भी बड़े कामों की शक्ति दे। मेरी खुशी की कोई सीमा न थी। मैं नौजवान था, सुन्दर था, स्वस्थ था, रुपये पैसे की न मुझे इच्छा थी और न कुछ कमी, माँ-बाप बहुत कुछ छोड़ गये थे। दुनिया में सच्ची खुशी पाने के लिए जिन चीज़ों की ज़रूरत है वह सब मुझे प्राप्त थीं। और सबसे बढ़कर पहलू में एक हौसलामन्द दिल था जो ख्याति प्राप्त करने के लिए अधीर हो रहा था।

घर आया, दोस्तों ने यहाँ भी पीछा न छोड़ा, दावत की ठहरी। दोस्तों की ख़ातिर-तवाज़ो में बारह बज गये, लेटा तो बरबस ख़याल मिस लीलावती की तरफ़ जा पहुँचा जो मेरे पड़ोस में रहती थी और जिसने मेरे साथ बी० ए० का डिप्लोमा हासिल किया था। भाग्यशाली होगा वह व्यक्ति जो मिस लीला को ब्याहेगा, कैसी सुन्दर है ! कितना मीठा गला है ! कैसा हँसमुख स्वभाव ! मैं कभी-कभी उसके यहाँ प्रोफ़ेसर साहब से दर्शनशास्त्र में सहायता लेने के लिए जाया करता था। वह दिन शुभ होता था जब प्रोफेसर साहब घर पर न मिलते थे। मिस लीला मेरे साथ बड़े तपाक से पेश आती और मुझे ऐसा मालूम होता था कि मैं ईसा मसीह की शरण में आ जाऊँ तो उसे मुझे अपना पति बना लेने में आपत्ति न होगी। वह शेली, बायरन और कीट्स की प्रेमी थी और मेरी रुचि भी बिलकुल उसी के समान थी। हम जब अकेले होते तो अक्सर प्रेम और प्रेम के दर्शन पर बातें करने लगते और उसके मुँह से भावों में डूबी हुई बातें सुन-सुनकर मेरे दिल में गुदगुदी पैदा होने लगती थी। मगर अफ़सोस मैं अपना मालिक न था। मेरी शादी एक ऊँचे घराने में कर दी गयी थी और अगरचे मैंने अब तक अपनी बीवी की

सूरत भी न देखी थी मगर मुझे पूरा-पूरा विश्वास था कि मुझे उसकी संगत में वह आनन्द नहीं मिल सकता जो मिस लीला की संगत में सम्भव है। शादी हुए दो साल हो चुके थे मगर उसने मेरे पास एक खत भी न लिखा था। मैंने दो-तीन खत लिखे भी, मगर किसी का जवाब न मिला। इससे मुझे शक हो गया था कि उसकी तालीम भी यों ही-सी है।

आह! क्या मैं इसी लड़की के साथ ज़िन्दगी बसर करने पर मजबूर हूँगा? . . .इस सवाल ने मेरे उन तमाम हवाई क़िलों को ढा दिया जो मैंने अभी-अभी बनाये थे। क्या मैं मिस लीला से हमेशा के लिए हाथ धो लूं? नामुमकिन है। मैं कुमुदिनी को छोड़ दूंगा, मैं अपने घरवालों से नाता तोड़ लूँगा, मैं बदनाम हूँगा, परेशान हूँगा, मगर मिस लीला को ज़रूर अपना बनाऊँगा।

इन्हीं खयालों के असर में मैंने अपनी डायरी लिखी और उसे मेज़ पर खुला छोड़कर बिस्तर पर लेट रहा और सोचते-सोचते सो गया।

सबेरे उठकर देखता हूँ तो बाबू निरंजनदास मेरे सामने कुर्सी पर बैठे हैं। उनके हाथ में डायरी थी जिसे वह ध्यानपूर्वक पढ़ रहे थे। उन्हें देखते ही मैं बड़े चाव से लिपट गया। अफ़सोस, अब उस देवोपम स्वभाववाले नौजवान की सूरत देखनी न नसीब होगी। अचानक मौत ने उसे हमेशा के लिए हमसे अलग कर दिया। कुमुदिनी के सगे भाई थे, बहुत स्वस्थ, सुन्दर और हँसमुख, उम्र मुझसे दो ही चार साल ज्यादा थी, ऊँचे पद पर नियुक्त थे, कुछ दिनों से इसी शहर में तवदील होकर आ गये थे। मेरी और उनकी गाढ़ी दोस्ती हो गयी थी। मैंने पूछा—क्या तुमने डायरी पढ़ ली?

निरंजन—हाँ।

मैं—मगर कुमुदिनी से कुछ न कहना।

निरंजन—बहुत अच्छा, न कहूँगा।

मैं—इस वक्त किसी सोच में हो। मेरा डिप्लोमा देखा?

निरंजन—घर से खत आया है, पिता जी बीमार हैं, दो-तीन दिन में जानेवाला हूँ।

मैं—शौक़ से जाइए, ईश्वर उन्हें जल्द स्वस्थ करे।

निरंजन—तुम भी चलोगे? न मालूम कैसा पड़े, कैसा न पड़े।

मैं—मुझे तो इस वक्त माफ़ कर दो।

निरंजनदास यह कहकर चले गये। मैंने हजामत बनायी, कपड़े बदले और

मिस लीलावती से मिलने का चाव मन में लेकर चला। वहाँ जाकर देखा तो ताला पड़ा हुआ है। मालूम हुआ कि मिस साहिबा की तबीयत दो-तीन दिन से खराब थी। आबहवा बदलने के लिए नैनीताल चली गयी हैं। अफ़सोस, मैं हाथ मलकर रह गया। क्या लीला मुझसे नाराज़ थी? उसने मुझे क्यों खबर नहीं दी। लीला, क्या तू बेवफ़ा है, तुझसे बेवफ़ाई की उम्मीद न थी। फ़ौरन पक्का इरादा कर लिया कि आज की डाक से नैनीताल चल दूँ। मगर घर आया तो लीला का ख़त मिला। काँपते हुए हाथों से खोला, लिखा था—मैं बीमार हूँ, मेरे जीने की कोई उम्मीद नहीं है, डाक्टर कहते हैं कि प्लेग है। जब तक तुम आओगे, शायद मेरा क़िस्सा तमाम हो जायगा। आखिरी वक्त तुमसे न मिलने का सख़्त सदमा है। मेरी याद दिल में क़ायम रखना। मुझे सख़्त अफसोस है कि तुमसे मिलकर नहीं आयी। मेरा क़ुसूर माफ करना और अपनी अभागिनी लीला को भुला मत देना। ख़त मेरे हाथ से छूटकर गिर पड़ा। दुनिया आँखों में अँधेरी हो गयी, मुँह से एक ठंडी आह निकली। बिना एक क्षण गँवाये मैंने बिस्तर बाँधा और नैनीताल चलने के लिए तैयार हो गया। घर से निकला ही था कि प्रोफ़ेसर बोस से मुलाक़ात हो गयी। कालेज से चले आ रहे थे, चेहरे पर शोक लिखा हुआ था। मुझे देखते ही उन्होंने जेब से एक तार निकालकर मेरे सामने फेंक दिया। मेरा कलेजा धक् से हो गया। आँखों में अँधेरा छा गया, तार कौन उठाता है, हाय मारकर बैठ गया। लीला, तू इतनी जल्द मुझसे जुदा हो गयी!

२

मैं रोता हुआ घर आया और चारपाई पर मुँह ढाँपकर खूब रोया। नैनीताल जाने का इरादा ख़त्म हो गया। दस-बारह दिन तक मैं उन्माद की-सी दशा में इधर-उधर घूमता रहा। दोस्तों की सलाह हुई कि कुछ रोज़ के लिए कहीं घूमने चले जाओ। मेरे दिल में भी यह बात जम गयी। निकल खड़ा हुआ और दो महीने तक विंध्याचल, पारसनाथ वग़ैरह पहाड़ियों में आवारा फिरता रहा। ज्यों-त्यों करके नयी-नयी जगहों और दृश्यों की सैर से तबीयत को ज़रा तस्कीन हुई। मैं आबू में था जब मेरे नाम तार पहुँचा कि मैं कालेज की असिस्टेण्ट प्रोफ़ेसरी के लिए चुना गया हूँ। जी तो न चाहता था कि फिर इस शहर में आऊँ, मगर प्रिन्सिपल के ख़त ने मजबूर कर दिया। लाचार, लौटा और अपने काम में लग गया।

ज़िन्दादिली नाम को न बाक़ी रही थी। दोस्तों की संगत से भागता और हँसी-मज़ाक से चिढ़ मालूम होती।

एक रोज़ शाम के वक्त मैं अपने अँधेरे कमरे में लेटा हुआ कल्पना-लोक की सर कर रहा था कि सामनेवाले मकान से गाने की आवाज़ आयी। आह, क्या आवाज़ थी, तीर की तरह दिल में चुभी जाती थी, स्वर कितना करुण था! इस वक्त मुझे अन्दाज़ा हुआ कि गाने में क्या असर होता है। तमाम रोंगटे खड़े हो गये, कलेजा मसोसने लगा और दिल पर एक अजीब वेदना-सी छा गयी। आँखों से आँसू बहने लगे। हाय, यह लीला का प्यारा गीत था—

पिया मिलन है कठिन बावरी।

मुझसे ज़ब्त न हो सका, मैं एक उन्माद की-सी दशा में उठा और जाकर सामनेवाले मकान का दरवाज़ा खटखटाया। मुझे उस वक्त यह चेतना न रही कि एक अजनबी आदमी के मकान पर आकर खड़े हो जाना और उसके एकांत में विघ्न डालना परले दर्जे की असभ्यता है।

३

एक बुढ़िया ने दरवाज़ा खोल दिया और मुझे खड़े देखकर लपकी हुई अन्दर गयी। मैं भी उसके साथ चला गया। देहलीज़ तय करते ही एक बड़े कमरे में पहुँचा। उस पर एक सफ़ेद फ़र्श बिछा हुआ था। गावतकिये भी रखे थे। दीवारों पर खूबसूरत तसवीरें लटक रही थीं और एक सोलह-सत्रह साल का सुन्दर नौजवान जिसकी अभी मसें भीग रही थीं मसनद के क़रीब बैठा हुआ हारमोनियम पर गा रहा था। मैं क़सम खा सकता हूँ कि ऐसा सुन्दर स्वस्थ नौजवान मेरी नज़र से कभी नहीं गुज़रा। चाल-ढाल से सिख मालूम होता था। मुझे देखते ही चौंक पड़ा और हारमोनियम छोड़कर खड़ा हो गया। शर्म से सिर झुका लिया और कुछ घबराया हुआ-सा नज़र आने लगा। मैंने कहा—माफ़ कीजिएगा, मैंने आपको बड़ी तकलीफ़ दी। आप इस फ़न के उस्ताद मालूम होते हैं। खासकर जो चीज़ अभी आप गा रहे थे, वह मुझे पसन्द है।

नौजवान ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से मेरी तरफ़ देखा और सर नीचा कर लिया और होंठों ही में कुछ अपने नौसिखियेपन की बात कही। मैंने फिर पूछा—आप यहाँ कब से हैं?

नौजवान—तीन महीने के क़रीब होता है।

मैं—आपका शुभ नाम।

नौजवान—मुझे मेहर सिंह कहते हैं।

मैं बैठ गया और बहुत गुस्ताख़ाना बेतकल्लुफ़ी से मेहर सिंह का हाथ पकड़कर बिठा दिया और फिर माफ़ी माँगी। उस वक्त की बातचीत से मालूम हुआ कि वह पंजाब का रहनेवाला है और यहाँ पढ़ने के लिए आया हुआ है। शायद डाक्टरों ने सलाह दी थी कि पंजाब की आबहवा उसके लिए ठीक नहीं है। मैं दिल में तो झेंपा कि एक स्कूल के लड़के के साथ बैठकर ऐसी बेतकल्लुफ़ी से बातें कर रहा हूँ, मगर संगीत के प्रेम ने इस ख़याल को रहने न दिया। रस्मी परिचय के बाद मैंने फिर प्रार्थना की कि वही चीज़ छेड़िये। मेहर सिंह ने आँखें नीची करके जवाब दिया कि मैं अभी बिलकुल नौसिखिया हूँ।

मैं—यह तो आप अपनी ज़बान से कहिये।

मेहर सिंह—(झेंपकर) आप कुछ फ़रमायें, हारमोनियम हाज़िर है।

मैं—इस फ़न में बिलकुल कोरा हूँ वर्ना आपकी फ़रमाइश ज़रूर पूरी करता।

इसके बाद मैंने बहुत आग्रह किया मगर मेहर सिंह झेंपता ही रहा। मुझे स्वभावतः शिष्टाचार से घृणा है। हालाँकि इस वक्त मुझे रूखा होने का कोई हक़ न था मगर जब मैंने देखा कि यह किसी तरह न मानेगा तो ज़रा रुखाई से बोला—ख़ैर जाने दीजिए। मुझे अफ़सोस है कि मैंने आपका बहुत वक्त बर्बाद किया। माफ़ कीजिए। यह कहकर उठ खड़ा हुआ। मेरी रोनी सूरत देखकर शायद मेहर सिंह को उस वक्त तरस आ गया, उसने झेंपते हुए मेरा हाथ पकड़ लिया और बोला—आप तो नाराज़ हुए जाते हैं।

मैं—मुझे आपसे नाराज़ होने का हक़ हासिल नहीं।

मेहर सिंह—अच्छा बैठ जाइए, मैं आपकी फ़रमाइश पूरी करूँगा। मगर मैं अभी बिलकुल अनाड़ी हूँ।

मैं बैठ गया और मेहर सिंह ने हारमोनियम पर वही गीत अलापना शुरू किया—

पिया मिलन है कठिन बावरी।

कैसी सुरीली तान थी, कैसी मीठी आवाज़, कैसा बेचैन करनेवाला भाव! उसके गले में वह रस था जिसका बयान नहीं हो सकता। मैंने देखा कि गाते-गाते खुद उसकी आँखों में आँसू भर आये। मुझ पर इस वक़्त एक मोहक सपने की-सी दशा छायी हुई थी। एक बहुत मीठा, नाज़ुक, दर्दनाक असर दिल पर हो रहा था

जिसे बयान नहीं किया जा सकता। एक हरे-भरे मैदान का नक़्शा आँखों के सामने खिच गया और लीला, प्यारी लीला उस मैदान पर बैठी हुई मेरी तरफ़ हसरतनाक आँखों से ताक रही थी। मैंने एक लम्बी आह भरी और बिना कुछ कहे उठ खड़ा हुआ। इस वक्त मेहर सिंह ने मेरी तरफ़ ताका, उसकी आँखों में मोती के क़तरे डबडबाये हुए थे और बोला—कभी-कभी तशरीफ़ लाया कीजिएगा।

मैंने सिर्फ़ इतना जवाब दिया—मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ।

४

धीरे-धीरे मेरी यह हालत हो गयी कि जब तक मेहर सिंह के यहाँ जाकर दो-चार गाने न सुन लूँ जी को चैन न आता। शाम हुई और मैं जा पहुँचा। कुछ देर तक गानों की बहार लूटता और तब उसे पढ़ाता। ऐसे ज़हीन और समझदार लड़के को पढ़ाने में मुझे खास मजा आता था। मालूम होता था कि मेरी एक-एक बात उसके दिल पर नक्श हो रही है। जब तक मैं पढ़ाता वह पूरे जी-जान से कान लगाये बैठा रहता। जब उसे देखता, पढ़ने-लिखने में डूबा हुआ पाता। साल भर में अपने भगवान के दिये हुए ज़ेहन की बदौलत उसने अँग्रेजी में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। मामूली चिट्ठियाँ लिखने लगा और दूसरा साल गुज़रते-गुज़रते वह अपने स्कूल के कुल छात्रों से बाज़ी ले गया। जितने मुदर्रिस थे, सब उसकी अक्ल पर हैरत करते और सीधा नेक-चलन ऐसा कि कभी झूठ-मूठ भी किसी ने उसकी शिकायत नहीं की। वह अपने सारे स्कूल की उम्मीद और रौनक़ था लेकिन बावजूद सिख होने के उसे खेल-कूद में रुचि न थी। मैंने उसे कभी क्रिकेट में नहीं देखा। शाम होते ही सीधे घर चला आता और लिखने-पढ़ने में लग जाता।

मैं धीरे-धीरे उससे इतना हिल-मिल गया कि बजाय शिष्य के उसको अपना दोस्त समझने लगा। उम्र के लिहाज़ से उसकी समझ आश्चर्यजनक थी। देखने में १६-१७ साल से ज्यादा न मालूम होता मगर जब कभी मैं रवानी में आकर दुर्बोध कवि-कल्पनाओं और कोमल भावों की उसके सामने व्याख्या करता तो मुझे उसकी भंगिमा से ऐसा मालूम होता कि एक-एक बारीकी को समझ रहा है। एक दिन मैंने उससे पूछा—मेहर सिंह, तुम्हारी शादी हो गयी?

मेहर सिंह ने शरमाकर जवाब दिया—अभी नहीं।

मैं—तुम्हें कैसी औरत पसन्द है?

मेहर सिंह—मैं शादी करूँगा ही नहीं।

पुस्तकालय

मैं—क्यों ?

मेहर सिंह—मुझ जैसे जाहिल गँवार के साथ शादी करना कोई औरत पसन्द न करेगी।

मैं—बहुत कम ऐसे नौजवान होंगे जो तुमसे ज्यादा लायक हों या तुमसे ज्यादा समझ रखते हों ।

मेहर सिंह ने मेरी तरफ़ अचम्भे से देखकर कहा—आप दिल्लगी करते हैं।

मैं—दिल्लगी नहीं, मैं सच कहता हूँ। मुझे खुद आश्चर्य होता है कि इतने दिनों में तुमने इतनी योग्यता क्योंकर पैदा कर ली। अभी तुम्हें अंग्रेजी शुरू किये तीन बरस से ज़्यादा नहीं हुए।

मेहर सिंह—क्या मैं किसी पढ़ी-लिखी लेडी को खुश रख सकूँगा।

मैं—(जोश से) बेशक !

५

गर्मी का मौसम था। मैं हवा खाने शिमले गया हुआ था। मेहर सिंह भी मेरे साथ था। वहाँ मैं बीमार पड़ा। चेचक निकल आयी। तमाम जिस्म में फफोले पड़ गये। पीठ के बल चारपाई पर पड़ा रहता। उस वक्त मेहर सिंह ने मेरे साथ जो-जो एहसान किये वह मुझे हमेशा याद रहेंगे। डाक्टरों की सख्त मनाही थी कि वह मेरे कमरे में न आवे। मगर मेहर सिंह आठों पहर मेरे ही पास बैठा रहता। मुझे खिलाता-पिलाता, उठाता-बिठाता। रात-रात भर चारपाई के क़रीब बैठकर जागते रहना मेहर सिंह ही का काम था। सगा भाई भी इससे ज़्यादा सेवा नहीं कर सकता था। एक महीना गुज़र गया। मेरी हालत रोज़-ब-रोज़ बिगड़ती जाती थी। एक रोज़ मैंने डाक्टर को मेहर सिंह से कहते हुए सुना कि इनकी हालत नाजुक है। मुझे यक़ीन हो गया कि अब न बचूँगा, मगर मेहर सिंह कुछ ऐसी दृढ़ता से मेरी सेवा-शुश्रूषा में लगा हुआ था कि जैसे वह मुझे ज़बर्दस्ती मौत के मुँह से बचा लेगा। एक रोज़ शाम के वक्त मैं कमरे में लेटा हुआ था कि किसी के सिसकी लेने की आवाज़ आयी। वहाँ मेहर सिंह को छोड़कर और कोई न था। मैंने पूछा—मेहर सिंह, मेहर सिंह, तुम रोते हो !

मेहर सिंह ने ज़ब्त करके कहा—नहीं, रोऊँ क्यों, और मेरी तरफ़ बड़ी दर्द-भरी आँखों से देखा।

मैं—तुम्हारे सिसकने की आवाज़ आयी।

मेहर सिंह—वह कुछ बात न थी। घर की याद आ गयी थी।

मैं—सच बोलो ।

मेहर सिंह की आँखें फिर डबडबा आयीं। उसने मेज़ पर से आइना उठाकर मेरे सामने रख दिया। हे नारायण ! मैं खुद अपने को पहचान न सका। चेहरा इतना ज्यादा बदल गया था। रंगत बजाय सुर्ख़ के सियाह हो रही थी और चेचक के बदनुमा दाग़ों ने सूरत बिगाड़ दी थी। अपनी यह बुरी हालत देखकर मुझसे भी ज़ब्त न हो सका और आँखें डबडबा गयीं। वह सौन्दर्य जिस पर मुझे इतना गर्व था बिलकुल विदा हो गया था।

६

मैं शिमले से वापस आने की तैयारी कर रहा था। मेहर सिंह उसी रोज मुझसे विदा होकर अपने घर चला गया था। मेरी तबीयत बहुत उचाट हो रही थी। असबाब सब बँध चुका था कि एक गाड़ी मेरे दरवाज़े पर आकर रुकी और उसमें से कौन उतरा ? मिस लीला ! मेरी आँखों को विश्वास न हो रहा था, चकित होकर ताकने लगा। मिस लीलावती ने आगे बढ़कर मुझे सलाम किया और हाथ मिलाने को बढ़ाया। मैंने भी बौखलाहट में हाथ तो बढ़ा दिया पर अभी तक यह यक़ीन नहीं हुआ था कि मैं सपना देख रहा हूँ या हक़ीक़त है। लीला के गालों पर वह लाली न थी न वह चुलबुलापन बल्कि वह बहुत गम्भीर और पीली-पीली-सी हो रही थी। आखिर मेरी हैरत कम न होते देखकर उसने मुस्कराने की कोशिश करते हुए कहा—तुम कैसे जेण्टिलमैन हो कि एक शरीफ लेडी को बैठने के लिए कुर्सी भी नहीं देते !

मैंने अन्दर से कुर्सी लाकर उसके लिए रख दी, मगर अभी तक यही समझ रहा था कि सपना देख रहा हूँ ।

लीलावती ने कहा—शायद तुम मुझे भूल गये ।

मैं—भूल तो उम्र भर नहीं सकता मगर आँखों को एतबार नहीं आता ।

लीला—तुम तो बिलकुल पहचाने नहीं जाते ।

मैं—तुम भी तो वह नहीं रहीं। मगर आखिर यह भेद क्या है, क्या तुम स्वर्ग से लौट आयीं !

लीला—मैं तो नैनीताल में अपने मामा के यहाँ थी।

मैं—और वह चिट्ठी मुझे किसने लिखी थी और तार किसने दिया था ?

लीला—मैंने ही।

मैं—क्यों? तुमने मुझे यह धोखा क्यों दिया? शायद तुम अन्दाज़ा नहीं कर सकतीं कि मैंने तुम्हारे शोक में कितनी पीड़ा सही है।

मुझे उस वक़्त एक अनोखा गुस्सा आया—यह फिर मेरे सामने क्यों आ गयी! मर गयी थी तो मरी ही रहती!

लीला—इसमें एक गुर था, मगर यह बातें तो फिर होती रहेंगी। आओ इस वक़्त तुम्हें अपनी एक लेडी फ्रेण्ड से इण्ट्रोड्यूस कराऊँ, वह तुमसे मिलने की बहुत इच्छुक है।

मैंने अचरज से पूछा—मुझसे मिलने की! मगर लीलावती ने इसका कुछ जवाब न दिया और मेरा हाथ पकड़कर गाड़ी के सामने ले गयी। उसमें एक युवती हिन्दुस्तानी कपड़े पहने बैठी हुई थी। मुझे देखते ही उठ खड़ी हुई और हाथ बढ़ा दिया। मैंने लीला की तरफ़ सवाल करती हुई आँखों से देखा।

लीला—क्या तुमने नहीं पहचाना?

मैं—मुझे अफ़सोस है कि मैंने आपको पहले कभी नहीं देखा और अगर देखा भी हो तो घूंघट की आड़ से क्योंकर पहचान सकता हूँ।

लीला—यह तुम्हारी बीवी कुमुदिनी है!

मैंने आश्चर्य के स्वर में कहा—कुमुदिनी यहाँ!

लीला—कुमुदिनी, मुँह खोल दो और अपने प्यारे पति का स्वागत करो।

कुमुदिनी ने काँपते हुए हाथों से ज़रा-सा घूंघट उठाया। लीला ने सारा मुँह खोल दिया और ऐसा मालूम हुआ कि जैसे बादल से चांद निकल आया। मुझे ख़याल आया, मैंने यह चेहरा कहीं देखा है। कहां? आह, उसकी नाक पर भी तो वही तिल है, उंगली में वही अंगूठी भी है।

लीला—क्या सोचते हो, अब पहचाना?

मैं—मेरी कुछ अक़्ल काम नहीं करती। हूबहू यही हुलिया मेरे एक प्यारे दोस्त मेहर सिंह का है।

लीला—(मुस्कराकर) तुम तो हमेशा निगाह के तेज़ बनते थे, इतना भी नहीं पहचान सकते!

मैं खुशी से फूल उठा—कुमुदिनी मेहर सिंह के भेस में! मैंने उसी वक़्त उसे गले से लगा लिया और खूब दिल खोलकर प्यार किया। इन कुछ क्षणों में मुझे जो खुशी हासिल हुई उसके मुक़ाबिले में ज़िन्दगी भर की खुशियां हेच हैं। हम दोनों

आलिंगन-पाश में बँधे हुए थे। कुमुदिनी, प्यारी कुमुदिनी के मुँह से आवाज न निकलती थी। हाँ, आँखों से आंसू जारी थे।

मिस लीला बाहर खड़ी कोमल आँखों से यह दृश्य देख रही थी। मैंने उसके हाथों को चूमकर कहा—प्यारी लीला, तुम सच्ची देवी हो, जब तक जियेंगे तुम्हारे कृतज्ञ रहेंगे।

लीला के चेहरे पर एक हल्की-सी मुसकराहट दिखायी दी। बोली—अब तो शायद तुम्हें मेरे शोक का काफ़ी पुरस्कार मिल गया।

सांसारिक प्रेम और देश-प्रेम

शहर लन्दन के एक पुराने टूटे-फूटे होटल में जहां शाम ही से अँधेरा हो जाता है, जिस हिस्से में फ़ैशनेबुल लोग आना ही गुनाह समझते हैं और जहां जुआ, शराबखोरी और बदचलनी के बड़े भयानक दृश्य हरदम आंख के सामने रहते हैं उस होटल में, उस बदचलनी के अखाड़े में इटली का नामवर देश-प्रेमी मैज़िनी ख़ामोश बैठा हुआ है। उसका सुन्दर चेहरा पीला है, आंखों से चिन्ता बरस रही है, होंठ सूखे हुए हैं और शायद महीनों से हजामत नहीं बनी। कपड़े मैले-कुचैले हैं। कोई व्यक्ति जो मैज़िनी को पहले से न जानता हो, उसे देखकर यह ख़याल करने से नहीं रुक सकता कि हो न हो यह भी उन्हीं अभागे लोगों में है जो अपनी वासनाओं के गुलाम होकर ज़लील से ज़लील काम करते हैं।

मैज़िनी अपने विचारों में डूबा हुआ है। आह बदनसीब कौम ! ऐ मज़लूम इटली ! क्या तेरी क़िस्मतें कभी न सुधरेंगी, क्या तेरे सैंकड़ों सपूतों का खून ज़रा भी रंग न लायेगा ! क्या तेरे देश से निकाले हुए हज़ारों जाँनिसारों की आहों में ज़रा भी तासीर नहीं। क्या तू अन्याय और अत्याचार और गुलामी के फंदे में हमेशा गिरफ्तार रहेगी। शायद तुझमें अभी सुधरने की, स्वतन्त्र होने की योग्यता नहीं आयी। शायद तेरी क़िस्मत में कुछ दिनों और ज़िल्लत और बर्बादी झेलनी लिखी है। आज़ादी, हाय आज़ादी, तेरे लिए मैंने कैसे-कैसे दोस्त, जान से प्यारे दोस्त कुर्बान किये। कैसे-कैसे नौजवान, होनहार नौजवान, जिनकी मांएँ और बीवियाँ आज उनकी क़ब्र पर आँसू बहा रही हैं और अपने कष्टों और आपदाओं से तंग आकर उनके वियोग के कष्ट में अभागे, आफ़त के मारे मैज़िनी को शाप दे रही हैं। कैसे-कैसे शेर जो दुश्मनों के सामने पीठ फेरना न जानते थे, क्या यह सब कुर्बानियाँ, यह सब भेंटें काफ़ी नहीं हैं ? आज़ादी तू ऐसी क़ीमती चीज़ है ! हां तो फिर मैं क्यों ज़िन्दा रहूँ ? क्या यह देखने के लिए कि मेरा प्यारा वतन, मेरा प्यारा देश, धोखेबाज़ अत्याचारी दुश्मनों के पैरों तले रौंदा जाये, मेरे प्यारे भाई, मेरे प्यारे हमवतन, अत्याचार का शिकार बनें। नहीं मैं यह देखने के लिए ज़िन्दा नहीं रह सकता !

मैज़िनी इन्हीं ख़यालों में डूबा हुआ था कि उसका दोस्त रफ़ेती जो उसके साथ निर्वासित किया गया था, इस कोठरी में दाखिल हुआ। उसके हाथ में एक बिस्कुट का टुकड़ा था। रफ़ेती उम्र में अपने दोस्त से दो-चार बरस छोटा था। भंगिमा से सज्जनता झलक रही थी। उसने मैज़िनी का कंधा पकड़कर हिलाया और कहा—जोज़ेफ़, यह लो, कुछ खा लो ।

मैज़िनी ने चौंककर सर उठाया और बिस्कुट देखकर बोला—यह कहाँ से लाये ? तुम्हारे पास पैसे कहाँ थे ?

रफ़ेती—पहले खा लो फिर यह बातें पूछना, तुमने कल शाम से कुछ नहीं खाया है ।

मैज़िनी—पहले यह बता दो, कहाँ से लाये। जेब में तम्बाकू का डिब्बा भी नज़र आता है। इतनी दौलत कहाँ हाथ लगी ?

रफ़ेती—पूछकर क्या करोगे ? वही अपना नया कोट जो मां ने भेजा था, गिरो रख आया हूँ ।

मैज़िनी ने एक ठंडी साँस ली, आँखों से आँसू टप-टप ज़मीन पर गिर पड़े । रोते हुए बोला—यह तुमने क्या हरकत की, क्रिसमस के दिन आते हैं, उस वक़्त क्या पहनोगे ? क्या इटली के एक लखपती व्यापारी का इकलौता बेटा क्रिसमस के दिन भी ऐसे ही फटे-पुराने कोट में बसर करेगा ? एं ?

रफ़ेती—क्यों, क्या उस वक़्त तक कुछ आमदनी न होगी, हम तुम दोनों नये जोड़े बनवाएँगे और अपने प्यारे देश की आनेवाली आज़ादी के नाम पर खुशियाँ मनाएँगे।

मैज़िनी—आमदनी की तो कोई सूरत नज़र नहीं आती। जो लेख मासिक पत्रिकाओं के लिए लिखे गये थे, वह वापस ही आ गये। घर से जो कुछ मिलता है, वह कब का खत्म हो चुका। अब और कौन-सा ज़रिया है ?

रफ़ेती—अभी क्रिसमस को हफ़्ता भर पड़ा है। अभी से उसकी क्या फ़िक्र करें। और अगर मान लो यही कोट पहना तो क्या ? तुमने नहीं मेरी बीमारी में डाक्टर की फ़ीस के लिए मैग्डलीन की अँगूठी बेच डाली थी ? मैं जल्दी ही यह बात उसे लिखनेवाला हूँ, देखना तुम्हें कैसा बनाती है ।

२

क्रिसमस का दिन है, लन्दन में चारों तरफ़ खुशियों की गर्म बाज़ारी है। छोटे-बड़े, अमीर-ग़रीब सब अपने-अपने घर खुशियाँ मना रहे हैं और अपने अच्छे से अच्छे

कपड़े पहनकर गिरजाघरों में जा रहे हैं। कोई उदास सूरत नज़र नहीं आती। ऐसे वक़्त मैज़िनी और रफ़ेती दोनों उसी छोटी सी अँधेरी कोठरी में सर झुकाये ख़ामोश बैठे हैं। मैज़िनी ठण्डी आहें भर रहा है और रफ़ेती रह-रहकर दरवाज़ा पर आता है और बदमस्त शराबियों को और दिनों से ज़्यादा बहकते और दीवानेपन की हरकतें करते देखकर अपनी ग़रीबी और मुहताजी की फ़िक्र दूर करना चाहता है। अफ़सोस! इटली का सरताज जिसकी एक ललकार पर हज़ारों आदमी अपना ख़ून बहाने के लिए तैयार हो जाते थे, आज ऐसा मुहताज हो रहा है कि उसे खाने का ठिकाना नहीं। यहाँ तक कि आज सुबह से उसने एक सिगार भी नहीं पिया। तम्बाकू ही दुनिया की वह नेमत थी जिससे वह हाथ नहीं खींच सकता था और वह भी आज उसे नसीब न हुआ। मगर इस वक़्त उसे अपनी फ़िक्र नहीं, रफ़ेती, नौजवान, ख़ुशहाल और ख़ूबसूरत होनहार रफ़ेती की फ़िक्र जी पर भारी हो रही है। वह पूछता है कि मुझे क्या हक़ है कि मैं एक ऐसे आदमी को अपने साथ ग़रीबी की तकलीफ़ें झेलने पर मजबूर करूँ जिसके स्वागत के लिए दुनिया की सब नेमतें बाँहें खोले खड़ी हैं।

इतने में एक चिट्ठीरसा ने पूछा—जोज़ेफ़ मैज़िनी यहाँ कहीं रहता है? अपनी चिट्ठी ले जा।

रफ़ेती ने ख़त ले लिया और ख़ुशी के जोश से उछलकर बोला—जोज़ेफ़, यह लो मैग्डलीन का ख़त है।

मैज़िनी ने चौंककर ख़त ले लिया और बड़ी बेसब्री से खोला। लिफ़ाफ़ा खोलते ही थोड़े से बालों का एक गुच्छा गिर पड़ा, जो मैग्डलीन ने क्रिसमस के उपहार के रूप में भेजा था। मैज़िनी ने उस गुच्छे को चूमा और उसे उठाकर अपने सीने की जेब में खोंस लिया। ख़त में लिखा था—

माइ डियर जोज़ेफ,

यह तुच्छ भेंट स्वीकार करो। भगवान करे तुम्हें एक सौ क्रिसमस देखने नसीब हों। इस यादगार को हमेशा अपने पास रखना और ग़रीब मैग्डलीन को भूलना मत। मैं और क्या लिखूँ। कलेजा मुँह को आया जाता है। हाय जोज़ेफ़, मेरे प्यारे, मेरे स्वामी, मेरे मालिक जोज़ेफ़, तू मुझे कब तक तड़पायेगा। अब ज़ब्त नहीं होता। आँखों में आँसू उमड़े आते हैं। मैं तेरे साथ मुसीबतें झेलूँगी, भूखों मरूँगी, यह सब मुझे गवारा है, मगर तुझसे जुदा रहना गवारा नहीं। तुझे क़सम है, तुझे अपने ईमान की क़सम है, तुझे अपने वतन की क़सम, तुझे मेरी क़सम, यहाँ आ जा, यह

आँखें तरस रही हैं, कब तुझे देखूंगी। क्रिसमस करीब है, मुझे क्या, जब तक जिन्दा हूँ, तेरी हूँ।

तुम्हारी
मैग्डलीन

३

मैग्डलीन का घर स्विट्ज़रलैण्ड में था। वह एक समृद्ध व्यापारी की बेटी थी और अनिन्द्य सुन्दरी। आन्तरिक सौंदर्य में भी उसका जोड़ मिलना मुश्किल था। कितने ही अमीर और रईस लोग उसका पागलपन सर में रखते थे, मगर वह किसी को कुछ ख़याल में न लाती थी। मैज़िनी जब इटली से भागा तो स्विट्ज़रलैण्ड में आकर शरण ली। मैग्डलीन उस वक्त भोली-भाली जवानी की गोद में खेल रही थी। मैज़िनी की हिम्मत और कुर्बानियों की तारीफें पहले ही सुन चुकी थी। कभी-कभी अपनी माँ के साथ उसके यहाँ आने लगी और आपस का मिलना-जुलना जैसे-जैसे बढ़ा और मैज़िनी के भीतरी सौन्दर्य का ज्यों-ज्यों उसके दिल पर गहरा असर होता गया, उसकी मुहब्बत उसके दिल में पक्की होती गयी। यहाँ तक कि उसने एक दिन खुद लाज-शर्म को किनारे रखकर मैज़िनी के पैरों पर सिर रख दिया और कहा—मुझे अपनी सेवा में स्वीकार कर लीजिए।

मैज़िनी पर भी उस वक़्त जवानी छाई हुई थी, देश की चिन्ताओं ने अभी दिल को ठंडा नहीं किया था। जवानी की पुरजोश उम्मीदें दिल में लहरें मार रही थीं, मगर उसने संकल्प कर लिया था कि मैं देश और जाति पर अपने को न्योछावर कर दूंगा। और इस संकल्प पर कायम रहा। एक ऐसी सुन्दर युवती के नाज़ुक-नाज़ुक होठों से ऐसी दरख़्वास्त सुनकर रद कर देना मैज़िनी ही जैसे संकल्प के पक्के, हियाव के पूरे आदमी का काम था।

मैग्डलीन भीगी-भीगी आँखें लिये उठी मगर निराश न हुई थी। इस असफलता ने उसके दिल में प्रेम की आग और भी तेज़ कर दी और गो आज मैज़िनी को स्विट्ज़रलैंड छोड़े कई साल गुज़रे मगर वफ़ादार मैग्डलीन अभी तक मैज़िनी को नहीं भूली। दिनों के साथ उसकी मुहब्बत और भी गाढ़ी और सच्ची होती जाती है।

मैज़िनी ख़त पढ़ चुका तो एक लम्बी आह भरकर रफ़ेती से बोला—देखा मैग्डलीन क्या कहती है?

रफ़ेती—उस गरीब की जान लेकर दम लोगे !

मैज़िनी फिर ख़याल में डूबा—मैग्डलीन, तू नौजवान है, सुन्दर है, भगवान ने तुझे अकूत दौलत दी है, तू क्यों एक ग़रीब, दुखियारे, कंगाल, फक्कड़, परदेश में मारे-मारे फिरनेवाले आदमी के पीछे अपनी जिन्दगी मिट्टी में मिला रही है ! मुझ जैसा मायूस, आफ़त का मारा हुआ आदमी तुझे क्योंकर खुश रख सकेगा ? नहीं, नहीं, मैं ऐसा स्वार्थी नहीं हूँ। दुनिया में बहुत से ऐसे हँसमुख खुशहाल नौजवान हैं जो तुझे खुश रख सकते हैं, जो तेरी पूजा कर सकते हैं। क्यों तू उनमें से किसी को अपनी गुलामी में नहीं ले लेती। मैं तेरे प्रेम, सच्चे, नेक और निःस्वार्थ प्रेम का आदर करता हूँ। मगर मेरे लिए, जिसका दिल देश और जाति पर समर्पित हो चुका है, तू एक प्यारी और हमदर्द बहन के सिवा और कुछ नहीं हो सकती। मुझमें ऐसी क्या खूबी है, ऐसे कौन से गुण हैं कि तुझ जैसी देवी मेरे लिए ऐसी मुसीबतें झेल रही है। आह मैज़िनी, कम्बख्त मैज़िनी, तू कहीं का न हुआ। जिनके लिए तूने अपने को न्योछावर कर दिया, वह तेरी सूरत से नफ़रत करते हैं। जो तेरे हमदर्द हैं, वह समझते हैं तू सपने देख रहा है।

इन खयालों से बेबस होकर मैज़िनी ने कलम-दावात निकाली और मैग्डलीन को खत लिखना शुरू किया।

४

प्यारी मैग्डलीन,

तुम्हारा ख़त उस अनमोल तोहफ़े के साथ आया। मैं तुम्हारा हृदय से कृतज्ञ हूँ कि तुमने मुझ जैसे बेकस और बेबस आदमी को इस भेंट के काबिल समझा। मैं उसकी हमेशा क़द्र करूँगा। यह मेरे पास हमेशा एक सच्चे निःस्वार्थ और अमर प्रेम की स्मृति के रूप में रहेगी और जिस वक़्त यह मिट्टी का शरीर क़ब्र की गोद में जायगा मेरी आख़िरी वसीयत यह होगी कि यह यादगार मेरे जनाज़े के साथ दफन कर दी जाय। मैं शायद खुद उस ताक़त का अन्दाज़ा नहीं लगा सकता जो मुझे इस ख़याल से मिलती है, कि दुनिया में जहाँ चारों तरफ़ मेरे बारे में बदगुमानियाँ फैल रही हैं, कम से कम एक ऐसी नेक औरत है जो मेरी नियत की सफाई और मेरी बुराइयों से पाक कोशिश पर सच्ची निष्ठा रखती है और शायद तुम्हारी हमदर्दी का यकीन है कि मैं ज़िन्दगी की ऐसी कठिन परीक्षाओं में सफल होता जाता हूँ।

मगर प्यारी बहन, मुझे कोई तकलीफ़ नहीं है। तुम मेरी तकलीफों के खयाल से अपना दिल मत दुखाना। मैं बहुत आराम से हूँ। तुम्हारे प्रेम जैसी अक्षयनिधि

पाकर भी अगर मैं कुछ थोड़े से शारीरिक कष्टों का रोना रोऊँ तो मुझ जैसा अभागा आदमी दुनिया में कौन होगा ।

मैंने सुना है, तुम्हारी सेहत रोज़-ब-रोज़ गिरती जाती है। मेरा जी बेअख्तियार चाहता है कि तुझे देखूँ। काश मैं आजाद होता, काश मेरा दिल इस काबिल होता कि तुझे भेंट चढ़ा सकता। मगर एक पज़मुर्दा उदास दिल तेरे क़ाबिल नहीं। मैग्डलीन, खुदा के वास्ते अपनी सेहत का खयाल रक्खो, मुझे शायद इससे ज्यादा और किसी बात की तकलीफ़ न होगी कि प्यारी मैग्डलीन तकलीफ में है और मेरे लिए! तेरा पाकीज़ा चेहरा इस वक़्त निगाहों के सामने है। मेगा! देखो मुझसे नाराज़ न हो। खुदा की क़सम मैं तुम्हारे क़ाबिल नहीं हूँ। आज क्रिसमस का दिन है, तुम्हें क्या तोहफ़ा भेजूँ। खुदा तुम पर हमेशा अपनी बेइन्तहा बरकतों का साया रक्खे। अपनी माँ को मेरी तरफ़ से सलाम कहना। तुम लोगों को देखने की इच्छा है। देखें कब तक पूरी होती है।

तेरा जोज़ेफ़

५

इस वाक़ये के बाद बहुत दिन गुज़र गये। जोज़ेफ़ मैज़िनी फिर इटली पहुँचा और रोम में पहली बार जनता के राज्य का एलान किया गया। तीन आदमी राज्य की व्यवस्था के लिए निर्वाचित किये गये। मैज़िनी भी उनमें एक था। मगर थोड़े ही दिनों में फ्रांस की ज़्यादतियों और पीडमाण्ट के बादशाह की दग़ा-बाज़ियों की बदौलत इस जनता के राज का ख़ातमा हो गया और उसके कर्मचारी और मंत्री अपनी जानें लेकर भाग निकले। मैज़िनी अपने विश्वसनीय मित्रों की दग़ाबाज़ी और मौक़ा-परस्ती पर पेचोताब खाता हुआ ख़स्ताहाल और परेशान रोम की गलियों की खाक छानता फिरता था। उसका यह सपना कि रोम को मैं ज़रूर एक दिन जनता के राज का केन्द्र बनाकर छोड़ूंगा, पूरा होकर फिर तितर-बितर हो गया।

दोपहर का वक़्त था, धूप से परीशान होकर वह एक पेड़ की छाया में ज़रा दम लेने के लिए ठहर गया कि सामने से एक लेडी आती हुई दिखाई दी। उसका चेहरा पीला था, कपड़े बिलकुल सफ़ेद और सादा, उम्र तीस साल से ज्यादा। मैज़िनी आत्म-विस्मृति की दशा में था कि यह स्त्री प्रेम से व्यग्र होकर उसके गले लिपट गयी। मैज़िनी ने चौंककर देखा, बोला—प्यारी मैग्डलीन, तुम हो! यह कहते-

कहते उसकी आँखें भीग गयीं। मैग्डलीन ने रोकर कहा—जोज़ेफ़! और मुँह से कुछ न निकला।

दोनों ख़ामोश कई मिनट तक रोते रहे। आख़िर मैज़िनी बोला—तुम यहाँ कब आयीं, मेगा?

मैग्डलीन—मैं यहाँ कई महीने से हूँ, मगर तुमसे मिलने की कोई सूरत नहीं निकलती थी। तुम्हें काम-काज में डूबा हुआ देखकर और यह समझकर कि अब तुम्हें मुझ जैसी औरत की हमदर्दी की ज़रूरत बाक़ी नहीं रही, तुमसे मिलने की कोई ज़रूरत न देखती थी। (रुककर) क्यों जोज़ेफ़, यह क्या कारण है कि अक्सर लोग तुम्हारी बुराई किया करते हैं? क्या वह अंधे हैं, क्या भगवान ने उन्हें आँखें नहीं दीं?

जोज़ेफ़—मेगा, शायद वह लोग सच कहते होंगे। फ़िलहाल मुझमें वह गुण नहीं हैं जो मैं शान के मारे अक्सर कहा करता हूँ कि मुझमें हैं या जिन्हें तुम अपनी सरलता और पवित्रता के कारण मुझमें मौजूद समझती हो। मेरी कमज़ोरियाँ रोज़-ब-रोज़ मुझे मालूम होती जाती हैं।

मैग्डलीन—जभी तो तुम इस काबिल हो कि मैं तुम्हारी पूजा करूँ। मुबारक है वह इन्सान जो ख़ुदी को मिटाकर अपने को हेच समझने लगे। जोज़ेफ़, भगवान के लिए मुझे इस तरह अपने से मत अलग करो। मैं तुम्हारी हो गयी हूँ और मुझे विश्वास है कि तुम वैसे ही पाक-साफ़ हो जैसा हमारा ईसू था। यह ख़याल मेरे मन पर अंकित हो गया है और अगर उसमें ज़रा कमज़ोरी आ गयी थी तो तुम्हारी इस वक़्त की बातचीत ने उसे और भी पक्का कर दिया। बेशक तुम फ़रिश्ते हो। मगर मुझे अफ़सोस है कि दुनिया में क्यों लोग इतने तंग-दिल और अंधे होते हैं और ख़ासतौर पर वह लोग जिन्हें मैं तंग ख़याल से ऊपर समझती थी। रफ़ेती, रसारीनो, पलाइनो, बर्नाबास यह सब के सब तुम्हारे दोस्त हैं। तुम उन्हें अपना दोस्त समझते हो, मगर वह सब तुम्हारे दुश्मन हैं और उन्होंने मुझसे मेरे सामने सैकड़ों ऐसी बातें तुम्हारे बारे में कही हैं जिनका मैं मरकर भी यक़ीन नहीं कर सकती। वह सब ग़लत झूठ बकते हैं, हमारा प्यारा जोज़ेफ़ वैसा ही है जैसा मैं समझती थी बल्कि उससे भी अच्छा। क्या यह भी तुम्हारी एक ज़ाती ख़ूबी नहीं है कि तुम अपने दुश्मनों को भी अपना दोस्त समझते हो?

जोज़ेफ़ से अब सब्र न हो सका। मैग्डलीन के मुरझाये हुए पीले-पीले हाथों को चूमकर कहा—प्यारी मेगा, मेरे दोस्त बेक़सूर हैं और मैं ख़ुद दोषी हूँ। (रोकर)

जो कुछ उन्होंने कहा वह सब मेरे ही इशारे और मर्ज़ी के अनुसार था, मैंने तुमसे दग़ा की मगर मेरी प्यारी बहन, यह सिर्फ इसलिए था कि तुम मेरी तरफ से बेपरवाह हो जाओ और अपनी जवानी के बाक़ी दिन खुशी से बसर करो। मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ। मैंने तुम्हें ज़रा भी न समझा था। मैं तुम्हारे प्रेम की गहराई से अपरिचित था क्योंकि मैं जो चाहता था उसका उल्टा असर हुआ। मगर मेगा, मैं माफ़ी चाहता हूँ।

मैग्डलीन—हाय जोज़ेफ़, तुम मुझसे माफ़ी माँगते हो, ऐं, तुम जो दुनिया के सब इन्सानों से ज्यादा नेक, ज्यादा सच्चे और ज्यादा लायक हो! मगर हाँ, बेशक तुमने मुझे बिलकुल न समझा था जोज़ेफ़! यह तुम्हारी ग़लती थी। मुझे ताज्जुब तो यह है कि तुम्हारा ऐसा पत्थर का दिल कैसे हो गया।

जोज़ेफ़—मेगा, ईश्वर जानता है जब मैंने रफ़ेती को यह सब सिखा-पढ़ाकर तुम्हारे पास भेजा है, उस वक़्त मेरे दिल की क्या कैफ़ियत थी। मैं जो दुनिया में नेकनामी को सबसे ज्यादा क़ीमती समझता हूँ और मैं जिसने दुश्मनों के ज़ाती हमलों को कभी पूरी तरह काटे बिना न छोड़ा, अपने मुँह से सिखाऊँ कि जाकर मुझे बुरा कहो! मगर यह केवल इसलिए था कि तुम अपने शरीर का ध्यान रक्खो और मुझे भूल जाओ।

सच्चाई यह थी कि मैज़िनी ने मैग्डलीन के प्रेम को रोज़-ब-रोज़ बढ़ते देखकर एक ख़ास हिकमत की थी। उसे खूब मालूम था कि मैग्डलीन के प्रेमियों में से कितने ही ऐसे हैं जो उससे ज्यादा सुन्दर, ज्यादा दौलतमन्द और ज्यादा अक्लवाले हैं, मगर वह किसी को ख़याल में नहीं लाती। मुझमें उसके लिए जो ख़ास आकर्षण है, वह मेरे कुछ खास गुण हैं और अगर मेरे ऐसे मित्र, जिनका आदर मैग्डलीन भी करती है, उससे मेरी शिकायत करके इन गुणों का महत्व उसके दिल से मिटा दें तो वह खुद-ब-खुद मुझे भूल जायेगी। पहले तो उसके दोस्त इस काम के लिए तैयार न होते थे मगर इस डर से कि कहीं मैग्डलीन ने घुल-घुलकर जान दे दी तो मैज़िनी जिन्दगी भर हमें माफ़ न करेगा, उन्होंने यह अप्रिय काम स्वीकार कर लिया था। वह स्विट्ज़रलैण्ड गये और जहाँ तक उनकी ज़बान में ताक़त थी, अपने दोस्त की पीठ पीछे बुराई करने में खर्च की। मगर मैग्डलीन पर मुहब्बत का रंग ऐसा गहरा चढ़ा हुआ था, कि इन कोशिशों का इसके सिवाय और कोई नतीजा न हो सकता था जो हुआ। वह एक रोज़ बेक़रार होकर घर से निकल खड़ी हुई और रोम में आकर एक सराय में ठहर गयी। यहाँ उसका रोज़ का नियम था कि

मैज़िनी के पीछे-पीछे उसकी निगाह से दूर घूमा करती मगर उसे आश्वस्त और अपनी सफलता से प्रसन्न देखकर उसे छेड़ने का साहस न करती थी। आख़िरकार जब फिर उस पर असफलताओं का वार हुआ और वह फिर दुनिया में बेकस और बेबस हो गया तो मैग्डलीन ने समझा, अब इसको किसी हमदर्द की ज़रूरत है। और पाठक देख चुके हैं जिस तरह वह मैज़िनी से मिली।

६

मैज़िनी रोम से फिर इंगलिस्तान पहुँचा और यहाँ एक अरसे तक रहा। सन् १८७० में उसे ख़बर मिली कि सिसली की रिआया बग़ावत पर आमादा है और उन्हें मैदाने जंग में लाने के लिए एक उभारनेवाले की ज़रूरत है। बस वह फ़ौरन सिसली पहुँचा मगर उसके जाने के पहले शाही फ़ौज ने बाग़ियों को दबा दिया था। मैज़िनी जहाज़ से उतरते ही गिरफ्तार करके एक क़ैदखाने में डाल दिया गया। मगर चूँकि अब वह बहुत बुड्ढा हो गया था, शाही हुक्काम ने इस डर से कि कहीं वह क़ैद की तकलीफ़ों से मर जाय तो जनता को सन्देह होगा कि बादशाह की प्रेरणा से वह क़त्ल कर डाला गया, उसे रिहा कर दिया। निराश और टूटा हुआ दिल लिये मैज़िनी फिर स्विट्ज़रलैण्ड की तरफ रवाना हुआ। उसकी ज़िन्दगी की तमाम उम्मीदें ख़ाक में मिल गयीं। इसमें शक नहीं कि इटली के एकताबद्ध हो जाने के दिन बहुत पास आ गये थे मगर उसकी हुकूमत की हालत उससे हरगिज़ बेहतर न थी जैसी आस्ट्रिया या नेपल्स के शासन-काल में। अन्तर यह था कि पहले वह एक दूसरी क़ौम की ज्यादतियों से परेशान थे, अब अपनी क़ौम के हाथों। इन निरन्तर असफलताओं ने दृढ़व्रती मैज़िनी के दिल में यह ख़याल पैदा किया कि शायद जनता की राजनीतिक शिक्षा इस हद तक नहीं हुई है, कि वह अपने लिए एक प्रजातांत्रिक शासन-व्यवस्था की बुनियाद डाल सके और इसी नियत से वह स्विट्ज़रलैण्ड जा रहा था कि वहाँ से एक ज़बर्दस्त क़ौमी अख़बार निकाले क्योंकि इटली में उसे अपने विचारों को फैलाने की इजाज़त न थी। वह रात भर नाम बदलकर रोम में ठहरा। फिर वहाँ से अपनी जन्मभूमि जिनेवा में आया और अपनी नेक माँ की कब्र पर फूल चढ़ाये। इसके बाद स्विट्ज़रलैण्ड की तरफ़ चला और साल भर तक कुछ विश्वसनीय मित्रों की सहायता से अख़बार निकालता रहा। मगर निरन्तर चिन्ता और कष्टों ने उसे बिलकुल कमज़ोर कर दिया था। सन् १८७० में वह सेहत के ख़याल से इंगलिस्तान आ रहा था कि आल्प्स पर्वत की तलहटी में निमोनिया की बीमारी ने उसके जीवन का अन्त कर दिया

और वह एक अरमानों से भरा हुआ दिल लिये स्वर्ग को सिधारा। इटली का नाम मरते दम तक उसकी ज़बान पर था। यहाँ भी उसके बहुत से समर्थक और हमदर्द शरीक थे। उसका जनाज़ा बड़ी धूम से निकला। हज़ारों आदमी साथ थे और एक बड़ी सुहानी खुली हुई जगह पर पानी के एक साफ़ चश्मे के किनारे पर इस क़ौम के लिए मर मिटनेवाले को सुला दिया गया।

७

मैज़िनी को क़ब्र में सोये हुए आज तीन दिन गुज़र गये। शाम का वक़्त था, सूरज की पीली किरणें इस ताज़ा क़ब्र पर हसरतभरी आँखों से ताक रही हैं। तभी एक अधेड़ खूबसूरत औरत, सुहाग के जोड़े पहने, लड़खड़ाती हुई आयी। यह मैग्डलीन थी। उसका चेहरा शोक में डूबा हुआ था, बिल्कुल मुर्झाया हुआ, कि जैसे अब इस शरीर में जान बाक़ी नहीं रही। वह इस कब्र के सिरहाने बैठ गयी और अपने सीने पर खुँसे हुए फूल उस पर चढ़ाये, फिर घुटनों के बल बैठकर सच्चे दिल से दुआ करती रही। जब खूब अँधेरा हो गया, बर्फ पड़ने लगी तो वह चुपके से उठी और खामोश सर झुकाये क़रीब के एक गाँव में जाकर रात बसर की और भोर की बेला अपने मकान की तरफ़ रवाना हुई।

मैग्डलीन अब अपने घर की मालिक थी। उसकी माँ बहुत ज़माना हुआ, मर चुकी थी। उसने मैज़िनी के नाम से एक आश्रम बनवाया और खुद आश्रम की ईसाई लेडियों के लिबास में वहाँ रहने लगी। मैज़िनी का नाम उसके लिए एक निहायत पुरदर्द और दिलकश गीत से कम न था। हमदर्दों और क़द्रदानों के लिए उसका घर उनका अपना घर था। मैज़िनी के ख़त उसकी इंजील और मैज़िनी का नाम उसका ईश्वर था। आसपास के ग़रीब लड़कों और मुफ़लिस बीवियों के लिए यही बरकत से भरा हुआ नाम जीविका का साधन था। मैग्डलीन तीन बरस तक ज़िन्दा रही और जब मरी तो अपनी आख़िरी वसीयत के मुताबिक उसी आश्रम में दफ़न की गयी। उसका प्रेम मामूली प्रेम न था, एक पवित्र और निष्कलंक भाव था और वह हमको उन प्रेम-रस में डूबी हुई गोपियों की याद दिलाता है जो श्रीकृष्ण के प्रेम में वृन्दावन की कुंजों और गलियों में मँडलाया करती थीं, जो उससे मिले होने पर भी उससे अलग थीं और जिनके दिलों में प्रेम के सिवा और किसी चीज़ की जगह न थी। मैज़िनी का आश्रम आज तक क़ायम है और ग़रीब और साधु-सन्त अभी तक मैज़िनी का पवित्र नाम लेकर वहाँ हर तरह का सुख पाते हैं।

विक्रमादित्य का तेग़ा

बहुत ज़माना गुज़रा एक रोज़ पेशावर के मौजे माहनगर में प्रकृति की एक आश्चर्यजनक लीला दिखायी पड़ी। अँधेरी रात थी, बस्ती से कुछ दूर बरगद के एक छाँहदार पेड़ के नीचे एक आग की लौ दिखायी पड़ी और एक झलमलाते हुए चिराग़ की तरह नज़र आती रही। गाँव में बहुत जल्द यह ख़बर फैल गयी। वहाँ के रहनेवाले यह विचित्र दृश्य देखने के लिए यहाँ-वहाँ इकट्ठा हो गये। औरतें जो खाना पका रही थीं हाथों में गूंधा हुआ आटा लपेटे बाहर निकल आयीं। बूढ़ों ने बच्चों को कंधे पर बिठा लिया और खाँसते हुए आ खड़े हुए। नवेली बहुएँ लाज के मारे बाहर न आ सकीं मगर दरवाज़ों की दरारों से झाँक-झाँककर अपने बेकरार दिलों को तसकीन देने लगीं। उस गुम्बदनुमा पेड़ के नीचे अँधेरे के उस अथाह समुन्दर में रोशनी का यह धुँधला शोला पाप के बादलों से घिरी हुई आत्मा का सजीव उदाहरण पेश कर रहा था।

टेकसिंह ने ज्ञानियों की तरह सिर हिलाकर कहा—मैं समझ गया, भूतों की सभा हो रही है।

पंडित चेतराम ने विद्वानों के समान विश्वास के साथ कहा—तुम क्या जानो मैं तह पर पहुँच गया। साँप मणि छोड़कर चरने गया है। इसमें जिसे शक हो जाकर देख आये।

मुंशी गुलाबचन्द्र बोले—इस वक़्त जो वहाँ जाकर मणि को उठा लाये, उसके राजा होने में शक नहीं। मगर जान जोखिम है।

प्रेमसिंह एक बूढ़ा जाट था। वह इन महात्माओं की बातें बड़े ध्यान से सुन रहा था।

२

प्रेमसिंह दुनिया में बिलकुल अकेला था। उसकी सारी उम्र लड़ाइयों में खर्च हुई थीं। मगर जब जिन्दगी की शाम आयी और वह सुबह की ज़िन्दगी के टूटे-फूटे झोपड़े में फिर आया तो उसके दिल में एक अजीब ख़्वाहिश पैदा हुई।

अफसोस, दुनिया में मेरा कोई नहीं ! काश मेरे भी कोई बच्चा होता ! जो ख़्वाहिश शाम के वक्त चिड़ियों को घोंसले में खींच लाती है और जिस ख़्वाहिश से बेकरार होकर जानवर शाम को अपने थानों की तरफ चलते हैं, वही ख़्वाहिश प्रेमसिंह के दिल में मौजें मारने लगी। ऐसा कोई नहीं, जो सुबह के वक़्त दादा कहकर उसके गले से लिपट जाय। ऐसा कोई नहीं, जिसे वह खाने के वक़्त कौर बना-बनाकर खिलाये। ऐसा कोई नहीं, जिसे वह रात के वक़्त लोरियाँ सुना-सुनाकर सुलाये। यह आकांक्षाएँ प्रेमसिंह के दिल में कभी न पैदा हुई थीं। मगर सारे दिन का अकेलापन इतना उदास करनेवाला नहीं होता जितना शाम का।

एक दिन प्रेमसिंह बाजार गया हुआ था। रास्ते में उसने देखा कि एक घर में आग लगी हुई है। आग के ऊँचे-ऊँचे डरावने शोले हवा में अपने झण्डे लहरा रहे हैं और एक औरत दरवाज़े पर खड़ी सर पीट-पीटकर रो रही है। यह बेचारी विधवा स्त्री थी, उसका बच्चा अन्दर सो रहा था कि घर में आग लग गयी। वह दौड़ी थी कि गाँव के आदमियों को आग बुझाने के लिए बुलाये कि इतने में आग ने ज़ोर पकड़ लिया और अब तमाम जलते हुए शोलों का उमड़ा हुआ दरिया उसे उसके प्यारे बच्चे से अलग किये हुए था। प्रेमसिंह के दिल में उस औरत की दर्दनाक आहें चुभ गयीं। वह बेधड़क आग में घुस गया और सोते हुए बच्चे को गोद में लेकर बाहर निकल आया। विधवा स्त्री ने बच्चे को गोद में ले लिया और उसके कोमल गालों को बार-बार चूमकर आँखों में आँसू भर लायी और बोली— महाराज, तुम जो कोई हो, मैं आज अपना प्यारा बच्चा तुम्हें भेंट करती हूँ। तुम्हें ईश्वर ने और भी लड़के दिये होंगे, उन्हीं के साथ इस अनाथ की भी खबर लेते रहना। तुम्हारे दिल में दया है, मेरा सब कुछ अग्नि देवी ने ले लिया, अब इस तन के कपड़े के सिवा मेरे पास और कोई चीज़ नहीं। मैं मज़दूरी करके अपना पेट पाल लूँगी। यह बच्चा अब तुम्हारा है।

प्रेमसिंह की आँखें डबडबा गयीं, बोला—बेटी, ऐसा न कहो, तुम मेरे घर चलो और ईश्वर ने जो कुछ रूखा-सूखा दिया है, वह खाओ। मैं भी दुनिया में बिलकुल अकेला हूँ, कोई पानी देनेवाला नहीं है। क्या जाने परमात्मा ने इसी बहाने से हमलोगों को मिलाया हो। शाम के वक्त जब प्रेमसिंह घर लौटा तो उसकी गोद में एक हँसता हुआ फूल जैसा बच्चा था और पीछे-पीछे एक पीली और मुरझायी हुई औरत। आज प्रेमसिंह का घर आबाद हुआ। आज से उसे किसी ने शाम के वक़्त नदी के किनारे खामोश बैठे नहीं देखा।

इसी बच्चे के लिए साँप का मणि लाने का निश्चय करके प्रेमसिंह आधी रात के वक़्त कमर से तलवार लगाये, चौंक-चौंककर क़दम रखता, बरगद के पेड़ की तरफ चला।

जब पेड़ के नीचे पहुँचा तो मणि की दमक ज़्यादा साफ नजर आने लगी। मगर साँप का कहीं पता न था। प्रेमसिंह बहुत खुश हुआ, समझा, शायद साँप कहीं चरने गया है। मगर जब मणि को लेने के लिए हाथ बढ़ाया तो वहाँ साफ जमीन के सिवाय और कोई चीज न दिखायी दी। बूढ़े जाट का कलेजा सन से हो गया और बदन के रोंगटे खड़े हो गये। यकायक उसे अपने सामने कोई चीज लटकती हुई दिखायी दी। प्रेमसिंह ने तेग़ा खींच लिया और उसकी तरफ लपका मगर देखा तो वह बरगद की जटा थी। अब प्रेमसिंह का डर बिलकुल दूर हो गया। उसने उस जगह को जहाँ से रोशनी की लौ निकल रही थी, अपनी तलवार से खोदना शुरू किया। जब एक बित्ता जमीन खुद गयी तो तलवार किसी सख़्त चीज से टकरायी और लौ भभक उठी। यह एक छोटा-सा तेग़ा था मगर प्रेमसिंह के हाथ में आते ही उसकी लपट जैसी चमक ग़ायब हो गयी।

३

यह एक छोटा-सा तेग़ा था, मगर बहुत आबदार। उसकी मूठ में अनमोल जवाहरात जड़े हुए थे और मूठ के ऊपर 'विक्रमादित्य' खुदा हुआ था। यह विक्रमादित्य का तेग़ा था, उस विक्रमादित्य का जो भारत का सूर्य बनकर चमका, जिसके गुन अबतक घर-घर गाये जाते हैं। इस तेग़े ने भारत के अमर कालिदास की सोहबतें देखी हैं। जिस वक़्त विक्रमादित्य रातों को वेश बदलकर दुख-दर्द की कहानी अपने कानों से सुनने और अत्याचारों की लीला अपनी संवेदनशील आँखों से देखने के लिए निकलते थे, तो यही आबदार तेग़ा उनके बगल की शोभा हुआ करता था। जिस दया और न्याय ने विक्रमादित्य का नाम अब तक जिन्दा रक्खा है, उसमें यह तेग़ा भी उनका हमदर्द और शरीक था। यह उनके साथ उस राजसिंहासन पर शोभायमान होता था जिस पर राजा भोज को भी बैठना नसीब न हुआ।

इस तेग़े में ग़ज़ब की चमक थी। बहुत ज़माने तक ज़मीन के नीचे दफन रहने पर भी उस पर ज़ंग का नाम न था। अँधेरे घरों में उससे उजाला हो जाता था। रात भर चमकते हुए तारे की तरह जगमगाता रहता। जिस तरह चाँद बादलों के

परदे में छिप जाता है मगर उसकी मद्धिम रोशनी छन-छनकर आती है उसी तरह गिलाफ के अन्दर से उस तेग़े की किरनें नज़रों के तीर मारा करती थीं।

मगर जब कोई व्यक्ति उसे हाथ में ले लेता तो उसकी चमक गायब हो जाती थी। उसका यह गुण देखकर लोग दंग रह जाते थे।

हिन्दुस्तान में इन दिनों शेरे पंजाब की ललकार गूँज रही थी। रणजीतसिंह दानशीलता और वीरता, दया और न्याय में अपने समय के विक्रमादित्य थे। उस घमंडी काबुल को, जिसने सदियों तक हिन्दोस्तान को सर नहीं उठाने दिया था, ख़ाक में मिलाकर लाहौर जाते थे। माहनगर का खुला हुआ दिलकश मैदान और पेड़ों का आकर्षक जमघट देखा तो वहीं पड़ाव डाल दिया। बाजार लग गये। खेमे और शामियाने गाड़ दिये गये। जब रात हुई तो पचीस हजार चूल्हों का काला धुँआ सारे मैदान और बगीचे पर छा गया। और इस धुँए के आसमान में चूल्हों की आग, कंदीलें और मशालें ऐसी मालूम होती थीं गोया अँधेरी रात में आसमान पर तारे निकल आये हैं।

४

शाही आरामगाह से गाने-बजाने की पुरशोर और पुरजोश आवाज़ें आ रही थीं। सिक्ख सरदारों ने सरहदी जगहों पर सैकड़ों अफगानी औरतें गिरफ्तार कर ली थीं, जैसा उन दिनों लड़ाइयों में आम तौर पर हुआ करता था। वही औरतें इस वक़्त सायेदार दरख़्तों के नीचे कुदरती फर्श से सजी हुई महफिल में अपनी बेसुरी तानें अलाप रही थीं और महफिल के लोग जिन्हें गाने का आनन्द उठाने की इतनी लालसा न थी, जितनी हँसने और खुश होने की, खूब जोर-जोर से कहकहे लगा-लगाकर हँस रहे थे। कहीं-कहीं मनचले सिपाहियों ने स्वाँग भरे थे, वह कुछ मशालें और सैकड़ों तमाशाइयों की भीड़ साथ लिये हुए इधर-उधर धूम मचाते फिरते थे। सारी फौज के दिलों में बैठकर विजय की देवी अपनी लीला दिखा रही थी।

रात के नौ बजे होंगे कि एक आदमी काला कम्बल ओढ़े एक बांस का सोंटा लिये शाही खेमे से बाहर निकला और बस्ती की तरफ आहिस्ता-आहिस्ता चला। आज माहनगर भी खुशी से ऐंड़ रहा है। दरवाज़ों पर कई-कई बत्तियोंवाले चौमुखे दीवट जल रहे हैं। दरवाज़ों के सहन झाड़कर साफ कर दिये गये हैं। दो-एक जगह शहनाइयाँ बज रही हैं और कहीं-कहीं लोग भजन गा रहे हैं। काली कमलीवाला मुसाफिर इधर-उधर देखता-भालता गाँव के चौपाल में जा पहुँचा। चौपाल खूब

सजा हुआ था और गाँव के बड़े लोग बैठे हुए इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर बहस कर रहे थे कि महाराजा रनजीतसिंह की सेवा में कौन-सी भेंट पेश की जाय। आज महाराज ने इस गाँव को अपने क़दमों से रोशन किया है, तो क्या इस गाँव के बसनेवाले महाराज के क़दमों को न चूमेंगे! ऐसे शुभ अवसर कहाँ आते हैं। सब लोग सर झुकाये चिन्तित बैठे थे। किसी की अक़्ल कुछ काम न करती थी। वहाँ अनमोल जवाहरात की किश्तियाँ कहाँ? पूरे घंटे भर तक किसी ने सर न उठाया। यकायक बूढ़ा प्रेमसिंह खड़ा हो गया और बोला—अगर आप लोग पसन्द करें तो मैं विक्रमादित्य की तलवार नजराने के लिए दे सकता हूँ।

इतना सुनते ही सब के सब आदमी खुशी से उछल पड़े और एक हुल्लड़-सा मच गया। इतने में एक मुसाफिर काली कमली ओढ़े चौपाल के अन्दर आया और हाथ उठाकर बोला—भाइयो, वाह गुरु की जय!

चेतराम बोले—तुम कौन हो?

मुसाफिर—राहगीर हूँ, पेशावर जाना है। रात ज़्यादा आ गयी है इसलिए यहीं लेट रहूँगा।

टेकसिंह—हाँ-हाँ आराम से सोओ। चारपाई की ज़रूरत हो तो मँगा दूँ?

मुसाफिर—नहीं, आप तकलीफ़ न करें, मैं इसी टाट पर लेट रहूँगा। अभी आप लोग विक्रमादित्य की तलवार की कुछ बातचीत कर रहे थे। यही सुनकर चला आया। वर्ना बाहर ही पड़ा रहता। क्या यहाँ किसी के पास विक्रमादित्य की तलवार है?

मुसाफिर की बातचीत से साफ़ ज़ाहिर होता था कि वह कोई शरीफ़ आदमी है। उसकी आवाज़ में वह कशिश थी जो कानों को अपनी तरफ़ खींच लिया करती है। सब की आँखें उसकी तरफ़ उठ गयीं। पंडित चेतराम बोले—जी हाँ, कुछ अर्सा हुआ महाराज विक्रामदित्य का तेग़ा ज़मीन से निकला है।

मुसाफिर—यह क्योंकर मालूम हुआ कि यह तेग़ा उन्हीं का है?

चेतराम—उसकी मूठ पर उनका नाम खुदा हुआ है।

मुसाफिर—उनकी तलवार तो बहुत बड़ी होगी?

चेतराम—नहीं, वह तो एक छोटा-सा नीमचा है।

मुसाफिर—तो फिर उसमें कोई खास गुण होगा।

चेतराम—जी हाँ, उसके गुण अनमोल हैं। देखकर अक्ल दंग रह जाती है। जहाँ रख दो, उसमें जलते चिराग़ की-सी रोशनी पैदा हो जाती है।

मुसाफ़िर—ओफ़्फ़ोह!

चेतराम—मगर ज्योंही कोई आदमी उसे हाथ में ले लेता है, उसकी सारी चमक-दमक ग़ायब हो जाती है।

यह अजीब बात सुनकर उस मुसाफिर की वही कैफ़ियत हो गयी जो एक आश्चर्यजनक कहानी सुनने से बच्चों की हो जाया करती है। उसकी आँख और भंगिमा से अधीरता प्रकट होने लगी। जोश से बोला—विक्रमादित्य, तुम्हारे प्रताप को धन्य है!

ज़रा देर के बाद फिर बोला—वह कौन बुज़ुर्ग हैं जिनके पास यह अनमोल चीज़ है?

प्रेमसिंह ने गर्व से कहा—मेरे पास है।

मुसाफिर—क्या मैं उसे देख सकता हूँ?

प्रेमसिंह—हाँ, मैं आपको सवेरे दिखा दूँगा। मगर नहीं, ठहरिए, सवेरे तो हम उसे महाराज रनजीतसिंह को भेंट करेंगे, आपका जी चाहे तो इसी वक़्त देख लीजिए।

दोनों आदमी चौपाल से चल खड़े हुए। प्रेमसिंह ने मुसाफिर को अपने घर में ले जाकर तेग़े के पास खड़ा कर दिया। इस कमरे में चिराग न था मगर सारा कमरा रोशनी से जगमगा रहा था। मुसाफिर ने पुरजोश आवाज़ से कहा—विक्रमादित्य, तुम्हारे प्रताप को धन्य है, इतना ज़माना गुज़रने पर भी तुम्हारी तलवार का तेज कम नहीं हुआ।

यह कहकर उसने बड़े चाव से हाथ बढ़ाकर तेग़े को पकड़ लिया मगर उसका हाथ लगते ही तेग़े की चमक जाती रही और कमरे में अँधेरा छा गया।

मुसाफिर ने फौरन तेग़े को तख़्त पर रख दिया। उसका चेहरा अब बहुत उदास हो गया था। उसने प्रेमसिंह से कहा—क्या तुम यह तेग़ा रनजीतसिंह को भेंट दोगे? वह इसे हाथ में लेने योग्य नहीं है।

यह कहकर मुसाफिर तेज़ी से बाहर निकल आया। वृन्दा दरवाज़े पर खड़ी थी, मुसाफिर ने उसके चेहरे की तरफ एक बार ग़ौर से देखा, मगर कुछ बोला नहीं।

रात आधी से ज़्यादा गुज़र चुकी थी। मगर फ़ौज में शोर-गुल बदस्तूर जारी था। खुशी के हंगामे ने नींद को सिपाहियों की आँखों से दूर भगा दिया है। अगर कोई अँगड़ाई लेता या ऊँघता नज़र आ जाता है तो उसके साथी उसे एक टाँग से खड़ा

कर देते हैं। यकायक यह खबर मशहूर हुई कि महाराज इसी वक़्त कूच करेंगे। लोग ताज्जुब में आ गये कि महाराज ने क्यों इस अँधेरी रात में सफ़र करने की ठानी है। इस डर से कि फ़ौज को इसी वक़्त कूच करना पड़ेगा चारों तरफ़ खलबली-सी मच गयी। वह खुद थोड़े से आजमाये हुए सरदारों के साथ रवाना हो गये। इसका कारण किसी की समझ में न आया।

जिस तरह बाँध टूट जाने से तालाब का पानी काबू से बाहर होकर ज़ोर-शोर के साथ बह निकलता है, उसी तरह महाराज के जाते ही फ़ौज के अफ़सर और सिपाही होश-हवास खोकर मस्तियाँ करने लगे।

५

वृन्दा को विधवा हुए तीन साल गुज़रे हैं। उसका पति एक बेफ़िक्र और रंगीन-मिज़ाज आदमी था। गाने-बजाने से उसे प्रेम था। घर की जो कुछ जमा-जथा थी, वह सरस्वती और उसके पुजारियों के भेंट कर दी। तीन लाख की जायदाद तीन साल के लिए भी काफ़ी न हो सकी मगर उसकी कामना पूरी हो गयी। सरस्वती देवी ने उसे आशीर्वाद दिया और उसने संगीत-कला में ऐसा कमाल पैदा किया कि अच्छे-अच्छे गुनी उसके सामने ज़बान खोलते डरते थे। गाने का उसे जितना शौक़ था, उतनी ही मुहब्बत उसे वृन्दा से थी। उसकी जान अगर गाने में बसती थी तो दिल वृन्दा की मुहब्बत से भरा हुआ था। पहले छेड़छाड़ में और फिर दिलबहलाव के लिए उसने वृन्दा को कुछ गाना सिखाया। यहाँ तक कि उसको भी इस अमृत का स्वाद मिल गया और यद्यपि उसके पति को मरे तीन साल गुज़र गये हैं और उसने सांसारिक सुखों को अंतिम नमस्कार कर लिया है यहाँ तक कि किसी ने उसके गुलाब के-से होंठों पर मुस्कराहट की झलक नहीं देखी मगर गाने की तरफ़ अभी तक उसकी तबीयत झुकी हुई थी। उसका मन जब कभी बीते हुए दिनों की याद से उदास होता है तो वह कुछ गाकर जी बहला लेती है। लेकिन गाने में उसका उद्देश्य इन्द्रिय का आनन्द नहीं होता, बल्कि जब वह कोई सुन्दर राग अलापने लगती है तो खयाल में अपने पति को खुशी से मुस्कराते हुए देखती है। वही काल्पनिक चित्र उसके गाने की प्रशंसा करता हुआ दिखायी देता है। गाने में उसका लक्ष्य अपने स्वर्गीय पति की स्मृति को ताज़ा करना है। गाना उसके नज़दीक पतिव्रत धर्म का निबाह है।

तीन पहर रात जा चुकी है, आसमान पर चाँद की रोशनी मन्द हो चुकी है,

चारों तरफ़ गहरा सन्नाटा छाया हुआ है और इन विचारों को जन्म देनेवाले सन्नाटे में वृन्दा ज़मीन पर बैठी हुई मद्धिम स्वरों में गा रही है—

बता दे कोई प्रेमनगर की डगर।

वृन्दा की आवाज़ में लोच भी है और दर्द भी। उसमें बेचैन दिल को तसकीन देनेवाली ताक़त भी है और सोये हुए भावों को जगा देने की शक्ति भी। सुबह के वक़्त पूरब की गुलाबी आभा में सर उठाये हुए फूलों से लदी हुई डाली पर बैठकर गानेवाले बुलबुल की चहक में भी यह घुलावट नहीं होती। यह वह गाना है जिसे सुनकर अकलुष आत्माएँ सिर धुनने लगती हैं। उसकी तान कानों को छेदती हुई जिगर में जा पहुँचती है—

बता दे कोई प्रेमनगर की डगर।
मैं बौरी पग-पग पर भटकूँ, काहू की कुछ नाहीं खबर।
बता दे कोई प्रेमनगर की डगर।

यकायक किसी ने दरवाज़ा खटखटाया और कई आदमी पुकारने लगे—किसका मकान है, दरवाज़ा खोलो।

वृन्दा चुप हो गयी। प्रेमसिंह ने उठकर दरवाज़ा खोल दिया। दरवाज़े के सहन में सिपाहियों की एक भीड़ थी। दरवाज़ा खुलते ही कई सिपाही देहलीज़ में घुस आये और बोले—तुम्हारे घर में कोई गानेवाली रहती है, हम उसका गाना सुनेंगे।

प्रेमसिंह ने कड़ी आवाज़ में कहा—हमारे यहाँ कोई गानेवाली नहीं है।

इस पर कई सिपाहियों ने प्रेमसिंह को पकड़ लिया और बोले—तेरे घर से गाने की आवाज़ आती थी।

एक सिपाही—बताता क्यों नहीं रे, कौन गा रहा है?

प्रेमसिंह—मेरी लड़की गा रही थी। मगर वह गानेवाली नहीं है।

सिपाही—कोई हो, हम तो आज गाना सुनेंगे।

गुस्से से प्रेमसिंह काँपने लगा, होंठ चबाकर बोला—यारो हमने भी अपनी ज़िन्दगी फ़ौज ही में काटी है मगर कभी......

इस हंगामे में प्रेमसिंह की बात किसी ने न सुनी। एक नौजवान जाट ने जिसकी आँखें नशे से लाल हो रही थीं, ललकारकर कहा—इस बुड्ढे की मूँछें उखाड़ लो।

वृन्दा आँगन में पत्थर की मूरत की तरह खड़ी यह कैफ़ियत देख रही थी। जब उसने दो सिपाहियों को प्रेमसिंह की मूँछ पकड़कर खींचते देखा तो उससे न

रहा गया, वह निर्भय सिपाहियों के बीच में घुस आयी और ऊँची आवाज़ में बोली—कौन मेरा गाना सुनना चाहता है ?

सिपाहियों ने उसे देखते ही प्रेमसिंह को छोड़ दिया और बोले—हम सब तेरा गाना सुनेंगे।

वृन्दा—अच्छा बैठ जाओ, मैं गाती हूँ।

इस पर कई सिपाहियों ने ज़िद की कि इसे पड़ाव पर ले चलो, वहाँ खूब रंग जमेगा।

जब वृन्दा सिपाहियों के साथ पड़ाव की तरफ चली तो प्रेमसिंह ने कहा—वृन्दा इनके साथ जाती हो तो फिर इस घर में पैर न रखना।

वृन्दा जब पड़ाव पर पहुँची तो वहाँ बदमस्तियों का एक तूफ़ान मचा हुआ था। विजय की देवी दुश्मन को बर्बाद करके अब विजेताओं की मानवता और सज्जनता को पाँव से कुचल रही थी। हैवानियत का खूँख़ार शेर दुश्मन के खून से तृप्त न होकर अब मानवोचित भावों का खून चूस रहा था। वृन्दा को लोग एक सजे हुए खेमे में ले गये। यहाँ फ़र्शी चिराग़ रोशन थे और आग-जैसी शराब के दौर चल रहे थे। वृन्दा उस मेमने की तरह, जो खूँख़ार दरिन्दों के पंजे में फँस जाता है, फर्श के एक कोने पर सहमी हुई बैठी थी। वासना का भूत जो इस वक़्त दिलों में अपनी शैतानी फ़ौज सजाये बैठा था कभी आँखों की कमान से सतीत्व का नाश करनेवाले तेज़ तीर चलाता और कभी मुँह की कमान से मर्मवेधी बाणों की बौछार करता। ज़हरीली शराब में बुझे हुए यह तीर वृन्दा के कोमल और पवित्र हृदय को छेदते हुए पार हो जाते थे। वह सोच रही थी—ऐ द्रौपदी की लाज रखनेवाले कृष्ण भगवान, तुमने धर्म के बन्धन से बँधे हुए पाण्डवों के होते हुए द्रौपदी की लाज रखी थी, मैं तो दुनिया में बिल्कुल अनाथ हूँ, क्या मेरी लाज न रखोगे ? यह सोचते हुए उसने मीरा का यह मशहूर भजन गाया—

सिया रघुबीर भरोसो ऐसो।

वृन्दा ने यह गीत बड़े मोहक ढंग से गाया। उसके मीठे सुरों में मीरा का अन्दाज़ पैदा हो गया था। प्रकट रूप से वह शराबी सिपाहियों के सामने बैठी गा रही थी मगर कल्पना की दुनिया में वह मुरलीवाले श्याम के सामने हाथ बाँधे खड़ी उससे प्रार्थना कर रही थी।

ज़रा देर के लिए उस शोर से भरे हुए महल में निस्तब्धता छा गयी। इन्सान के दिल में बैठे हुए हैवान पर भी प्रेम की यह तड़पा देनेवाली पुकार अपना जादू चला गयी।

मीठा गाना मस्त हाथी को भी बस में कर लेता है। पूरे घंटे भर तक वृन्दा ने सिपाहियों को मूर्तिवत् रक्खा। सहसा घड़ियाल ने पाँच बजाये। सिपाही और सरदार सब चौंक पड़े। सबका नशा हिरन हो गया। चालीस कोस की मंज़िल तय करनी है, फुर्ती के साथ रवानगी की तैयारियाँ होने लगीं। खेमे उखड़ने लगे, सवारों ने घोड़ों को दाना खिलाना शुरू किया। एक भगदड़-सी मच गयी। उधर सूरज निकला इधर फौज ने कूच का डंका बजा दिया। शाम को जिस मैदान का एक-एक कोना आबाद था, सुबह को वहाँ कुछ भी न था। सिर्फ टूटे-फूटे उखड़े चूल्हों की राख और खेमों की कीलों के निशान उस शान-शौकत की यादगार के रूप में रह गये थे।

वृन्दा ने जब महफ़िल के लोगों को रवानगी की तैयारियों में व्यस्त देखा तो वह खेमे से बाहर निकल आयी। कोई बाधक न हुआ। मगर उसका दिल धड़क रहा था कि कहीं कोई आकर फिर न पकड़ ले। जब वह पेड़ों के झुरमुट से बाहर पहुँची तो उसकी जान में जान आयी। बड़ा सुहाना मौसम था, ठंडी-ठंडी मस्त हवा पेड़ों के पत्तों पर धीमे-धीमे चल रही थी और पूरब के क्षितिज में सूर्य भगवान की अगवानी के लिए लाल मखमल का फ़र्श बिछाया जा रहा था। वृन्दा ने आगे क़दम बढ़ाना चाहा। मगर उसके पाँव न उठे। प्रेमसिंह की यह बात कि सिपाहियों के साथ जाती हो तो फिर इस घर में पैर न रखना, उसे याद आ गयी। उसने एक लम्बी साँस ली और ज़मीन पर बैठ गयी। दुनिया में अब उसके लिए कोई ठिकाना न था।

उस अनाथ चिड़िया की हालत कैसी दर्दनाक है जो दिल में उड़ने की चाह लिये हुए बहेलिये की क़ैद से निकल आती है मगर आज़ाद होने पर उसे मालूम होता है कि उस निष्ठुर बहेलिये ने उसके परों को काट दिया है। वह पेड़ों की सायेदार डालियों की तरफ बार-बार हसरत की निगाहों से देखती है मगर उड़ नहीं सकती और एक बेबसी के आलम में सोचने लगती है कि काश बहेलिया मुझे फिर अपने पिंजरे में कैद कर लेता। वृन्दा की हालत इस वक़्त ऐसी ही दर्दनाक थी।

वृन्दा कुछ देर तक इस खयाल में डूबी बैठी रही, फिर वह उठी और धीरे-धीरे प्रेमसिंह के दरवाज़े पर आयी। दरवाज़ा खुला हुआ था मगर वह अन्दर क़दम न रख सकी। उसने दरोदीवार को हसरतभरी निगाहों से देखा और फिर जंगल की तरफ़ चली गयी।

६

शहर लाहौर के एक शानदार हिस्से में ठीक सड़क के किनारे एक अच्छा-सा साफ़-सुथरा तिमंजिला मकान है। हरीभरी और सुन्दर फूलोंवाली माधवी लता ने उसकी दीवारों और मेहराबों को खूब सजा दिया है। इसी मकान में एक अमीराना ठाट-बाट से सजे हुए कमरे के अन्दर वृन्दा एक मख़मली क़ालीन पर बैठी हुई अपनी सुन्दर रंगों और मीठी आवाज़वाली मैना को पढ़ा रही है। कमरे की दीवारों पर हल्के हरे रंग की क़लई है—खुशनुमा दीवारगीरियाँ, खूबसूरत तसवीरें उचित स्थानों पर शोभा दे रही हैं। सन्दल और खस की प्राणवर्द्धक सुगन्ध कमरे में फैली हुई है। एक बूढ़ी औरत बैठी हुई पंखा झल रही है। मगर इस ऐश्वर्य और विलास की सब सामग्रियों के होते हुए वृन्दा का चेहरा उदास है। उसका चेहरा अब और भी पीला नज़र आता है। मौलश्री का फूल मुरझा गया है।

वृन्दा अब लाहौर की मशहूर गानेवालियों में से है। उसे इस शहर में आये तीन महीने से ज़्यादा नहीं हुए, मगर इतने ही दिनों में उसने बहुत बड़ी शोहरत हासिल कर ली है। यहाँ उसका नाम श्यामा मशहूर है। इतने बड़े शहर में जिससे श्यामा बाई का पता पूछो वह यक़ीनन बता देगा। श्यामा की आवाज़ और अन्दाज़ में कोई मोहनी है, जिसने शहर में हर को अपना प्रेमी बना रक्खा है। लाहौर में बाकमाल गानेवालियों की कमी नहीं है। लाहौर उस ज़माने में हर कला का केन्द्र था मगर कोयलें और बुलबुलें बहुत थीं, श्यामा सिर्फ एक थी। वह ध्रुपद ज़्यादा गाती थी इसलिए लोग उसे ध्रुपदी श्यामा कहते थे।

लाहौर में मियाँ तानसेन के ख़ानदान के कई ऊँचे कलाकार हैं जो राग और रागनियों में बातें करते हैं। वह श्यामा का गाना पसन्द नहीं करते। वह कहते हैं कि श्यामा का गाना अक्सर ग़लत होता है। उसे राग और रागनियों का ज्ञान नहीं। मगर उनकी इस आलोचना का किसी पर कुछ असर नहीं होता। श्यामा ग़लत गाये या सही गाये वह जो कुछ गाती है उसे सुनकर लोग मस्त हो जाते हैं। उसका भेद यह है कि श्यामा हमेशा दिल से गाती है और जिन भावों को वह प्रकट करती है उन्हें खुद भी अनुभव करती है। वह कठपुतलियों की तरह तुली हुई अदाओं की नक़ल नहीं करती। अब उसके बग़ैर महफ़िलें सूनी रहती हैं। हर महफ़िल में उसका मौजूद होना लाज़िमी हो गया है। वह चाहे श्लोक ही गाये मगर उसके बग़ैर संगीतप्रेमियों का जी नहीं भरता। तलवार की बाढ़ की तरह वह महफिलों की जान है। उसने साधारणजनों के हृदय में यहाँ तक घर कर लिया है कि जब वह अपनी

पालकी पर हवा खाने निकलती है तो उस पर चारों तरफ़ से फूलों की बौछार होने लगती है। महाराज रनजीतसिंह को काबुल से लौटे हुए तीन महीने गुज़र गये, मगर अभी तक विजय की खुशी में कोई जलसा नहीं हुआ। वापसी के बाद कई दिन तक तो महाराज किसी कारण से उदास थे, उसके बाद उनके स्वभाव में यकायक एक बड़ा परिवर्तन आया, उन्हें काबुल की विजय की चर्चा से घृणा-सी हो गयी। जो कोई उन्हें इस जीत की बधाई देने जाता उसकी तरफ से मुँह फेर लेते थे। वह आत्मिक उल्लास जो मौज़ा माहनगर तक उनके चेहरे से झलकता था, अब वहाँ न था। काबुल को जीतना उनकी ज़िन्दगी की सबसे बड़ी आरज़ू थी। वह मोर्चा जो एक हज़ार साल तक हिन्दू राजाओं की कल्पना से बाहर था, उनके हाथों सर हुआ। जिस मुल्क ने हिन्दोस्तान को एक हज़ार बरस तक अपने मातहत रक्खा वहाँ हिन्दू कौम का झण्डा रनजीतसिंह ने उड़ाया। ग़ज़नी और काबुल की पहाड़ियाँ इन्सानी खून से लाल हो गयीं, मगर रनजीतसिंह खुश नहीं हैं। उनके स्वभाव की कायापलट का भेद किसी की समझ में नहीं आता। अगर कुछ समझती है तो वृन्दा समझती है।

तीन महीने तक महाराज की यही कैफ़ियत रही। इसके बाद उनका मिज़ाज अपने असली रंग पर आने लगा। दरबार की भलाई चाहनेवाले इस मौके के इन्त-ज़ार में थे। एक रोज़ उन्होंने महाराज से एक शानदार जलसा करने की प्रार्थना की। पहले तो वह बहुत क्रुद्ध हुए मगर आखिरकार मिज़ाज समझनेवालों की घातें अपना काम कर गयीं।

जलसे की तैयारियाँ बड़े पैमाने पर की जाने लगीं। शाही नृत्यशाला की सजावट होने लगी। पटना, बनारस, लखनऊ, ग्वालियर, दिल्ली और पूना की नामी वेश्याओं को सन्देश भेजे गये। वृन्दा को भी निमन्त्रण मिला। आज एक मुद्दत के बाद उसके चेहरे पर मुस्कराहट की झलक दिखायी दी।

जलसे की तारीख़ निश्चित हो गयी। लाहौर की सड़कों पर रंग-बिरंगी झंडियाँ लहराने लगीं। चारों तरफ से नवाब और राजे बड़ी शान के साथ सज-सजकर आने लगे। होशियार फ़र्राशों ने नृत्यशाला को इतने सुन्दर ढंग से सजाया था कि उसे देखकर लगता था विलास का विश्रामस्थल है।

शाम के वक्त शाही दरबार जमा। महाराजा साहब सुनहरे राजसिंहासन पर शोभायमान हुए। नवाब और राजे, अमीर और रईस, हाथी-घोड़ों पर सवार अपनी सजधज दिखाते हुए एक जलूस बनाकर महाराज की कदमबोसी को चले।

सड़क पर दोनों तरफ़ तमाशाइयों का ठट लगा था। खुशी को रंगों से भी कोई गहरा सम्बन्ध है। जिधर आँख उठती थी रंग ही रंग दिखायी देते थे। ऐसा मालूम होता था कि कोई उमड़ी हुई नदी रंग-बिरंगे फूलों की क्यारियों से बहती चली आती है।

अपनी खुशी के जोश में कभी-कभी लोग अभद्रता भी कर बैठते थे। एक पंडित जी मिर्ज़ई पहने सर पर गोल टोपी रक्खे तमाशा देखने में लगे थे। किसी मनचले ने उनकी तोंद पर एक चमगादड़ चिमटा दी। पंडित जी बेतहाशा तोंद मटकाते हुए भागे। बड़ा क़हक़हा पड़ा। एक और मौलवी साहब नीची अचकन पहने एक दुकान पर खड़े थे। दुकानदार ने कहा—मौलवी साहब, आपको खड़े-खड़े तकलीफ होती है, यह कुर्सी रक्खी हुई है, बैठ जाइए। मौलवी साहब बहुत खुश हुए, सोचने लगे कि शायद मेरे रूप-रंग से रोब झलक रहा है वर्ना दुकानदार कुर्सी क्यों देता? दुकानदार आदमियों के बड़े पारखी होते हैं। हज़ारों आदमी खड़े हैं, मगर उसने किसी से बैठने की प्रार्थना न की। मौलवी साहब मुस्कराते हुए कुर्सी पर बैठे, मगर बैठते ही पीछे की तरफ़ लुढ़के और नीचे बहती हुई नाली में गिर पड़े। सारे कपड़े लथपथ हो गये। दुकानदार को हज़ारों खरी-खोटी सुनायी। बड़ा क़हक़हा पड़ा। कुर्सी तीन ही टाँग की थी।

एक जगह कोई अफ़ीमची साहब तमाशा देखने आये हुए थे। झुकी हुई कमर, पोपला मुँह, छिदरे-छिदरे सर के बाल और दाढ़ी के बाल मेंहदी से रँगे हुए थे। आँखों में सुरमा भी था। आप बड़े गौर से सैर करने में लगे थे। इतने में एक हलवाई सर पर खोमचा रक्खे हुए आया और बोला—खाँ साहब, जुमेरात की गुलाबवाली रेवड़ियाँ हैं। आज पैसे की आध पाव लगा दीं, खा लीजिए वर्ना पछताइएगा। अफ़ीमची साहब ने जेब में हाथ डाला मगर पैसे न थे। हाथ मल कर रह गये, मुँह में पानी भर आया। गुलाबवाली रेवड़ियाँ और पैसे में आध पाव! न हुए पैसे नहीं तो सेरों तुला लेते। हलवाई ताड़ गया, बोला—आप पैसों की कुछ फिक्र न करें, पैसे फिर मिल जायँगे। आप कोई ऐसे-वैसे आदमी थोड़े ही हैं। अफ़ीमची साहब की बाँछें खिल गयीं। रूह फड़क उठी। आपने पाव भर रेवड़ियाँ लीं और जी में कहा—अब पैसा देनेवाले पर लानत है। घर से निकलूँगा ही नहीं, तो पैसे क्या लोगे? अपने रूमाल में रेवड़ियाँ लीं। आशिक के दिल में सब्र कहाँ? मगर ज्योंही पहली रेवड़ी ज़बान पर रक्खी कि तिलमिला गये। पागल कुत्ते की तरह पानी की तलाश में इधर-उधर दौड़ने लगे। आँख और नाक से पानी बहने लगा। आधा

मुँह खोलकर ठंडी हवा से ज़बान की जलन बुझाने लगे। जब होश ठीक हुए तो हलवाई को हज़ारों गालियाँ सुनायीं, इस पर भी लोग खूब हँसे। खुशी के मौक़ों पर ऐसी शरारतें अक्सर हुआ करती हैं और इन्हें लोग मुआफ़ी के क़ाबिल समझते हैं क्योंकि वह खौलती हुई हाँडी के उबाल हैं।

रात के नौ बजे संगीतशाला में जमघट हुआ। सारा महल नीचे से ऊपर तक रंग-बिरंगी हाँडियों और फ़ानूसों से जगमगा रहा था। अन्दर झाड़ों की बहार थी। एक बाकमाल कारीगर ने रंगशाला के बीचोंबीच अधर में लटका हुआ एक फ़व्वारा लगाया था जिसके सूराखों से ख़स और केवड़ा, गुलाब और सन्दल का अरक़ हलकी फुहारों में बरस रहा था। महफ़िल में अम्बर की बौछार करनेवाली तरावट फैली हुई थी। खुशी अपनी सखियों-सहेलियों के साथ खुशियाँ मना रही थी।

दस बजे महाराजा रनजीतसिंह तशरीफ़ लाये। उनके बदन पर तंज़ेब की एक सफेद अचकन थी और सिर पर तिरछी पगड़ी बँधी हुई थी। जिस तरह सूरज क्षितिज की रंगीनियों से पाक रहकर अपनी पूरी रोशनी दिखा सकता है उसी तरह हीरे और जवाहरात, दीवा[1] और हरीर[1] की पुरतकल्लुफ़ सजावट से मुक्त रहकर महाराजा रनजीतसिंह का प्रताप पूरी तेज़ी के साथ चमक रहा था।

चन्द नामी शायरों ने महाराज की शान में इसी मौक़े के लिए क़सीदे कहे थे। मगर उपस्थित लोगों के चेहरों से उनके दिलों में जोश खाता हुआ संगीत-प्रेम देखकर महाराज ने गाना शुरू करने का हुक्म दिया। तबले पर थाप पड़ी, साज़िन्दों ने सुर मिलाया, नींद से झपकती हुई आँखें खुल गयीं और गाना शुरू हो गया।

७

उस शाही महफ़िल में रात भर मीठे-मीठे गानों की बौछार होती रही। पीलू और पिरच, देस और बिहाग के मदभरे झोंके चलते रहे। सुन्दरी नर्तकियों ने बारी-बारी से अपना कमाल दिखाया। किसी की नाज़-भरी अदाएँ दिलों में खुब गयीं, किसी का थिरकना क़त्लेआम कर गया, किसी की रसीली तानों पर वाह-वाह मच गयी। ऐसी तबीयतें बहुत कम थीं जिन्होंने सच्चाई के साथ गाने का पवित्र आनन्द उठाया हो।

---

१. रेशमी कपड़ों के नाम।

चार बजे होंगे जब श्यामा की बारी आयी तो उपस्थित लोग सम्हल बैठे। चाव के मारे लोग आगे खिसकने लगे। खुमारी से भरी हुई आँखें चौंक पड़ीं। वृन्दा महफ़िल में आयी और सर झुकाकर खड़ी हो गयी। उसे देखकर लोग हैरत में आ गये। उसके शरीर पर न आबदार गहने थे, न खुशरंग, भड़कीली पेशवाज़। वह सिर्फ एक गेरुए रंग की साड़ी पहने हुए थी। जिस तरह गुलाब की पंखुरी पर डूबते हुए सूरज की सुनहरी किरन चमकती है, उसी तरह उसके गुलाबी होंठों पर मुस्कराहट झलकती थी। उसका आडम्बर से मुक्त सौन्दर्य अपने प्राकृतिक वैभव की शान दिखा रहा था। असली सौन्दर्य बनाव-सिंगार का मोहताज नहीं होता। प्रकृति के दर्शन से आत्मा को जो आनन्द प्राप्त होता है वह सजे हुए बाग़ीचों की सैर से मुमकिन नहीं। वृन्दा ने गाया—

सब दिन नाहीं बराबर जात।

यह गीत इससे पहले भी लोगों ने सुना था मगर इस वक़्त का-सा असर कभी दिलों पर नहीं हुआ था। किसी के सब दिन बराबर नहीं जाते यह कहावत रोज़ सुनते थे। आज उसका मतलब समझ में आया। किसी रईस को वह दिन याद आया जब खुद उसके सिर पर ताज था, आज वह किसी का ग़ुलाम है। किसी को अपने बचपन की लाड़-प्यार की गोद याद आयी, किसी को वह ज़माना याद आया, जब वह जीवन के मोहक सपने देख रहा था। मगर अफ़सोस अब वह सपना तितर-बितर हो गया। वृन्दा भी बीते हुए दिनों को याद करने लगी। एक दिन वह था कि उसके दरवाज़े पर अताइयों और गानेवालों की भीड़ रहती थी और दिल में खुशियों की। और आज, आह आज! इसके आगे वृन्दा कुछ न सोच सकी। दोनों हालतों का मुक़ाबिला बहुत दिल तोड़नेवाला था, निराशा से भर देनेवाला। उसकी आवाज़ भारी हो गयी और रोने से गला बैठ गया।

महाराजा रनजीतसिंह श्यामा के तर्ज़ व अन्दाज़ को ग़ौर से देख रहे थे। उनकी तेज़ निगाहें उसके दिल में पहुँचने की कोशिश कर रही थीं। लोग अचंभे में पड़े हुए थे कि क्यों उनकी ज़बान से तारीफ़ और क़द्रदानी की एक बात भी न निकली। वह खुश न थे, उदास भी न थे, वह खयाल में डूबे हुए थे। उन्हें हुलिये से साफ़ पता चल रहा था कि यह औरत हरगिज़ अपनी अदाओं को बेचनेवाली औरत नहीं है। यकायक वह उठ खड़े हुए और बोले—श्यामा, वृहस्पति को मैं फिर तुम्हारा गाना सुनूँगा।

८

वृन्दा के चले जाने के बाद उसका फूल-सा बच्चा राजा उठा और आँखें मलता हुआ बोला—अम्माँ कहाँ है?

प्रेमसिंह ने उसे गोद में लेकर कहा—अम्माँ मिठाई लेने गयी है।

राजा खुश हो गया, बाहर जाकर लड़कों के साथ खेलने लगा। मगर कुछ देर के बाद फिर बोला—अम्माँ मिठाई।

प्रेमसिंह ने मिठाई लाकर दी। मगर राजा रो-रोकर कहता रहा, अम्माँ मिठाई। वह शायद समझा था कि अम्माँ की मिठाई इस मिठाई से ज्यादा मीठी होगी।

आखिर प्रेमसिंह ने उसे कंधे पर चढ़ा लिया और दोपहर तक खेतों में घूमता रहा। राजा कुछ देर तक चुप रहता और फिर चौंककर पूछने लगता—अम्माँ कहाँ है?

बूढ़े सिपाही के पास इस सवाल का कोई जवाब न था। वह बच्चे के पास से एक पल को भी कहीं न जाता और उसे बातों में लगाये रहता कि कहीं वह फिर न पूछ बैठे, अम्माँ कहाँ है? बच्चों की स्मरणशक्ति कमज़ोर होती है। राजा कई दिनों तक बेक़रार रहा, आखिर धीरे-धीरे माँ की याद उसके दिल से मिट गयी।

इस तरह तीन महीने गुज़र गये। एक रोज़ शाम के वक़्त राजा अपने दरवाज़े पर खेल रहा था कि वृन्दा आती हुई दिखायी दी। राजा ने उसकी तरफ़ ग़ौर से देखा, ज़रा झिझका, फिर दौड़कर उसकी टाँगों से लिपट गया और बोला—अम्माँ, आयी, अम्माँ आयी।

वृन्दा की आँखों से आँसू जारी हो गये। उसने राजा को गोद में उठा लिया और कलेजे से लगाकर बोली—बेटा, अभी मैं नहीं आयी, फिर कभी आऊँगी।

राजा इसका मतलब न समझा। वह उसका हाथ पकड़कर खींचता हुआ घर की तरफ़ चला। माँ की ममता वृन्दा को दरवाज़े तक ले गयी। मगर चौखट से आगे न ले जा सकी। राजा ने बहुत खींचा मगर वह आगे न बढ़ी। तब राजा की बड़ी-बड़ी आँखों में आँसू भर आये। उसके होंठ फैल गये और वह रोने लगा।

प्रेमसिंह उसका रोना सुनकर बाहर निकल आया, देखा तो वृन्दा खड़ी है। चौंककर बोला—वृन्दा। मगर वृन्दा कुछ जवाब न दे सकी।

प्रेमसिंह ने फिर कहा—बाहर क्यों खड़ी हो, अन्दर आओ। अब तक कहाँ थीं?

वृन्दा ने आँसू पोंछते हुए जवाब दिया—मैं अन्दर न आऊँगी।

प्रेमसिंह—आओ-आओ, अपने बूढ़े बाप की बातों का बुरा न मानो।

वृन्दा—नहीं दादा, मैं अन्दर क़दम नहीं रख सकती।

प्रेमसिंह—क्यों ?

वृन्दा—फिर कभी बताऊँगी। मैं तुम्हारे पास वह तेग़ा लेने आयी हूँ।

प्रेमसिंह ने अचरज में आकर पूछा—उसे लेकर क्या करोगी ?

वृन्दा—अपनी बेइज्ज़ती का बदला लूँगी।

प्रेमसिंह—किससे ?

वृन्दा—रनजीतसिंह से।

प्रेमसिंह ज़मीन पर बैठ गया और वृन्दा की बातों पर ग़ौर करने लगा, फिर बोला—वृन्दा, तुम्हें मौका क्योंकर मिलेगा ?

वृन्दा—कभी-कभी धूल के साथ उड़कर चींटी भी आसमान तक जा पहुँचती है।

प्रेमसिंह—मगर बकरी शेर से क्योंकर लड़ेगी ?

वृन्दा—इसी तेग़े की मदद से।

प्रेमसिंह—इस तेग़े ने कभी छिपकर खून नहीं किया।

वृन्दा—दादा, यह विक्रमादित्य का तेग़ा है। इसने हमेशा दुखियारों की मदद की है।

प्रेमसिंह ने तेग़ा लाकर वृन्दा के हाथ में रख दिया। वृन्दा उसे पहलू में छिपाकर जिस तरफ़ से आयी थी उसी तरफ़ चली गयी। सूरज डूब गया था। पश्चिम के क्षितिज में रोशनी का कुछ-कुछ निशान बाक़ी था और भैंसें अपने बछड़ों को देखने के लिए चरागाहों से दौड़ती और चाव-भरी हुई आवाज़ से मिमियाती चली आती थीं और वृन्दा अपने बच्चे को रोता छोड़कर शाम के अँधेरे डरावने जंगल की तरफ़ जा रही थी।

९

वृहस्पति का दिन है। रात के दस बज चुके हैं। महाराजा रनजीतसिंह अपने विलास-भवन में शोभायमान हो रहे हैं। एक सात बत्तियोंवाला झाड़ रौशन है। मानों दीपक-सुन्दरी अपनी सहेलियों के साथ शबनम का घूँघट मुँह पर डाले हुए अपने रूप के गर्व में खोयी हुई है। महाराजा साहब के सामने वृन्दा गेरुए रंग की साड़ी पहने बैठी है। उसके हाथ में एक बीन है, उसी पर वह एक लुभावना गीत अलाप रही है।

महाराज बोले—श्यामा, मैं तुम्हारा गाना सुनकर बहुत खुश हुआ, तुम्हें क्या इनाम दूँ?

श्यामा ने एक विशेष भाव से सिर झुकाकर कहा—हुजूर के अख़्तियार में सब कुछ है।

रनजीतसिंह—जागीर लोगी?

श्यामा—ऐसी चीज़ दीजिए, जिससे आपका नाम हो जाय।

महाराज ने वृन्दा की तरफ़ ग़ौर से देखा। उसकी सादगी कह रही थी कि वह धन-दौलत को कुछ नहीं समझती। उसकी दृष्टि की पवित्रता और चेहरे की गम्भीरता साफ़ बता रही थी कि वह वेश्या नहीं है जो अपनी अदाओं को बेचती है। फिर पूछा—कोहनूर लोगी?

श्यामा—वह हुजूर के ताज में अधिक सुशोभित है।

महाराज ने आश्चर्य में पड़कर कहा—तुम खुद माँगो।

श्यामा—मिलेगा?

रनजीतसिंह—हाँ।

श्यामा—मुझे इन्साफ़ के खून का बदला दिया जाय।

महाराज रनजीतसिंह चौंक पड़े। वृन्दा की तरफ़ फिर ग़ौर से देखा और सोचने लगे इसका क्या मतलब है? इन्साफ़ तो खून का प्यासा नहीं होता, यह औरत ज़रूर किसी ज़ालिम रईस या राजा की सतायी हुई है। क्या अजब है कि उसका पति कहीं का राजा हो। ज़रूर ऐसा ही है। उसे किसी ने क़त्ल कर दिया है। इन्साफ़ को खून की प्यास इसी हालत में होती है; इसी वक़्त इन्साफ़ खूँख़ार जानवर हो जाता है। मैंने वादा किया है कि वह जो कुछ माँगेगी वह दूँगा। उसने एक बेशक़ीमत चीज़ माँगी है, इन्साफ़ के खून का बदला। वह उसे मिलना चाहिए। मगर किसका खून? राजा ने फिर पहलू बदलकर सोचा—किसका खून? यह सवाल मेरे दिल में न पैदा होना चाहिए। इन्साफ़ जिसका खून माँगे उसका खून मुझे देना चाहिए। इन्साफ़ के सामने सबका खून बराबर है। मगर इन्साफ़ को खून पाने का हक़ है, इसका फैसला कौन करेगा? बैर के बुख़ार से भरे हुए आदमी के हाथ में इसका फ़ैसला नहीं रहना चाहिए। अक्सर एक कड़ी बात, एक दिल जला देनेवाला ताना इन्सान के दिल में खून की प्यास पैदा कर देता है। इस दिल जलानेवाले ताने की आग उस वक्त तक नहीं बुझती जब तक उस पर खून के छींटे न दिये जायँ। मैंने ज़बान दे दी है तो ग़लती हुई। पूरी बात सुने बग़ैर, मुझे इन्साफ के खून का बदला

देने का वादा हरगिज़ न करना चाहिए था। इन विचारों ने राजा को कई मिनट तक अपने में खोया हुआ रक्खा। आख़िर वह बोले—श्यामा, तुम कौन हो ?

वृन्दा—एक अनाथ औरत।

राजा—तुम्हारा घर कहाँ है ?

वृन्दा—माहनगर में।

रनजीतसिंह ने वृन्दा को फिर ग़ौर से देखा। कई महीने पहले रात के समय माहनगर में एक भोली-भाली औरत की जो तसवीर दिल में खींची थी वह इस औरत से बहुत कुछ मिलती-जुलती थी। उस वक़्त आँखें इतनी बेधड़क न थीं। उस वक़्त आँखों में शर्म का पानी था, अब शोख़ी की झलक है। तब सच्चा मोती था, अब झूठा हो गया है।

महाराज बोले—श्यामा, इन्साफ़ किसका ख़ून चाहता है ?

वृन्दा—जिसे आप दोषी ठहरायें। जिस दिन हुज़ूर ने रात को माहनगर में पड़ाव किया था उसी रात को आपके सिपाही मुझे ज़बरदस्ती खींचकर पड़ाव पर लाये और मुझे इस क़ाबिल नहीं रक्खा कि लौटकर अपने घर जा सकूँ। मुझे उनकी नापाक निगाहों का निशाना बनना पड़ा। उनकी बेबाक ज़बानों ने, उनके शर्मनाक इशारों ने मेरी इज्ज़त ख़ाक में मिला दी। आप वहाँ मौजूद थे और आपकी बेकस रैयत पर यह ज़ुल्म किया जा रहा था। कौन मुजरिम है ? इन्साफ़ किसका ख़ून चाहता है ? इसका फ़ैसला आप करें।

रनजीतसिंह ज़मीन पर आँखें गड़ाये सुनते रहे। वृन्दा ने ज़रा दम लेकर फिर कहना शुरू किया—मैं विधवा स्त्री हूँ। मेरी इज्ज़त और आबरू के रखवाले आप हैं। पति-वियोग के साढ़े तीन साल मैंने तपस्विनी बनकर काटे थे। मगर आपके आदमियों ने मेरी तपस्या धूल में मिला दी। मैं इस योग्य नहीं रही कि लौटकर अपने घर जा सकूँ। अपने बच्चे के लिए मेरी गोद अब नहीं खुलती। अपने बूढ़े बाप के सामने मेरी गर्दन नहीं उठती। मैं अब अपने गाँव की औरतों से आँखें चुराती हूँ। मेरी इज्ज़त लुट गयी। औरत की इज्ज़त कितनी कीमती चीज़ है, इसे कौन नहीं जानता ? एक औरत की इज्ज़त के पीछे लंका का शानदार राज्य मिट गया। एक ही औरत की इज्ज़त के लिए कौरव वंश का नाश हो गया। औरतों की इज्ज़त के लिए हमेशा ख़ून की नदियाँ बही हैं और राज्य उलट गये हैं। मेरी इज्ज़त आपके आदमियों ने ली है, इसका जवाबदेह कौन है। इन्साफ़ किसका ख़ून चाहता है, इसका फ़ैसला आप करें।

वृन्दा का चेहरा लाल हो गया। महाराजा रनजीतसिंह एक गँवार देहाती औरत का यह हौसला, यह खयाल और जोशीली बात सुनकर सकते में आ गये। काँच का टुकड़ा टूटकर तेज़ धारवाला छुरा हो जाता है। वही कैफ़ियत इन्सान के टूटे हुए दिल की है।

आखिर महाराज ने ठंडी साँस ली और हसरतभरे लहजे में बोले—श्यामा, इंसाफ़ जिसका खून चाहता है, वह मैं हूँ।

इतना कहने के साथ महाराज रनजीतसिंह का चेहरा भभक उठा और दिल बेक़ाबू हो गया। तात्कालिक भावनाओं के नशे में आदमी का दिल आसमान की बुलन्दियों तक जा पहुँचता है। काँटे के चुभने से कराहनेवाला इन्सान इसी नशे से मस्त होकर खंजर की नोक कलेजे में चुभो लेता है। पानी की बौछार से डरनेवाला इन्सान गले-गले पानी में अकड़ता हुआ चला जाता है। इस हालत में इन्सान का दिल एक असाधारण शक्ति और असीम उत्साह अनुभव करने लगता है। इसी हालत में इन्सान छोटे से छोटे, ज़लील से ज़लील काम करता है और इसी हालत में इन्सान अपने वचन और कर्म की ऊँचाई से देवताओं को भी लज्जित कर देता है। महाराजा रनजीतसिंह उद्विग्न होकर उठ खड़े हुए और ऊँची आवाज़ में बोले —श्यामा, इंसाफ़ जिसका खून चाहता है, वह मैं हूँ! तुम्हारे साथ जो जुल्म हुआ है उसका जवाबदेह मैं हूँ। बुजुर्गों ने कहा है कि ईश्वर के सामने राजा अपने नौकरों की सख्ती और ज़बरदस्ती का ज़िम्मेदार होता है।

यह कहकर राजा ने तेज़ी के साथ अचकन के बन्द खोल दिये और वृन्दा के सामने घुटनों के बल, सीना फैलाकर बैठते हुए बोले—श्यामा, तुम्हारे पहलू में तलवार छिपी हुई है। वह विक्रमादित्य की तलवार है। उसने कितनी ही बार न्याय की रक्षा की है। आज एक अभागे राजा के खून से उसकी प्यास बुझा दो। बेशक वह राजा अभागा है जिसके राज्य में अनाथों पर अत्याचार होता है।

वृन्दा के दिल में अब एक ज़बरदस्त तब्दीली पैदा हुई, बदले की भावना ने प्रेम और आदर को जगह दी। रनजीतसिंह ने अपनी ज़िम्मेदारी मान ली, वह उसके सामने एक मुजरिम की हैसियत में इन्साफ़ की तलवार का निशाना बनने के लिए खड़े हैं, उनकी जान अब उसकी मुट्ठी में है। उन्हें मारना या जिलाना अब उसका अख्तियार है।

यह खयाल उसकी बदले की भावना को ठंडा कर देने के लिए काफ़ी थे। प्रताप और ऐश्वर्य जब अपने स्वर्ण-सिंहासन से उतरकर दया की याचना करने लगता है

तो कौन एसा हृदय है जो पसीज न जायगा ? वृन्दा ने दिल पर सब्र करके पहलू से ख़ंजर निकाला, मगर वार न कर सकी। तलवार उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ी।

महाराज रनजीतसिंह समझ गये कि औरत की हिम्मत दगा दे गयी। वह बड़ी तेज़ी से लपके और तेग़े को हाथ में उठा लिया। यकायक दाहिना हाथ पागलों जैसे जोश के साथ ऊपर को उठा। वह एक बार ज़ोर से बोले 'वाह गुरू की जय' और क़रीब था कि तलवार सीने में डूब जाय। बिजली कौंधकर बादल के सीने में घुसने ही वाली थी कि वृन्दा एक चीख़ मारकर उठी और राजा के ऊपर उठे हुए हाथ को अपने दोनों हाथों से मज़बूत पकड़ लिया। रनजीतसिंह ने झटका देकर हाथ छुड़ाना चाहा मगर कमज़ोर औरत ने उनके हाथ को इस तरह जकड़ा था जैसे मुहब्बत दिल को जकड़ लेती है। बेबस होकर बोले—श्यामा, इन्साफ को अपनी प्यास बुझाने दो।

श्यामा ने कहा—महाराज, उसकी प्यास बुझ गयी। यह तलवार इसकी गवाह है।

महाराज ने तेग़े को देखा। इस वक़्त उसमें दूज के चाँद की चमक थी। सत्य और न्याय के चमकते हुए सूरज ने उस चाँद को आलोकित कर दिया था।

—ज़माना, जनवरी १९११

आख़िरी मंज़िल

आह? आज तीन साल गुज़र गये, यही मकान है, यही बाग़, यही गंगा का किनारा, यही संगमरमर का हौज़। यही मैं हूँ और यही दरोदीवार। मगर अब इन चीजों से दिल पर कोई असर नहीं होता। वह नशा जो गंगा की सुहानी लहरों और हवा के दिलकश झोंकों से दिल पर छा जाता था उस नशे के लिए अब जी तरस तरस के रह जाता है! अब वह दिल नहीं रहा। वह युवती जो मेरी ज़िन्दगी का सहारा थी अब इस दुनिया में नहीं है।

मोहिनी ने बड़ा आकर्षक रूप पाया था। उसके सौन्दर्य में एक आश्चर्यजनक बात थी। उसे प्यार करना मुश्किल था, वह पूजने के योग्य थी। उसके चेहरे पर हमेशा एक बड़ी लुभावनी आत्मिकता की दीप्ति रहती थी। उसकी आँखें जिनमें लाज की गम्भीरता और पवित्रता का नशा था, प्रेम का स्रोत थीं। उसकी एक एक चितवन, एक एक क्रिया, एक एक बात उसके हृदय की पवित्रता और सच्चाई का असर दिल पर पैदा करती थी। जब वह अपनी शर्मीली आँखों से मेरी ओर ताकती तो उसका आकर्षण और उसकी गर्मी मेरे दिल में एक ज्वार-भाटा सा पैदा कर देती थी। उसकी आँखों से आत्मिक भावों की किरनें निकलती थीं मगर उसके होंठ प्रेम की बानी से अपरिचित थे। उसने कभी इशारे से भी उस अथाह प्रेम को व्यक्त नहीं किया जिसकी लहरों में वह खुद तिनके की तरह बही जाती थी। उसके प्रेम की कोई सीमा न थी। वह प्रेम जिसका लक्ष्य मिलन है, प्रेम नहीं वासना है। मोहिनी का प्रेम वह प्रेम था जो मिलन में भी वियोग के मज़े लेता है। मुझे खूब याद है एक बार जब उसी हौज़ के किनारे चांदनी रात में मेरी प्रेम-भरी बातों से विभोर होकर उसने कहा था—आह! वह आवाज़ अभी मेरे हृदय पर अंकित है, 'मिलन प्रेम का आदि है अंत नहीं।' प्रेम की समस्या पर इससे ज्यादा शानदार, इससे ज़्यादा ऊंचा खयाल कभी मेरी नज़र से नहीं गुज़रा। वह प्रेम जो चितवनों से पैदा होता है और वियोग में भी हरा-भरा रहता है, वह वासना के एक झोंके को भी बर्दाश्त नहीं कर सकता। संभव है कि यह मेरी आत्मस्तुति हो मगर वह प्रेम, जो मेरी कमज़ोरियों के बावजूद मोहिनी को मुझसे था उसका एक क़तरा भी मुझे बेसुध

करने के लिए काफ़ी था। मेरा हृदय इतना विशाल ही न था, मुझे आश्चर्य होता था कि मुझमें वह कौन-सा गुण था जिसने मोहिनी को मेरे प्रति प्रेम से विह्वल कर दिया था। सौन्दर्य, आचरण की पवित्रता, मर्दानगी का जौहर यही वह गुण हैं जिन पर मुहब्बत निछावर होती है मगर मैं इनमें से एक पर भी गर्व नहीं कर सकता था। शायद मेरी कमज़ोरियाँ ही उस प्रेम की तड़प का कारण थीं।

मोहिनी में वह अदायें न थीं जिन पर रँगीली तबीयतें फ़िदा हो जाया करती हैं। तिरछी चितवन, रूप-गर्व की मस्ती से भरी हुई आंखें, दिल को मोह लेनेवाली मुस्कराहट, चंचल वाणी, इनमें से कोई चीज़ यहां न थी। मगर जिस तरह चांद की मद्धिम सुहानी रोशनी में कभी-कभी फुहारें पड़ने लगती हैं, उसी तरह निश्छल प्रेम में उसके चेहरे पर एक उदास मुस्कराहट कौंध जाती और आंखें नम हो जातीं। यह अदा न थी, सच्चे भावों की तस्वीर थी जो मेरे हृदय में पवित्र प्रेम की खलबली पैदा कर देती थी।

२

शाम का वक़्त था, दिन और रात गले मिल रहे थे। आसमान पर मतवाली घटायें छाई हुई थीं और मैं मोहिनी के साथ उसी हौज़ के किनारे बैठा हुआ था। ठण्डी ठण्डी बयार और मस्त घटायें हृदय के किसी कोने में सोये हुए प्रेम के भाव को जगा दिया करती हैं। वह मतवालापन जो उस वक़्त हमारे दिलों पर छाया हुआ था उस पर मैं हज़ारों होशमंदियों को कुर्बान कर सकता हूँ। ऐसा मालूम होता था कि उस मस्ती के आलम में हमारे दिल बेताब होकर आंखों से टपक पड़ेंगे। आज मोहिनी की ज़बान भी संयम की बेड़ियों से मुक्त हो गई थी और उसकी प्रेम में डूबी हुई बातों से मेरी आत्मा को जीवन मिल रहा था।

एकाएक मोहिनी ने चौंककर गंगा की तरफ़ देखा। हमारे दिलों की तरह उस वक्त गंगा भी उमड़ी हुई थी।

पानी की उस उद्विग्न उठती-गिरती सतह पर एक दिया बहता हुआ चला जाता था और उसका चमकता हुआ अक्स थिरकता और नाचता एक पुच्छल तारे की तरह पानी को आलोकित कर रहा था। आह! उस नन्हीं-सी जान की क्या बिसात थी। काग़ज़ के चंद पुर्ज़े, बांस की चंद तीलियां, मिट्टी का एक दिया कि जैसे किसी की अतृप्त लालसाओं की समाधि थी जिस पर किसी दुख बँटानेवाले ने तरस खाकर एक दिया जला दिया था। मगर वह नन्हीं-सी जान जिसके अस्तित्व का कोई ठिकाना न था, उस अथाह सागर में उछलती हुई लहरों से टकराती, भँवरों

से हिलकोरें खाती, शोर करती हुई लहरों को रौंदती चली जाती थी। शायद जल-देवियों ने उसकी निर्बलता पर तरस खाकर उसे अपने आँचलों में छुपा लिया था।

जब तक वह दिया झिलमिलाता और टिमटिमाता, हमदर्द लहरों से झकोरे लेता दिखायी दिया मोहिनी टकटकी लगाये खोयी-सी उसकी तरफ़ ताकती रही। जब वह आँख से ओझल हो गया तो वह बेचैनी से उठ खड़ी हुई और बोली—मैं किनारे पर जाकर उस दिये को देखूंगी।

जिस तरह हलवाई की मनभावन पुकार सुनकर बच्चा घर से बाहर निकल पड़ता है और चाव-भरी आंखों से देखता और अधीर आवाज़ों से पुकारता उस नेमत के थाल की तरफ़ दौड़ता है, उसी जोश और चाव के साथ मोहिनी नदी के किनारे चली।

बाग़ से नदी तक सीढ़ियां बनी हुई थीं। हम दोनों तेज़ी के साथ नीचे उतरे और किनारे पहुँचते ही मोहिनी ने ख़ुशी के मारे उछलकर ज़ोर से कहा—अभी है ! अभी है ! देखो वह निकल गया !

वह बच्चों का-सा उत्साह और उद्विग्न अधीरता जो मोहिनी के चेहरे पर उस समय थी, मुझे कभी न भूलेगी। मेरे दिल में सवाल पैदा हुआ, उस दिये से ऐसा हार्दिक संबंध, ऐसी विह्वलता क्यों? मुझ जैसा कवित्वशून्य व्यक्ति उस पहेली को ज़रा भी न बूझ सका।

मेरे हृदय में आशंकायें पैदा हुई। अँधेरी रात है, घटायें उमड़ी हुई, नदी बाढ़ पर, हवा तेज़, यहां इस वक्त ठहरना ठीक नहीं। मगर मोहिनी ! वह चाव-भरे भोलेपन की तस्वीर, उसी दिये की तरफ़ आँखें लगाये चुपचाप खड़ी थी और वह उदास दिया ज्यों का त्यों हिलता-मचलता चला जाता था, न जाने कहाँ किस देश को !

मगर थोड़ी देर के बाद वह दिया आंखों से ओझल हो गया। मोहिनी ने निराश स्वर में पूछा—गया ! बुझ गया होगा ?

और इसके पहले कि मैं कुछ जवाब दूं वह उस डोंगी के पास चली गई, जिस पर बैठकर हम कभी-कभी नदी की सैरें किया करते थे, और प्यार से मेरे गले लिपटकर बोली—मैं उस दिये को देखने जाऊंगी, मैं देखूंगी कि वह कहां जा रहा है, किस देश को।

यह कहते-कहते मोहिनी ने नाव की रस्सी खोल ली। जिस तरह पेड़ों की डालियाँ तूफ़ान के झोकों से झकोले खाती हैं उसी तरह यह डोंगी डावांडोल हो रही थी। नदी का वह डरावना विस्तार, लहरों की वह भयानक छलाँगें, पानी की वह गरजती हुई आवाज़, इस ख़ौफनाक अँधेरे में इस डोंगी का बेड़ा क्योंकर पार होगा ! मेरा

दिल बैठ गया। क्या उस अभागे की तलाश में यह किश्ती भी डूबेगी! मगर मोहिनी का दिल उस वक़्त उसके बस में न था। उसी दिये की तरह उसका हृदय भी भावनाओं की विराट्, लहरों भरी, गरजती हुई नदी में बहा जा रहा था। मतवाली घटायें झुकती चली आती थीं कि जैसे नदी से गले मिलेंगी और वह काली नदी यों उठती थी कि जैसे बादलों को छू लेगी। डर के मारे आँखें मुँदी जाती थीं। हम तेज़ी के साथ उछलते, कगारों के गिरने की आवाज़ें सुनते, काले-काले पेड़ों का झूमना देखते चले जाते थे। आबादी पीछे छूट गई, देवताओं की बस्ती स भी आगे निकल गये। एकाएक मोहिनी चौंककर उठ खड़ी हुई और बोली—अभी है! अभी है! देखो वह जा रहा है।

मैंने आंख उठाकर देखा, वह दिया ज्यों का त्यों हिलता-मचलता चला जाता था।

३

उस दिये को देखते हम बहुत दूर निकल गये। मोहिनी ने यह राग अलापना शुरू किया—

मैं साजन से मिलन चली

कैसा तड़पा देनेवाला गीत था और कैसी दर्दभरी रसीली आवाज़। प्रेम और आंसुओं में डूबी हुई। मोहक गीत में कल्पनाओं को जगाने की बड़ी शक्ति होती है। वह मनुष्य को भौतिक संसार से उठाकर कल्पना-लोक में पहुंचा देता है। मेरे मन की आंखों में उस वक्त नदी की पुरशोर लहरें, नदी किनारे की झूमती हुई डालियाँ, सनसनाती हुई हवा सबने जैसे रूप धर लिया था और सब की सब तेज़ी से कदम उठाये चली जाती थीं, अपने साजन से मिलने के लिए। उत्कंठा और प्रेम से झूमती हुई एक युवती की धुँधली सपने-जैसी तस्वीर हवा में, लहरों में और पेड़ों के झुरमुट में चली जाती दिखाई देती और कहती थी—साजन से मिलने के लिए! इस गीत ने सारे दृश्य पर उत्कंठा का जादू फूंक दिया।

मैं साजन से मिलन चली
साजन बसत कौन सी नगरी मैं बौरी ना जानूँ
ना मोहे आस मिलन की उससे ऐसी प्रीत भली
मैं साजन से मिलन चली

मोहिनी ख़ामोश हुई तो चारों तरफ़ सन्नाटा छाया हुआ था और उस सन्नाटे में एक बहुत मद्धिम, रसीला स्वप्निल स्वर क्षितिज के उस पार से या नदी के नीचे से या हवा के झोंकों के साथ आता हुआ मन के कानों को सुनाई देता था।

मैं साजन से मिलन चली

मैं इस गीत से इतना प्रभावित हुआ कि ज़रा देर के लिए मुझे ख़याल न रहा कि कहां हूँ और कहां जा रहा हूँ। दिल और दिमाग़ में वही राग गूंज रहा था। अचानक मोहिनी ने कहा—उस दिये को देखो। मैंने दिये की तरफ़ देखा। उसकी रोशनी मंद हो गई थी और आयु की पूंजी ख़त्म हो चली थी। आख़िर वह एक बार ज़रा भभका और बुझ गया। जिस तरह पानी की बूंद नदी में गिरकर ग़ायब हो जाती है, उसी तरह अँधेरे के फैलाव में उस दिये की हस्ती ग़ायब हो गयी! मोहिनी ने धीमे से कहा, अब नहीं दिखाई देता! बुझ गया! यह कहकर उसने एक ठण्डी सांस ली। दर्द उमड़ आया। आंसुओं से गला फँस गया, ज़बान से सिर्फ इतना निकला, क्या यही उसकी आख़िरी मंज़िल थी? और आंखों से आंसू गिरने लगे।

मेरी आंखों के सामने से पर्दा-सा हट गया। मोहिनी की बेचैनी और उत्कंठा, अधीरता और उदासी का रहस्य समझ में आ गया और बरबस मेरी आंखों से भी आंसू की चंद बूंदें टपक पड़ीं। क्या उस शोर-भरे, ख़तरनाक, तूफ़ानी सफ़र की यही आख़िरी मंज़िल थी ?

दूसरे दिन मोहिनी उठी तो उसका चेहरा पीला था। उसे रात भर नींद नहीं आई थी। वह कवि-स्वभाव की स्त्री थी। रात की इस घटना ने उसके दर्द-भरे भावुक हृदय पर बहुत असर पैदा किया था। हँसी उसके होठों पर यूं ही बहुत कम आती थी, हां चेहरा खिला रहता था। आज से वह हँसमुखपन भी बिदा हो गया, हरदम चेहरे पर एक उदासी-सी छायी रहती और बातें ऐसी जिनसे हृदय छलनी होता था और रोना आता था। मैं उसके दिल को इन ख़यालों से दूर रखने के लिए कई बार हंसानेवाले क़िस्से लाया मगर उसने उन्हें खोलकर भी न देखा। हां, जब मैं घर पर न होता तो वह कवि की रचनायें देखा करती मगर इसलिए नहीं कि उसके पढ़ने से कोई आनंद मिलता था बल्कि इसलिए कि उसे रोने के लिए ख़याल मिल जाता था और वह कवितायें जो उस ज़माने में उसने लिखीं दिल को पिघला देनेवाले दर्द-भरे गीत हैं। कौन ऐसा व्यक्ति है जो इन्हें पढ़कर अपने आंसू रोक लेगा। वह कभी-कभी अपनी कवितायें मुझे सुनाती और जब मैं दर्द में डूबकर उनकी प्रशंसा करता तो

मुझे उसकी आंखों में आत्मा के उल्लास का नशा दिखाई पड़ता। हँसी-दिल्लगी और रंगीनी मुमकिन है कुछ लोगों के दिलों पर असर पैदा कर सके मगर वह कौन-सा दिल है जो दर्द के भावों से पिघल न जायेगा।

एक रोज़ हम दोनों इसी बाग़ की सैर कर रहे थे। शाम का वक्त था और चैत का महीना। मोहिनी की तबियत आज खुश थी। बहुत दिनों के बाद आज उसके होठों पर मुस्कराहट की झलक दिखाई दी थी। जब शाम हो गई और पूरनमासी का चांद गंगा की गोद से निकलकर ऊपर उठा तो हम इसी हौज़ के किनारे बैठ गये। यह मौलसिरियों की कतार और यह हौज़ मोहिनी की यादगार हैं। चांदनी में बिसात आयी और चौपड़ होने लगी। आज तबियत की ताजगी ने उसके रूप को चमका दिया था और उसकी मोहक चपलतायें मुझे मतवाला किये देती थीं। मैं कई बाज़ियां खेला और हर बार हारा। हारने में जो मज़ा था वह जीतने में कहां। हल्की-सी मस्ती में जो मज़ा है वह छकने और मतवाला होने में नहीं।

चांदनी खूब छिटकी हुई थी। एकाएक मोहिनी ने गंगा की तरफ़ देखा और मुझसे बोली, वह उस पार कैसी रोशनी नज़र आ रही है? मैंने भी निगाह दौड़ाई, चिता की आग जल रही थी लेकिन मैंने टालकर कहा—मांझी खाना पका रहे हैं।

मोहनी को विश्वास न हुआ। उसके चेहरे पर एक उदास मुस्कराहट दिखाई दी और आंखें नम हो गईं। ऐसे दुख़ देनेवाले दृश्य उसके भावुक और दर्दमंद दिलपर वही असर करते थे जो लू की लपट फूलों के साथ करती है।

थोड़ी देर तक वह मौन, निश्चल बैठी रही फिर शोकभरे स्वर में बोली—'अपनी आख़िरी मंज़िल पर पहुंच गया!'

—ज़माना, अगस्त-सितम्बर १९११

आल्हा

आल्हा का नाम किसने नहीं सुना। पुराने ज़माने के चन्देल राजपूतों में वीरता और जान पर खेलकर स्वामी की सेवा करने के लिए किसी राजा-महाराजा को भी यह अमर कीर्ति नहीं मिली। राजपूतों के नैतिक नियमों में केवल वीरता ही नहीं थी बल्कि अपने स्वामी और अपने राजा के लिए जान देना भी उसका एक अंग था। आल्हा और ऊदल की ज़िन्दगी इसकी सबसे अच्छी मिसाल है। सच्चा राजपूत क्या होता था और उसे क्या होना चाहिए इसे जिस खूबसूरती से इन दोनों भाइयों ने दिखा दिया है, उसकी मिसाल हिन्दोस्तान के किसी दूसरे हिस्से में मुश्किल से मिल सकेगी। आल्हा और ऊदल के मार्के और उनके कारनामे एक चन्देली कवि ने शायद उन्हीं के ज़माने में गाये, और उसको इस सूबे में जो लोकप्रियता प्राप्त है वह शायद रामायण को भी न हो। यह कविता आल्हा ही के नाम से प्रसिद्ध है और आठ-नौ शताब्दियाँ गुजर जाने के बावजूद उसकी दिलचस्पी और सर्वप्रियता में अन्तर नहीं आया। आल्हा गाने का इस प्रदेश में बड़ा रिवाज है। देहात में लोग हज़ारों की संख्या में आल्हा सुनने के लिए जमा होते हैं। शहरों में भी कभी-कभी यह मण्डलियाँ दिखायी दे जाती हैं। बड़े लोगों की अपेक्षा सर्वसाधारण में यह किस्सा अधिक लोकप्रिय है। किसी मजलिस में जाइए हज़ारों आदमी ज़मीन के फर्श पर बैठे हुए हैं, सारी महफिल जैसे बेसुध हो रही है और आल्हा गानेवाला किसी मोढ़े पर बैठा हुआ अपनी अलाप सुना रहा है। उसकी आवाज़ आवश्यकता-नुसार कभी ऊँची हो जाती है और कभी मद्धिम मगर जब वह किसी लड़ाई और उसकी तैयारियों का जिक्र करने लगता है तो शब्दों का प्रवाह, उसके हाथों और भवों के इशारे, ढोल की मर्दाना लय और उन पर वीरतापूर्ण शब्दों का चुस्ती से बैठना, जो लड़ाई की कविताओं ही की अपनी एक विशेषता है, यह सब चीजें मिलकर सुननेवालों के दिलों में मर्दाना जोश की एक उमंग-सी पैदा कर देते हैं। बयान करने का तर्ज़ ऐसा सादा और दिलचस्प और ज़बान ऐसी आमफ़हम है कि उसके समझने में ज़रा भी दिक्क़त नहीं होती। वर्णन और भावों की सादगी, कला के सौंदर्य का प्राण है।

राजा परमालदेव चन्देल खानदान का आखिरी राजा था। तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ में वह खानदान समाप्त हो गया। महोबा जो एक मामूली कस्बा है उस-ज़माने में चन्देलों की राजधानी था। महोबा की सल्तनत दिल्ली और कन्नौज से आंखें मिलाती थी। आल्हा और ऊदल इसी राजा परमालदेव के दरबार के सम्मानित सदस्य थे। यह दोनों भाई अभी बच्चे ही थे कि उनका बाप जसराज एक लड़ाई में मारा गया। राजा को अनाथों पर तरस आया, उन्हें राजमहल में ले आये और मुहब्बत के साथ अपनी रानी मलिनहा के सुपुर्द कर दिया। रानी ने उन दोनों भाइयों की परवरिश और लालन-पालन अपने लड़के की तरह किया। जवान होकर यही दोनों भाई बहादुरी में सारी दुनिया में मशहूर हुए। इन्हीं दिलावरों के कारनामों ने महोबे का नाम रौशन कर दिया है।

बड़े लड़इया महोबेवाले
जिनके बल को वार न पार।

आल्हा और ऊदल राजा परमालदेव पर जान कुर्बान करने के लिए हमेशा तैयार रहते थे। रानी मलिनहा ने उन्हें पाला, उनकी शादियाँ कीं, उन्हें गोद में खिलाया। नमक के हक के साथ-साथ इन एहसानों और सम्बन्धों ने दोनों भाइयों को चन्देल राज का जाँनिसार रखवाला और राजा परमालदेव का वफ़ादार सेवक बना दिया था। उनकी वीरता के कारण आस-पास के सैकड़ों घमंडी राजा चन्देलों के अधीन हो गये। महोबा राज्य की सीमाएँ नदी की बाढ़ की तरह फैलने लगीं और चन्देलों की शक्ति दूज के चाँद से बढ़कर पूरनमासी का चाँद हो गयी। यह दोनों वीर कभी चैन से न बैठते थे। रणक्षेत्र में अपने हाथ का जौहर दिखाने की उन्हें धुन थी। सुख-सेज पर उन्हें नींद न आती थी। और वह ज़माना भी ऐसा ही बेचैनियों से भरा हुआ था। उस ज़माने में चैन से बैठना दुनिया के परदे से मिट जाना था। बात बात पर तलवारें चलतीं और खून की नदियाँ बहती थीं। यहाँ तक कि शादियाँ भी खूनी लड़ाइयों जैसी हो गयी थीं। लड़की पैदा हुई और शामत आ गयी। हज़ारों सिपाहियों, सरदारों और सम्बन्धियों की जानें दहेज में देनी पड़ती थीं। आल्हा और ऊदल उसी पुरशोर ज़माने की सच्ची तसवीरें हैं और गो कि ऐसी हालतों और ज़माने के साथ जो नैतिक दुर्बलताएँ और विषमताएँ पायी जाती हैं, उनके असर से वह भी बचे हुए नहीं हैं, मगर उनकी दुर्बलताएँ उनका क़सूर नहीं बल्कि उनके ज़माने का क़सूर हैं।

२

आल्हा का मामा माहिल एक काले दिल का, मन में द्वेष पालनेवाला आदमी था। इन दोनों भाइयों का प्रताप और ऐश्वर्य उसके हृदय में काँटे की तरह खटका करता था। उसकी ज़िन्दगी की सबसे बड़ी आरज़ू यह थी कि उनके बड़प्पन को किसी तरह ख़ाक में मिला दे। इसी नेक काम के लिए उसने अपनी ज़िन्दगी न्योछावर कर दी थी। सैकड़ों वार किये, सैकड़ों बार आग लगायी, यहाँ तक कि आख़िरकार उसकी नशा पैदा करनेवाली मंत्रणाओं ने राजा परमाल को मतवाला कर दिया। लोहा भी पानी से कट जाता है।

एक रोज राजा परमाल दरबार में अकेले बैठे हुए थे कि माहिल आया। राजा ने उसे उदास देखकर पूछा, भइया, तुम्हारा चेहरा कुछ उतरा हुआ है। माहिल की आँखों में आँसू आ गये। मक्कार आदमी को अपनी भावनाओं पर जो अधिकार होता है वह किसी बड़े योगी के लिए भी कठिन है। उसका दिल रोता है मगर होंठ हँसते हैं, दिल खुशियों के मज़े लेता है मगर आँखें रोती हैं, दिल डाह की आग से जलता है मगर ज़बान से शहद और शक्कर की नदियाँ बहती हैं।

माहिल बोला—महाराज, आपकी छाया में रहकर मुझे दुनिया में अब किसी चीज़ की इच्छा बाक़ी नहीं। मगर जिन लोगों को आपने धूल से उठाकर आसमान पर पहुँचा दिया और जो आपकी कृपा से आज बड़े प्रताप और ऐश्वर्यवाले बन गये, उनकी कृतघ्नता और उपद्रव खड़े करना मेरे लिए बड़े दुःख का कारण हो रही है।

परमाल ने आश्चर्य से पूछा—क्या मेरा नमक खानेवालों में ऐसे भी लोग हैं?

माहिल—महाराज, मैं कुछ नहीं कह सकता। आपका हृदय कृपा का सागर है मगर उसमें एक ख़ूँख़ार घड़ियाल आ घुसा है।

—वह कौन है?

—मैं।

राजा ने आश्चर्यान्वित होकर कहा—तुम।

माहिल—हाँ महाराज, वह अभागा व्यक्ति मैं ही हूँ। मैं आज खुद अपनी फ़रियाद लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। अपने सम्बन्धियों के प्रति मेरा जो कर्तव्य है वह उस भक्ति की तुलना में कुछ भी नहीं जो मुझे आपके प्रति है। आल्हा मेरे जिगर का टुकड़ा है। उसका मांस मेरा मांस और उसका रक्त मेरा रक्त है। मगर अपने शरीर में जो रोग पैदा हो जाता है उसे विवश होकर हकीम

से कहना पड़ता है। आल्हा अपनी दौलत के नशे में चूर हो रहा है। उसके दिल में यह झूठा ख़याल पैदा हो गया है कि मेरे ही बाहु-बल से यह राज्य कायम है।

राजा परमाल की आँखें लाल हो गयीं, बोला—आल्हा को मैंने हमेशा अपना लड़का समझा है।

माहिल—लड़के से ज़्यादा।

परमाल—वह अनाथ था, कोई उसका संरक्षक न था। मैंने उसका पालन-पोषण किया, उसे गोद में खिलाया। मैंने उसे जागीरें दीं, उसे अपनी फ़ौज का सिपहसालार बनाया। उसकी शादी में मैंने बीस हज़ार चन्देल सूरमाओं का खून बहा दिया। उसकी माँ और मेरी मलिनहा वर्षों गले मिलकर सोयी हैं और आल्हा क्या मेरे एहसानों को भूल सकता है? माहिल, मुझे तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं आता।

माहिल का चेहरा पीला पड़ गया। मगर सम्हलकर बोला—महाराज, मेरी ज़बान से कभी झूठ बात नहीं निकली।

परमाल—मुझे कैसे विश्वास हो?

माहिल ने धीरे से राजा के कान में कुछ कह दिया।

३

आल्हा और ऊदल दोनों चौगान के खेल का अभ्यास कर रहे थे। लम्बे-चौड़े मैदान में हज़ारों आदमी इस तमाशे को देख रहे थे। गेंद किसी अभागे की तरह इधर-उधर ठोकरें खाता फिरता था। चोबदार ने आकर कहा—महाराज ने याद फरमाया है।

आल्हा को सन्देह हुआ। महाराज ने आज बेवक्त क्यों याद किया? खेल बन्द हो गया। गेंद को ठोकरों से छुट्टी मिली। फ़ौरन दरबार में चोबदार के साथ हाज़िर हुआ और झुककर आदाब बजा लाया।

परमाल ने कहा—मैं तुमसे कुछ माँगूँ? दोगे?

आल्हा ने सादगी से जवाब दिया—फ़रमाइए।

परमाल—इनकार तो न करोगे?

आल्हा ने कनखियों से माहिल की तरफ़ देखा और समझ गया कि इस वक़्त कुछ न कुछ दाल में काला है। इसके चेहरे पर यह मुस्कराहट क्यों? गूलर में यह फूल क्यों लगे? क्या मेरी वफ़ादारी का इम्तहान लिया जा रहा है? जोश से बोला—महाराज, मैं आपकी ज़बान से ऐसे सवाल सुनने का आदी नहीं हूँ।

आप मेरे संरक्षक, मेरे पालनहार, मेरे राजा हैं। आपकी भवों के इशारे पर मैं आग में कूद सकता हूँ और मौत से लड़ सकता हूँ। आपकी आज्ञा पाकर मैं असम्भव को सम्भव बना सकता हूँ। आप मुझसे ऐसे सवाल न करें।

परमाल—शाबाश, मुझे तुमसे ऐसी ही उम्मीद है।

आल्हा—मुझे क्या हुक्म मिलता है?

परमाल—तुम्हारे पास नाहर घोड़ा है?

आल्हा ने 'जी हाँ' कहकर माहिल की तरफ़ भयानक गुस्से भरी हुई आँखों से देखा।

परमाल—अगर तुम्हें बुरा न लगे तो उसे मेरी सवारी के लिए दे दो।

आल्हा कुछ जवाब न दे सका, सोचने लगा, मैंने अभी वादा किया है कि इनकार न करूँगा। मैंने बात हारी है। मुझे इनकार न करना चाहिए। निश्चय ही इस वक्त मेरी स्वामिभक्ति की परीक्षा ली जा रही है। मेरा इनकार इस समय बहुत बेमौक़ा और खतरनाक है। इसका तो कुछ ग़म नहीं। मगर मैं इनकार किस मुँह से करूँ, बेवफ़ा न कहलाऊँगा। मेरा और राजा का सम्बन्ध केवल स्वामी और सेवक का नहीं है, मैं उनकी गोद में खेला हूँ। जब मेरे हाथ कमजोर थे, और पाँव में खड़े होने का बूता न था, तब उन्होंने मेरे जुल्म सहे हैं, क्या मैं इनकार कर सकता हूँ?

विचारों की धारा मुड़ी—माना कि राजा के एहसान मुझ पर अनगिनती हैं। मेरे शरीर का एक-एक रोआँ उनके एहसानों के बोझ से दबा हुआ है मगर क्षत्रिय कभी अपनी सवारी का घोड़ा दूसरे को नहीं देता। यह क्षत्रियों का धर्म नहीं। मैं राजा का पाला हुआ और एहसानमन्द हूँ। मुझे अपने शरीर पर अधिकार है। उसे मैं राजा पर न्योछावर कर सकता हूँ। मगर राजपूती धर्म पर मेरा कोई अधिकार नहीं है, उसे मैं नहीं तोड़ सकता। जिन लोगों ने धर्म के कच्चे धागे को लोहे की दीवार समझा है, उन्हीं से राजपूतों का नाम चमक रहा है। क्या मैं हमेशा के लिए अपने ऊपर दाग़ लगाऊँ? आह! माहिल ने इस वक़्त मुझे खूब जकड़ रखा है। सामने खूँख़ार शेर है, पीछे गहरी खाई। या तो अपमान उठाऊँ या कृतघ्न कहलाऊँ। या तो राजपूतों के नाम को डुबोऊँ या बर्बाद हो जाऊँ। खैर, जो ईश्वर की मर्ज़ी, मुझे कृतघ्न कहलाना स्वीकार है, मगर अपमानित होना स्वीकार नहीं। बर्बाद हो जाना मंजूर है, मगर राजपूतों के धर्म में बट्टा लगाना मंजूर नहीं।

आल्हा सर नीचा किये इन्हीं ख़यालों में गोते खा रहा था। यह उसके लिए परीक्षा की घड़ी थी जिसमें सफल हो जाने पर उसका भविष्य निर्भर था।

मगर माहिल के लिए यह मौक़ा उसके धीरज की कम परीक्षा लेनेवाला न था।

वह दिन अब आ गया जिसके इन्तजार में कभी आँखें नहीं थकीं। खुशियों की यह बाढ़ अब संयम की लोहे की दीवार को काटती जाती थी। सिद्ध योगी पर दुर्बल मनुष्य की विजय होती जाती थी। एकाएक परमाल ने आल्हा से बुलन्द आवाज़ में पूछा—किस दुविधे में हो? क्या नहीं देना चाहते?

आल्हा ने राजा से आँखें मिलाकर कहा—जी नहीं।

परमाल को तैश आ गया, कड़ककर बोला—क्यों?

आल्हा ने अविचल मन से उत्तर दिया—यह राजपूतों का धर्म नहीं है।

परमाल—क्या मेरे एहसानों का यही बदला है? तुम जानते हो, पहले तुम क्या थे और अब क्या हो?

आल्हा—जी हाँ, जानता हूँ।

परमाल—तुम्हें मैंने बनाया है और मैं ही बिगाड़ सकता हूँ।

आल्हा से अब सब्र न हो सका, उसकी आँखें लाल हो गयीं और त्योरियों पर बल पड़ गये। तेज़ लहजे में बोला—महाराज, आपने मेरे ऊपर जो एहसान किये, उनका मैं हमेशा कृतज्ञ रहूँगा। क्षत्रिय कभी एहसान नहीं भूलता। मगर आपने मेरे ऊपर एहसान किये हैं, तो मैंने भी जी तोड़कर आपकी सेवा की है। सिर्फ नौकरी और नमक का हक़ अदा करने का भाव मुझमें वह निष्ठा और गर्मी नहीं पैदा कर सकता जिसका मैं बार-बार परिचय दे चुका हूँ। मगर ख़ैर, अब मुझे विश्वास हो गया कि इस दरबार में मेरा गुजर न होगा। मेरा आख़िरी सलाम कबूल हो और अपनी नादानी से मैंने जो कुछ भूल की है वह माफ़ की जाय।

माहिल की ओर देखकर उसने कहा—मामा जी, आज से मेरे और आपके बीच खून का रिश्ता टूटता है। आप मेरे खून के प्यासे हैं तो मैं भी आपकी जान का दुश्मन हूँ।

४

आल्हा की माँ का नाम देवल देवी था। उसकी गिनती उन हौसलेवाली उच्च-विचार स्त्रियों में है जिन्होंने हिन्दोस्तान के पिछले कारनामों को इतना स्पृहणीय बना दिया है। उस अँधेरे युग में भी जब कि आपसी फूट और बैर की एक भयानक बाढ़ मुल्क में आ पहुँची थी, हिन्दोस्तान में ऐसी-ऐसी देवियाँ पैदा हुईं जो

इतिहास के अँधेरे से अँधेरे पन्नों को भी ज्योतित कर सकती हैं। देवल देवी ने सुना कि आल्हा ने अपनी आन को रखने के लिए क्या किया तो उसकी आँखों में आँसू भर आये। उसने दोनों भाइयों को गले लगाकर कहा—बेटा तुमने वही किया जो राजपूतों का धर्म था। मैं बड़ी भाग्यशालिनी हूँ कि तुम जैसे दो बात की लाज रखनेवाले बेटे पाये हैं।

उसी रोज दोनों भाइयों ने महोबा से कूच कर दिया। अपने साथ अपनी तलवार और घोड़ों के सिवा और कुछ न लिया। माल-असबाब सब वहीं छोड़ दिये। सिपाही की दौलत और इज़्ज़त सब कुछ उसकी तलवार है। जिसके पास वीरता की सम्पत्ति है, उसे दूसरी किसी सम्पत्ति की ज़रूरत नहीं।

बरसात के दिन थे, नदी-नाले उमड़े हुए थे। इन्द्र की उदारताओं से मालामाल होकर ज़मीन फूली नहीं समाती थी। पेड़ों पर मोरों की रसीली झनकारें सुनायी देती थीं और खेतों में निश्चिन्तता की शराब से मतवाले किसान मल्हार की तानें अलाप रहे थे। पहाड़ियों की घनी हरियावल, पानी की दर्पन-जैसी सतह और जंगली बेल-बूटों के बनाव-संवार से प्रकृति पर एक यौवन बरस रहा था। मैदानों की ठंडी-ठंडी मस्त हवा, जंगली फूलों की मीठी-मीठी, सुहानी, आत्मा को उल्लास देनेवाली महक और खेतों की लहराती हुई रंग-बिरंग उपज ने दिलों में आरज़ुओं का एक तूफान उठा दिया था। ऐसे मुबारक मौसम में आल्हा ने महोबा को आख़िरी सलाम किया। दोनों भाइयों की आँखें रोते-रोते लाल हो गयी थीं क्योंकि आज उनसे उनका देश छूट रहा था। इन्हीं गलियों में उन्होंने घुटनों के बल चलना सीखा था, इन्हीं तालाबों में काग़ज़ की नावें चलायी थीं, यहीं जवानी की बेफ़िक्रियों के मज़े लूटे थे, इनसे अब हमेशा के लिए नाता टूटता था। दोनों भाई आगे बढ़ते जाते थे, मगर बहुत धीरे-धीरे। यह ख़याल था कि शायद परमाल ने रूठनेवालों को मनाने के लिए अपना कोई भरोसे का आदमी भेजा होगा। घोड़ों को सम्हाले हुए थे, मगर जब महोबे की पहाड़ियों का आख़िरी निशान आँखों से ओझल हो गया तो उम्मीद की आख़िरी झलक भी ग़ायब हो गयी। उन्होंने जिनका कोई देश न था एक ठंडी साँस ली और घोड़े बढ़ा दिये। उनके निर्वासन का समाचार बहुत जल्द चारों तरफ़ फैल गया। उनके लिए हर दरबार में जगह थी, चारों तरफ़ से राजाओं के संदेश आने लगे। कन्नौज के राजा जयचन्द ने अपने राजकुमार को उनसे मिलने के लिए भेजा। संदेशों से जो काम न निकला वह इस मुलाक़ात ने पूरा कर दिया। राजकुमार की ख़ातिरदारियाँ और आवभगत दोनों भाइयों को कन्नौज खींच ले

गयीं। जयचन्द आँखें बिछाये बैठा था। आल्हा को अपना सेनापति बना दिया।

५

आल्हा और ऊदल के चले जाने के बाद महोबे में तरह तरह के अंधेर शुरू हुए। परमाल कमज़ोर शासक था। मातहत राजाओं ने बग़ावत का झण्डा बुलन्द किया। ऐसी कोई ताक़त न रही जो उन झगड़ालू लोगों को वश में रख सके। दिल्ली के राजा पृथ्वीराज की कुछ सेना सिमता से एक सफल लड़ाई लड़कर वापस आ रही थी। महोबे में पड़ाव किया। अक्खड़ सिपाहियों में तलवार चलते कितनी देर लगती है। चाहे राजा परमाल के मुलाज़िमों की ज़्यादती हो चाहे चौहान सिपाहियों की, नतीजा यह हुआ कि चन्देलों और चौहानों में अनबन हो गयी। लड़ाई छिड़ गयी। चौहान संख्या में कम थे। चन्देलों ने आतिथ्य-सत्कार के नियमों को एक किनारे रखकर चौहानों के खून से अपना कलेजा ठंडा किया और यह न समझे कि मुट्ठी भर सिपाहियों के पीछे सारे देश पर विपत्ति आ जायगी। बेगुनाहों का खून रंग लायेगा। पृथ्वीराज को यह दिल तोड़नेवाली खबर मिली तो उसके गुस्से की कोई हद न रही। आँधी की तरह महोबे पर चढ़ दौड़ा और सिरको, जो इलाक़ा महोबे का एक मशहूर क़स्बा था, तबाह करके महोबे की तरफ़ बढ़ा। चन्देलों ने भी फ़ौज खड़ी की। मगर पहले ही मुकाबिले में उनके हौसले पस्त हो गये। आल्हा-ऊदल के बग़ैर फौज बिन दूल्हे की बारात थी। सारी फ़ौज तितर-बितर हो गयी। देश में तहलका मच गया। अब किसी क्षण पृथ्वीराज महोबे में आ पहुँचेगा, इस डर से लोगों के हाथ-पाँव फूल गये। परमाल अपने किये पर बहुत पछताया। मगर अब पछताना व्यर्थ था। कोई चारा न देखकर उसने पृथ्वीराज से एक महीने की सन्धि की प्रार्थना की। चौहान राजा युद्ध के नियमों को कभी हाथ से न जाने देता था। उसकी वीरता उसे कमज़ोर, बेख़बर और नामुस्तैद दुश्मन पर वार करने की इजाज़त न देती थी। इस मामले में अगर वह इन नियमों का इतनी सख़्ती से पाबन्द न होता तो शहाबुद्दीन के हाथों उसे वह बुरा दिन न देखना पड़ता। उसकी बहादुरी ही उसकी जान की गाहक हुई। उसने परमाल का पैग़ाम मंजूर कर लिया। चन्देलों की जान में जान आयी।

अब सलाह-मशविरा होने लगा कि पृथ्वीराज से क्योंकर मुक़ाबिला किया जाय। रानी मलिनहा भी इस मशविरे में शरीक थी। किसी ने कहा, महोबे के चारों तरफ़ एक ऊँची दीवार बनायी जाय; कोई बोला हम लोग महोबे को वीरान

करके दक्खिन की ओर चलें। परमाल ज़बान से तो कुछ न कहता था, मगर समर्पण के सिवा उसे और कोई चारा न दिखायी पड़ता था। तब रानी मलिनहा खड़ी होकर बोली—

"चन्देल वंश के राजपूतो, तुम कैसी बच्चों की-सी बातें करते हो? क्या दीवार खड़ी करके तुम दुश्मन को रोक लोगे? झाड़ू से कहीं आँधी रुकती है। तुम महोबे को वीरान करके भागने की सलाह देते हो। ऐसी कायरों जैसी सलाह औरतें दिया करती हैं। तुम्हारी सारी बहादुरी और जान पर खेलना अब कहाँ गया? अभी बहुत दिन नहीं गुज़रे कि चन्देलों के नाम से राजे थर्राते थे। चन्देलों की धाक बँधी हुई थी, तुमने कुछ ही सालों में सैकड़ों मैदान जीते, तुम्हें कभी हार नहीं हुई। तुम्हारी तलवार की दमक कभी मन्द नहीं हुई। तुम अब भी वही हो, मगर तुममें अब वह पुरुषार्थ नहीं है। वह पुरुषार्थ बनाफर वंश के साथ महोबे से उठ गया। देवल देवी के रूठने से चण्डिका देवी भी हमसे रूठ गयीं। अब अगर कोई यह हारी हुई बाज़ी सम्हाल सकता है तो वह आल्हा है। वही दोनों भाई इस नाज़ुक वक़्त में तुम्हें बचा सकते हैं। उन्हीं को मनाओ, उन्हीं को समझाओ, उन पर महोबे के बहुत हक़ हैं। महोबे की मिट्टी और पानी से उनकी परवरिश हुई है। वह महोबे के हक़ कभी भूल नहीं सकते, उन्हें ईश्वर ने बल और विद्या दी है, वही इस समय विजय का बीड़ा उठा सकते हैं।"

रानी मलिनहा की बातें लोगों के दिलों में बैठ गयीं।

६.

जगना भाट आल्हा और ऊदल को कन्नौज से लाने के लिए रवाना हुआ। यह दोनों भाई राजकुँवर लाखन के साथ शिकार खेलने जा रहे थे कि जगना ने पहुँचकर प्रणाम किया। उसके चेहरे से परेशानी और झिझक बरस रही थी। आल्हा ने घबराकर पूछा—कवीश्वर, यहाँ कैसे भूल पड़े? महोबे में तो सब ख़ैरियत है? हम ग़रीबों को क्योंकर याद किया?

जगना की आँखों में आँसू भर आये, बोला—अगर ख़ैरियत होती तो तुम्हारी शरण में क्यों आता। मुसीबत पड़ने पर ही देवताओं की याद आती है। महोबे पर इस समय इन्द्र का कोप छाया हुआ है। पृथ्वीराज चौहान महोबे को घेरे पड़ा है। नरसिंह और वीरसिंह तलवारों की भेंट हो चुके हैं। सिरको सारा राख का ढेर हो गया। चन्देलों का राज वीरान्न हुआ जाता है। सारे देश में कुहराम मचा हुआ

है। बड़ी मुश्किलों से एक महीने की मोहलत ली गयी है और मुझे राजा परमाल ने तुम्हारे पास भेजा है। इस मुसीबत के वक़्त हमारा कोई मददगार नहीं है, कोई ऐसा नहीं है जो हमारी हिम्मत बँधाये। जब से तुमने महोबे से नाता तोड़ा है तब से राजा परमाल के होंठों पर हँसी नहीं आयी। जिस परमाल को उदास देखकर तुम बेचैन हो जाते थे उसी परमाल की आँखें महीनों से नींद को तरसती हैं। रानी मलिनहा, जिसकी गोद में तुम खेले हो, रात-दिन तुम्हारी याद में रोती रहती है। वह अपने झरोखे से कन्नौज की तरफ आँखें लगाये तुम्हारी राह देखा करती है। ऐ बनाफर वंश के सपूतो! चन्देलों की नाव अब डूब रही है। चन्देलों का नाम अब मिटा जाता है। अब मौक़ा है कि तुम तलवारें हाथ में लो। अगर इस मौक़े पर तुमने डूबती हुई नाव को न सम्हाला तो तुम्हें हमेशा के लिए पछताना पड़ेगा, क्योंकि इस नाम के साथ तुम्हारा और तुम्हारे नामी बाप का नाम भी डूब जायगा।

आल्हा ने रूखेपन से जबाब दिया—हमें इसकी अब कुछ परवाह नहीं है। हमारा और हमारे बाप का नाम तो उसी दिन डूब गया, जब हम बेक़सूर महोबे से निकाल दिये गये। महोबा मिट्टी में मिल जाय, चन्देलों का चिराग़ गुल हो जाय, अब हमें ज़रा भी परवाह नहीं है। क्या हमारी सेवाओं का यही पुरस्कार था जो हमको दिया गया? हमारे बाप ने महोबे पर अपने प्राण न्यौछावर कर दिये, हमने गोंडों को हराया और चन्देलों को देवगढ़ का मालिक बना दिया। हमने यादवों से लोहा लिया और कठियार के मैदान में चन्देलों का झंडा गाड़ दिया। मैंने इन्हीं हाथों से कछवाहों की बढ़ती हुई लहर को रोका। गया का मैदान हमीं ने जीता, रीवाँ का घमण्ड हमीं ने तोड़ा। मैंने ही मेवात से ख़िराज लिया। हमने यह सब कुछ किया और इसका हमको यह पुरस्कार दिया गया है? मेरे बाप ने दस राजाओं को ग़ुलामी का तौक़ पहनाया। मैंने परमाल की सेवा में सात बार प्राणलेवा ज़ख़्म खाये, तीन बार मौत के मुँह से निकल आया। मैंने चालीस लड़ाइयाँ लड़ीं और कभी हारकर न आया। ऊदल ने सात खूनी मार्के जीते। हमने चन्देलों की बहादुरी का डंका बजा दिया। चन्देलों का नाम हमने आसमान तक पहुँचा दिया और इसका यह पुरस्कार हमको मिला है? परमाल अब क्यों उसी दगाबाज़ माहिल को अपनी मदद के लिए नहीं बुलाते जिसको खुश करने के लिए मेरा देशनिकाला हुआ था!

जगना ने जवाब दिया—आल्हा! यह राजपूतों की बातें नहीं हैं। तुम्हारे

बाप ने जिस राज पर प्राण न्यौछावर कर दिये वही राज अब दुश्मन के पाँव तले रौंदा जा रहा है। उसी बाप के बेटे होकर भी क्या तुम्हारे खून में जोश नहीं आता ? वह राजपूत जो अपने मुसीबत में पड़े हुए राजा को छोड़ता है, उसके लिए नरक की आग के सिवा और कोई जगह नहीं है। तुम्हारी मातृभूमि पर बर्बादी की घटा छायी हुई है। तुम्हारी माएँ और बहनें दुश्मनों की आबरू लूटनेवाली निगाहों का निशाना बन रही हैं, क्या अब भी तुम्हारे खून में जोश नहीं आता ? अपने देश की यह दुर्गत देखकर भी तुम कन्नौज में चैन की नींद सो सकते हो ?

देवल देवी को जगना के आने की ख़बर हुई। उसने फौरन आल्हा को बुलाकर कहा—बेटा, पिछली बातें भूल जाओ और आज ही महोबे चलने की तैयारी करो।

आल्हा कुछ जवाब न दे सका, मगर ऊदल झुँझलाकर बोला—हम अब महोबे नहीं जा सकते। क्या तुम्हें वह दिन भूल गये जब हम कुत्तों की तरह महोबे से निकाल दिये गये ? महोबा डूबे या रहे, हमारा जी उससे भर गया, अब उसको देखने की इच्छा नहीं है। अब कन्नौज ही हमारी मातृभूमि है।

राजपूतनी बेटे की ज़बान से यह पाप की बात न सुन सकी, तैश में आकर बोली—ऊदल, तुझे ऐसी बातें मुँह से निकालते हुए शर्म नहीं आती ? काश ईश्वर मुझे बाँझ ही रखता कि ऐसे बेटों की माँ न बनती। क्या इन्हीं बनाफर वंश के नाम पर कलंक लगानेवालों के लिए मैंने गर्भ की पीड़ा सही थी। नालायक़ो, मेरे सामने से दूर हो जाओ। मुझे अपना मुँह न दिखाओ। तुम जसराज के बेटे नहीं हो, तुम जिसकी रान से पैदा हुए हो वह जसराज नहीं हो सकता।

यह मर्मान्तिक चोट थी। शर्म से दोनों भाइयों के माथे पर पसीना आ गया। दोनों उठ खड़े हुए और बोले—माता, अब बस करो, हम ज़्यादा नहीं सुन सकते, हम आज ही महोबे जायँगे और राजा परमाल की ख़िदमत में अपना खून बहायेंगे। हम रणक्षेत्र में अपनी तलवारों की चमक से अपने बाप का नाम रोशन करेंगे। हम चौहान के मुक़ाबिले में अपनी बहादुरी के जौहर दिखायेंगे और देवलदेवी के बेटों का नाम अमर कर देंगे।

७

दोनों भाई कन्नौज से चले, देवल भी साथ थी। जब यह रूठनेवाले अपनी मातृभूमि में पहुँचे तो सूखे धानों में पानी पड़ गया, टूटी हुई हिम्मतें बँध गयीं। एक लाख चन्देल इन वीरों की अगवानी करने के लिए खड़े थे। बहुत दिनों के बाद वह

अपनी मातृभूमि से बिछुड़े हुए इन दोनों भाइयों से मिले। आँखों ने खुशी के आँसू बहाये। राजा परमाल उनके आने की खबर पाते ही कीरत सागर तक पैदल आया। आल्हा और ऊदल दौड़कर उसके पाँव से लिपट गये। तीनों की आँखों से पानी बरसा और सारा मनमुटाव धुल गया।

दुश्मन सर पर खड़ा था, ज़्यादा आतिथ्य-सत्कार का मौक़ा न था। वहीं कीरत सागर के किनारे देश के नेताओं और दरबार के कर्मचारियों की राय से आल्हा फ़ौज का सेनापति बनाया गया। वहीं मरने-मारने के लिए सौगंधें खायी गयीं। वहीं बहादुरों ने कसमें खायीं कि मैदान से हटेंगे तो मरकर हटेंगे। वहीं लोग एक दूसरे के गले मिले और अपनी क़िस्मतों का फ़ैसला करने चले। आज किसी की आँखों में और चेहरे पर उदासी के चिह्न न थे, औरतें हँस-हँसकर अपने प्यारों को विदा करती थीं, मर्द हँस-हँसकर स्त्रियों से अलग होते थे क्योंकि यह आखिरी बाज़ी है, इसे जीतना ज़िन्दगी और हारना मौत है।

उस जगह के पास जहाँ अब और कोई क़स्बा आबाद है, दोनों फ़ौजों का मुक़ाबला हुआ और अठारह दिन तक मारकाट का बाज़ार गर्म रहा। खूब घमासान लड़ाई हुई। पृथ्वीराज खुद लड़ाई में शरीक था। दोनों दल दिल खोलकर लड़े। वीरों ने खूब अरमान निकाले और दोनों तरफ़ की फ़ौजें वहीं कट मरीं। तीन लाख आदमियों में सिर्फ तीन आदमी ज़िन्दा बचे—एक पृथ्वीराज, दूसरा चन्दा भाट, तीसरा आल्हा। ऐसी भयानक, अटल और निर्णायक लड़ाई शायद ही किसी देश और किसी युग में हुई हो। दोनों ही हारे और दोनों ही जीते। चन्देल और चौहान हमेशा के लिए खाक में मिल गये क्योंकि थानेसर की लड़ाई का फ़ैसला भी इसी मैदान में हो गया। चौहानों में जितने अनुभवी सिपाही थे, वह सब औरई में काम आये। शहाबुद्दीन से मुक़ाबिला पड़ा तो नौसिखिये, अनुभवहीन सिपाही मैदान में लाये गये और नतीजा वही हुआ जो हो सकता था। आल्हा का कुछ पता न चला कि कहाँ गया। कहीं शर्म से डूब मरा या साधू हो गया।

जनता में अब तक यही विश्वास है कि वह ज़िन्दा है। लोग कहते हैं कि वह अमर हो गया। यह बिलकुल ठीक है क्योंकि आल्हा सचमुच अमर है और वह कभी मिट नहीं सकता, उसका नाम हमेशा क़ायम रहेगा।

—ज़माना, जनवरी १९१२

●

नसीहतों का दफ्तर

बाबू अक्षयकुमार पटना के एक वकील थे और बड़े वकीलों में समझे जाते थे। यानी रायबहादुरी के क़रीब पहुँच चुके थे। जैसा कि अक्सर बड़े आदमियों के बारे में मशहूर है, इन बाबू साहब का लड़कपन भी बहुत ग़रीबी में बीता था। माँ-बाप जब अपने शैतान लड़कों को डाँटते-डपटते तो बाबू अक्षयकुमार का नाम मिसाल के तौर पर पेश किया जाता था—अक्षय बाबू को देखो, आज दरवाज़े पर हाथी झूमता है, कल पढ़ने को तेल नहीं मयस्सर होता था, पुआल जलाकर उसकी आँच में पढ़ते, सड़क की लालटेनों की रोशनी में सबक़ याद करते। विद्या इस तरह आती है। कोई-कोई कल्पनाशील व्यक्ति इस बात के भी साक्षी थे कि उन्होंने अक्षय बाबू को जुगनू की रोशनी में पढ़ते देखा है। जुगनू की दमक या पुआल की आँच में स्थायी प्रकाश हो सकता है, इसका फ़ैसला सुननेवालों की अक़्ल पर था। कहने का आशय यह कि अक्षयकुमार का बचपन का ज़माना बहुत ईर्ष्या करने योग्य न था और न वकालत का ज़माना खुशनसीबियों की वह बाढ़ अपने साथ लाया जिसकी उम्मीद थी। बाढ़ का ज़िक्र ही क्या, बरसों तक अकाल की सूरत थी। यह आशा कि सियाह गाउन कामधेनु साबित होगा और दुनिया की सारी नेमतें उसके सामने हाथ बाँधे खड़ी रहेंगी, झूठ निकली। काला गाउन काले नसीब को रोशन न कर सका। अच्छे दिनों के इन्तज़ार में बहुत दिन गुज़र गये और आख़िरकार जब अच्छे दिन आये, जब गार्डेन पार्टियों में शरीक होने की दावतें आने लगीं, जब वह आम जलसों में सभापति की कुर्सी पर शोभायमान होने लगे तो जवानी बिदा हो चुकी थी और बालों को ख़िज़ाब की ज़रूरत महसूस होने लगी थी। खासकर इस कारण से कि सुन्दर और हँसमुख हेमवती की ख़ातिरदारी ज़रूरी थी जिसके शुभ आगमन ने बाबू अक्षयकुमार के जीवन की अन्तिम आकांक्षा को पूरा कर दिया था।

२

जिस तरह दानशीलता मनुष्य के दुर्गुणों को छिपा लेती है उसी तरह कृपणता उसके सद्गुणों पर पर्दा डाल देती है। कंजूस आदमी के दुश्मन सब होते हैं, दोस्त

कोई नहीं होता। हर व्यक्ति को उससे नफ़रत होती है। वह ग़रीब किसी को नुक़सान नहीं पहुँचाता, आम तौर पर वह बहुत ही शान्तिप्रिय, गम्भीर, सबसे मिलजुल कर रहनेवाला और स्वाभिमानी व्यक्ति होता है, मगर कंजूसी काला रंग है जिस पर दूसरा कोई रंग, चाहे कितना ही चटख़ क्यों न हो, नहीं चढ़ सकता। बाबू अक्षयकुमार भी कंजूस मशहूर थे, हालाँकि जैसा क़ायदा है, यह उपाधि उन्हें ईर्ष्या के दरबार से प्राप्त हुई थी। जो व्यक्ति कंजूस कहा जाता हो, समझ लो कि वह बहुत भाग्यशाली है और उससे डाह करनेवाले बहुत हैं। अगर बाबू अक्षयकुमार कौड़ियों को दाँत से पकड़ते थे तो किसी का क्या नुक़सान था। अगर उनका मकान बहुत ठाट-बाट से नहीं सजा हुआ था, अगर उनके यहाँ मुफ्तख़ोर ऊँघनेवाले नौकरों की फ़ौज नहीं थी, अगर वह दो घोड़ों की फ़िटन पर कचहरी नहीं जाते थे तो किसी का क्या नुक़सान था। उनकी ज़िन्दग़ी का उसूल था कि कौड़ियों की तुम फ़िक्र रक्खो, रुपये अपनी फ़िक्र आप कर लेंगे। और इस सुनहरे उसूल का कठोरता से पालन करने का उन्हें पूरा अधिकार था। इन्हीं कौड़ियों पर जवानी की बहारें और दिल की उमंगें न्यौछावर की थीं। आँखों की रोशनी और सेहत जैसी बड़ी नेमत इन्हीं कौड़ियों पर चढ़ायी थी। उन्हें दाँतों से पकड़ते थे तो बहुत अच्छा करते थे, पलकों से उठाना चाहिए था।

लेकिन सुन्दर हँसमुख हेमवती का स्वभाव इसके बिलकुल उलटा था। अपनी दूसरी बहनों की तरह वह भी सुख-सुविधा पर जान देती थी और गो बाबू अक्षयकुमार ऐसे नादान और ऐसे रूखे-सूखे नहीं थे कि उसकी क़द्र करने के क़ाबिल कमज़ोरियों की क़द्र न करते (नहीं, वह सिंगार और सजावट की चीज़ों को देखकर कभी-कभी खुश होने की कोशिश भी करते थे) मगर कभी-कभी जब हेमवती उनकी नेक सलाहों की परवाह न करके सीमा से आगे बढ़ जाती थी तो उस दिन बाबू साहब को उसकी ख़ातिर अपनी वकालत की योग्यता का कुछ-न-कुछ हिस्सा ज़रूर ख़र्च करना पड़ता था।

एक रोज़ जब अक्षयकुमार कचहरी से आये तो सुन्दर और हँसमुख हेमवती ने एक रंगीन लिफाफा उनके हाथ में रख दिया। उन्होंने देखा तो अन्दर एक बहुत नफ़ीस गुलाबी रग का निमन्त्रण था। हेमवती से बोले—इन लोगों को एक-न-एक ख़ब्त सूझता ही रहता है। मेरे ख़याल में इस ड्रामैटिक परफ़ारमेंस की कोई ज़रूरत न थी।

हेमवती इन बातों के सुनने की आदी थी, मुस्कराकर बोली—क्यों इससे बेहतर और कौन खुशी का मौक़ा हो सकता है ?

अक्षयकुमार समझ गये कि अब बहस मुबाहिसे की ज़रूरत आ गयी, सम्हल बैठे और बोले—मेरी जान, बी० ए० के इम्तहान में पास होना कोई ग़ैर-मामूली बात नहीं है, हज़ारों नौजवान हर साल पास होते रहते हैं। अगर मेरा भाई होता तो मैं सिर्फ़ उसकी पीठ ठोंककर कहता कि शाबाश खूब मेहनत की। मुझे ड्रामा खेलने का ख़याल भी न पैदा होता। डाक्टर साहब तो समझदार आदमी हैं, उन्हें क्या सूझी!

हेमवती—मुझे तो जाना ही पड़ेगा।

अक्षयकुमार—क्यों, क्या वादा कर लिया है?

हेमवती—डाक्टर साहब की बीवी खुद आयी थीं।

अक्षयकुमार—तो मेरी जान, तुम भी कभी उनके घर चली जाना, परसों जाने की क्या ज़रूरत है?

हेमवती—अब बता ही दूं, मुझे नायिका का पार्ट दिया गया है और मैंने उसे मंजूर कर लिया है।

यह कहकर हेमवती ने गर्व से अपने पति की तरफ़ देखा, मगर अक्षयकुमार को इस ख़बर से बहुत खुशी नहीं हुई। इससे पहले दो बार हेमवती शकुन्तला बन चुकी थी। इन दोनों मौक़ों पर बाबू साहब को काफ़ी ख़र्च करना पड़ा था। उन्हें डर हुआ कि अब की हफ्ते में फिर घोष कम्पनी दो सौ का बिल पेश करेगी। और इस बात की सख्त ज़रूरत थी कि अभी से रोक-थाम की जाय। उन्होंने बहुत मुलायमियत से हेमवती का हाथ पकड़ लिया और बहुत मीठे और मुहब्बत में लिपटे हुए लहजे में बोले—प्यारी, यह बला फिर तुमने अपने सर ले ली। अपनी तकलीफ़ और परेशानी का बिलकुल खयाल नहीं किया। यह भी नहीं सोचा कि तुम्हारी परेशानी तुम्हारे इस प्रेमी को कितना परेशान करती है। मेरी जान, यह जलसे नैतिक दृष्टि से बहुत आपत्तिजनक होते हैं। इन्हीं मौक़ों पर दिलों में ईर्ष्या के बीज बोये जाते हैं, यहीं पीठ पीछे बुराई करने की आदत पड़ती है और यहीं तानेबाज़ी और नोकझोंक की मश्क होती है। फ़लां लेडी हसीन है, इसलिए उसकी दूसरी बहनों का फ़र्ज़ है कि उससे जलें। मेरी जान, ईश्वर न करे कि कोई डाही बने, मगर डाह करने के योग्य बनना तो अपने अख़्तियार की बात नहीं। मुझे भय है कि तुम्हारा दाहक सौन्दर्य कितने ही दिलों को जलाकर राख कर देगा। प्यारी हेमू, मुझे दुख है कि तुमने मुझसे पूछे बग़ैर यह निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। मुझे विश्वास

है, अगर तुम्हें मालूम होता कि मैं इसे पसन्द न करूंगा तो तुम हरगिज़ स्वीकार न करतीं।

सुन्दर और हँसमुख हेमवती इस मुहब्बत में लिपटी हुई तक़रीर को बज़ाहिर बहुत ग़ौर से सुनती रही। इसके बाद जान-बूझकर अनजान बनते हुए बोली—मैंने तो यह सोचकर मंजूर कर लिया था कि कपड़े सब पहले ही के रक्खे हुए हैं, ज़्यादा सामान की ज़रूरत न होगी, सिर्फ चन्द घंटों की तकलीफ़ है और एहसान मुफ्त। डाक्टरों को नाराज़ करना भी तो अच्छी बात नहीं है। मगर अब न जाऊंगी। मैं अभी उनको अपनी मजबूरी लिखे देती हूँ। सचमुच क्या फ़ायदा, बेकार की उलझन !

यह सुनकर कि कपड़े सब पहले के रक्खे हुए हैं, कुछ ज़्यादा ख़र्च न होगा, अक्षयकुमार के दिल पर से एक बड़ा बोझ उठ गया। डाक्टरों को नाराज़ करना भी तो अच्छी बात नहीं। यह जुमला भी मानों से ख़ाली न था। बाबू साहब पछताये कि अगर पहले से यह हाल मालूम होता तो काहे को इस तरह रूखा-सूखा उपदेशक बनना पड़ता। गर्दन हिलाकर बोले—नहीं नहीं मेरी जान, मेरा मंशा यह हरगिज़ नहीं कि तुम जाओ ही मत। जब तुम निमन्त्रण स्वीकार कर चुकी हो तो अब उससे मुकरना इन्सानियत से हटी हुई बात मालूम होती है। मेरा सिर्फ़ यह मंशा था कि जहां तक मुमकिन हो, ऐसे जलसों से दूर रहना चाहिए।

मगर हेमवती ने अपना फ़ैसला बहाल रक्खा—अब मैं न जाऊंगी। तुम्हारी बातें गिरह में बांध लीं।

३

दूसरे दिन शाम को अक्षयकुमार हवाख़ोरी को निकले। आनन्दबाग उस वक़्त जोबन पर था। ऊँचे-ऊँचे सरो और अशोक की क़तारों के बीच में लाल बजरी से सजी हुई सड़क ऐसी खूबसूरत मालूम होती थी कि जैसे कमल के पत्तों में फूल खिला हुआ है या नोकदार पलकों के बीच में लाल मतवाली आंखें ज़ेब दे रही हैं। बाबू अक्षयकुमार इस क्यारी पर हवा के हल्के-हल्के ताज़गी देनेवाले झोंकों का मज़ा उठाते हुए एक सायेदार कुंज में जा बैठे। यह उनकी खास जगह थी। इस इनायतों की बस्ती में आकर थोड़ी देर के लिए उनके दिल पर फूलों के खिलेपन और पत्तों की हरियाली का बहुत ही नशीला असर होता था। थोड़ी देर के लिए उनका दिल भी फूल की तरह खिल जाता था। यहां बैठे उन्हें थोड़ी ही देर हुई थी, कि उन्हें एक बूढ़ा आदमी अपनी तरफ़ आता हुआ दिखायी दिया। उसने सामने आकर सलाम

किया और एक मोहरदार बन्द लिफ़ाफ़ा देकर ग़ायब हो गया। अक्षय बाबू ने लिफ़ाफ़ा खोला और उसकी अम्बरी महक से रूह फड़क उठी। ख़त का मज़मून यह था—

'मेरे प्यारे अक्षय बाबू, आप इस नाचीज़ के ख़त को पढ़कर बहुत हैरत में आएंगे, मगर मुझे आशा है कि आप मेरी इस ढिठाई को माफ़ करेंगे। आप के आचार-विचार, आपकी सुरुचि और आपके रहन-सहन की तारीफ़ें सुन-सुनकर मेरे दिल में आपके लिए एक प्रेम और आदर का भाव पैदा हो गया है। आपके सादे रहन-सहन ने मुझे मोहित कर लिया है। अगर हया-शर्म मेरा दामन न पकड़े होती तो मैं अपनी भावनाओं को और भी स्पष्ट शब्दों में प्रकाशित करती। साल भर हुआ कि मैंने सामान्य पुरुषों की दुर्बलताओं से निराश होकर यह इरादा कर लिया था कि शेष जीवन खुशियों का सपना देखने में काटूंगी। मैंने ढूँढ़ा, मगर जिस दिल की तलाश थी, न मिला। लेकिन जबसे मैंने आपको देखा है, मुद्दतों की सोयी हुई उमंगें जाग उठी हैं। आपके चेहरे पर सुन्दरता और जवानी की रोशनी न सही मगर कल्पना की झलक मौजूद है, जिसकी मेरी निगाह में ज़्यादा इज़्ज़त है। हालांकि मेरा ख़याल है कि अगर आपको अपने बहिरंग की चिन्ता होती तो शायद मेरे अस्तित्व का दुर्बल अंश ज़्यादा प्रसन्न होता। मगर मैं रूप की भूखी नहीं हूँ। मुझे एक सच्चे, प्रदर्शन से मुक्त, सीने में दिल रखनेवाले इन्सान की चाह है और मैंने उसे पा लिया। मैंने एक चतुर पनडुब्बे की तरह समुन्दर की तह में बैठकर उस रतन को ढूँढ़ निकाला है, मेरी आपसे केवल यह प्रार्थना है कि आप कल रात को डाक्टर किचलू के मकान पर तशरीफ़ लायें। मैं आपका बहुत एहसान मानूंगी। वहाँ एक हरे कपड़े पहने स्त्री अशोकों के कुंज में आपके लिए आंखें बिछाये बैठी नज़र आयेगी।

इस ख़त को अक्षयकुमार ने दोबारा पढ़ा। इसका उनके दिल पर क्या असर हुआ, यह बयान करने की ज़रूरत नहीं। वह ऋषि नहीं थे, हालांकि ऐसे नाज़ुक मौक़े पर ऋषियों का फिसल जाना भी असम्भव नहीं। उन्हें एक नशा-सा महसूस होने लगा। ज़रूर इस परी ने मुझे यहां बैठे देखा होगा। मैंने आज कई दिन से आईना भी नहीं देखा, जाने चेहरे की क्या कैफ़ियत हो रही है। इस ख़याल से बेचैन होकर वह दौड़े हुए एक हौज़ पर गये और उसके साफ़ पानी में अपनी सूरत देखी, मगर संतोष न हुआ। बहुत तेज़ी से क़दम बढ़ाते हुए मकान की तरफ़ चले और जाते ही आइने पर निगाह दौड़ायी। हजामत साफ़ नहीं है और साफ़ा कम्बख़्त खूब-सूरती से नहीं बाँधा। मगर तब भी मुझे कोई बदसूरत नहीं कह सकता। यह ज़रूर कोई आला दरजे की पढ़ी-लिखी, ऊंचे विचारोंवाली स्त्री है। वर्ना मामूली औरतों

की निगाह में तो दौलत और रूप के सिवा और कोई चीज़ जँचती ही नहीं। तो भी मेरा यह फूहड़पन किसी सुरुचि-सम्पन्न स्त्री को अच्छा नहीं मालूम हो सकता। मुझे अब इसका ज़्यादा ख़याल रखना होगा। आज मेरे भाग्य जागे हैं। बहुत मुद्दत के बाद मेरी क़द्र करनेवाला एक सच्चा जौहरी नज़र आया है। भारतीय स्त्रियां शर्म और हया की पुतली होती हैं। जब तक कि अपने दिल की हलचलों से मजबूर न हो जायँ वह ऐसा ख़त लिखने का साहस नहीं कर सकतीं।

इन्हीं ख़यालों में बाबू अक्षयकुमार ने रात काटी। पलक तक नहीं झपकी।

४

दूसरे दिन सुबह दस बजे तक बाबू अक्षयकुमार ने शहर की सारी फ़ैशनेबुल दुकानों की सैर की। दुकानदार हैरत में थे कि आज बाबू साहब यहां कैसे भूल पड़े। कभी भूलकर भी न झांकते थे, यह कायापलट क्योंकर हुई ? ग़रज़ आज उन्होंने बड़ी बेदर्दी से रुपया ख़र्च किया और जब घर चले तो फ़िटन पर बैठने की जगह न थी।

हेमवती ने उनके माथे पर से पसीना साफ़ करके पूछा—आज सबेरे से कहाँ ग़ायब हो गये ? अक्षयकुमार ने चेहरे को ज़रा गम्भीर बनाकर जवाब दिया—आज जिगर में कुछ दर्द था, डाक्टर चड्ढा के पास चला गया था।

हेमवती के सुन्दर हँसते हुए चेहरे पर मुस्कराहट-सी आ गयी, बोली—तुमने मुझसे बिलकुल ज़िक्र नहीं किया ? जिगर का दर्द भयानक मर्ज़ है।

अक्षयकुमार—डाक्टर साहब ने कहा है, कोई डरने की बात नहीं है।

हेमवती—इसकी दवा डा० किचलू के यहां बहुत अच्छी मिलती है। मालूम नहीं डाक्टर चड्ढा मर्ज़ की तह तक पहुंचे भी या नहीं।

अक्षयकुमार ने हेमवती की तरफ़ एक बार चुभती हुई निगाहों से देखा और खाना खाने लगे। इसके बाद अपने कमरे में जाकर लेटे। शाम को जब वह पार्क, घंटाघर, आनन्दबाग़ की सैर करते हुए फ़िटन पर जा रहे थे तो उनके होठों पर लाली और गालों पर जवानी की गुलाबी झलक मौजूद थी। तो भी प्रकृति के अन्याय पर, जिसने उन्हें रूप की सम्पदा से वंचित रक्खा था, उन्हें आज जितना गुस्सा आया, शायद और कभी न आया हो। आज वह पतली नाक के बदले अपना खूबसूरत गाउन और डिप्लोमा सब कुछ देने के लिए तैयार थे।

५

डाक्टर किचलू का खूबसूरत लताओं से सजा हुआ बँगला रात के वक़्त दिन का समाँ दिखा रहा था। फाटक के खम्भे, बरामदे की मेहराबें, सरों के पेड़ों की कतारें सब बिजली के बल्बों से जगमगा रही थीं। इन्सान की बिजली की कारीगरी अपना रंगारंग जादू दिखा रही थी। दरवाज़े पर शुभागमन का बन्दनवार, पेड़ों पर रंग-बिरंगे पक्षी, लताओं में खिले हुए फूल, यह सब इसी बिजली की रोशनी के जलवे हैं। इसी सुहानी रोशनी में शहर के रईस इठलाते फिर रहे हैं। अभी नाटक शुरू होने में कुछ देर है। मगर उत्कण्ठा लोगों को अधीर करने लगी है। डाक्टर किचलू दरवाज़े पर खड़े मेहमानों का स्वागत कर रहे हैं। आठ बजे होंगे कि बाबू अक्षय-कुमार बड़ी आन-बान के साथ अपनी फ़िटन से उतरे। डाक्टर साहब चौंक पड़े, यह आज गूलर में कैसे फूल लग गये। उन्होंने बड़े उत्साह से आगे बढ़कर बाबू साहब का स्वागत किया और सर से पांव तक उन्हें ग़ौर से देखा। उन्हें कभी ख़याल भी न हुआ था कि बाबू अक्षयकुमार ऐसे सुन्दर सजीले कपड़े पहने हुए गबरू नौजवान बन सकते हैं। कायाकल्प का स्पष्ट उदाहरण आंखों के सामने खड़ा था।

अक्षय बाबू को देखते ही इधर-उधर से लोग आकर उनके चारों ओर जमा हो गये। हर शख्स हैरत से एक-दूसरे का मुंह तकता था। होंठ रूमाल की आड़ ढूँढ़ने लगे, आंखें सरगोशियां करने लगीं। हर शख़्स ने ग़ैरमामूली तपाक से उनका मिज़ाज पूछा। शराबियों की मजलिस और पीने की मनाही करनेवाले हज़रते वाइज़ की तशरीफ़आवरी का नज़्ज़ारा पेश हो गया।

अक्षय बाबू बहुत झेंप रहे थे। उनकी आंखें ऊपर को न उठती थीं। इसलिए जब मिज़ाजपुर्सियों का तूफ़ान दूर हुआ तो उन्होंने अपनी हरे कपड़ोंवाली स्त्री की तलाश में चारों तरफ़ एक निगाह दौड़ायी और दिल में कहा—यह शोहदे हैं, मसखरे, मगर अभी-अभी उनकी आंखें खुली जाती हैं। मैं दिखा दूंगा कि मुझ पर भी सुन्दरियों की दृष्टि पड़ती है। ऐसी सुन्दरियां भी हैं जो सच्चे दिल से मेरे मिज़ाज की कैफ़ियत पूछती हैं और जिनसे अपना दर्दे दिल कहने में मैं भी रंगीन-बयान हो सकता हूँ। मगर उस हरे कपड़ोंवाली प्रेमिका का कहीं पता न था। निगाहें चारों तरफ से घूम-घामकर नाकाम वापस आयीं।

आध घंटे के बाद नाटक शुरू हुआ। बाबू साहब निराश भाव से पैर उठाते हुए थियेटर हाल में गये और कुर्सी पर बैठ गये। बैठ क्या गये, गिर पड़े। पर्दा उठा। शकुन्तला अपनी दोनों सखियों के साथ सिर पर घड़ा रक्खे पौदों को सींचती हुई दिखाई

दी। दर्शक बाग़ बाग़ हो गये। तारीफ़ों के नारे बुलन्द हुए। शकुन्तला का जो काल्पनिक चित्र खिंच सकता है, वह आंखों के सामने खड़ा था—वही प्रेमिका का खुलापन, वही आकर्षक गम्भीरता, वही मतवाली चाल, वही शर्मीली आँखें। अक्षय बाबू पहचान गये, यह सुन्दर हँसमुख हेमवती थी।

बाबू अक्षयकुमार का चेहरा गुस्से से लाल हो गया। इसने मुझसे वादा किया था कि मैं नाटक में न जाऊंगी। मैंने घंटों उसे समझाया। अपनी असमर्थता लिखने पर तैयार थी। मगर सिर्फ़ दूसरों को रिझाने और लुभाने के लिए, सिर्फ़ दूसरों के दिलों में अपने रूप और अपनी अदाओं का जादू फूंकने के लिए, सिर्फ़ दूसरी औरतों को जलाने के लिए उसने मेरी नसीहतों का और अपने वादे का, यहाँ तक कि मेरी अप्रसन्नता का भी ज़रा भी ख़याल न किया!

हेमवती ने भी उड़ती हुई निगाहों से उनकी तरफ़ देखा। उनके बाँकपन पर उसे ज़रा भी ताज्जुब न हुआ। कम-से-कम वह मुस्करायी नहीं।

सारी महफ़िल बेसुध हो रही थी। मगर अक्षय बाबू का जी वहां न लगता था। वह बार-बार उठके बाहर जाते, इधर-उधर बैचैनी से आंखें फाड़-फाड़ देखते और हर बार झुंझलाकर वापस आते। यहां तक कि बारह बज गये और अब मायूस होकर उन्होंने अपने आप को कोसना शुरू किया—मैं भी कैसा अहमक़ हूं। एक शोख़ औरत के चकमे में आ गया। ज़रूर इन्हीं बदमाशों में से किसी की शरारत होगी। यह लोग मुझे देख-देखकर कैसा हँसते थे! इन्हीं में से किसी मसख़रे ने यह शिगूफ़ा छोड़ा है। अफ़सोस! सैकड़ों रुपये पर पानी फिर गया, लज्जित हुआ सो अलग। कई मुक़दमे हाथ से गये। हेमवती की निगाहों में ज़लील हो गया और यह सब सिर्फ इन डाहियों की खातिर! मुझसे बड़ा अहमक़ और कौन होगा!

इस तरह अपने ऊपर लानत भेजते, गुस्से में भरे हुए वे फिर महफ़िल की तरफ़ चले कि एकाएक एक सरो के पेड़ के नीचे वह हरित-वसना सुन्दरी उन्हें इशारे से अपनी तरफ़ बुलाती हुई नज़र आयी। खुशी के मारे उनकी बाँछें खिल गयीं, दिलोदिमाग़ पर एक नशा-सा छा गया। मस्ती से कदम उठाते, झूमते और ऐंडते उस स्त्री के पास आये और आशिक़ाना जोश के साथ बोले—ऐ रूप की रानी, मैं तुम्हारी इस कृपा के लिए हृदय से तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। तुम्हें देखने के शौक़ में इस अधमरे प्रेमी की आँखें पथरा गयीं और अगर तुम्हें कुछ देर तक और यह आँखें देख न पातीं तो तुम्हें अपने रूप के मारे हुए की लाश पर हसरत के आंसू बहाने पड़ते। कल शाम ही से मेरे दिल की जो हालत हो रही है, उसका ज़िक्र बयान

की ताक़त से बाहर है। मेरी जान, मैं कल कचहरी न गया, और कई मुक़दमे हाथ से खोये। मगर तुम्हारे दर्शन से आत्मा को जो आनन्द मिल रहा है, उस पर मैं अपनी जान भी न्योछावर कर सकता हूँ। मुझे अब धैर्य नहीं है। प्रेम की आग ने संयम और धैर्य को जलाकर खाक कर दिया है। तुम्हें अपने हुस्न के दीवाने से यह पर्दा करना शोभा नहीं देता। शमा और परवाना में पर्दा कैसा। ऐ रूप की खान और ऐ सौन्दर्य की आत्मा! तेरी मुहब्बत भरी बातों ने मेरे दिल में आरजुओं का तूफ़ान पैदा कर दिया है। अब यह दिल तुम्हारे ऊपर न्योछावर है और यह जान तुम्हारे चरणों पर अर्पित है।

यह कहते हुए बाबू अक्षयकुमार ने आशिक़ों जैसी ढिठाई से आगे बढ़कर उस हरित-वसना सुन्दरी का घूंघट उठा दिया और हेमवती को मुस्कराते देखकर बेअख्तियार मुँह से निकला, अरे! और फिर कुछ मुँह से न निकला। ऐसा मालूम हुआ कि जैसे आंखों के सामने से पर्दा हट गया। बोले—यह सब तुम्हारी शरारत थी?

सुन्दर, हँसमुख हेमवती मुस्करायी और कुछ जवाब देना चाहती थी, मगर बाबू अक्षयकुमार ने उस वक़्त ज़्यादा सवाल-जवाब का मौक़ा न देखा। बहुत लज्जित होते हुए बोले—हेमवती, अब मुँह से कुछ मत कहो, तुम जीतीं और मैं हार गया। यह हार कभी न भूलेगी।

—ज़माना, मई-जून १९१२

राजहठ

दशहरे के दिन थे, अचलगढ़ में उत्सव की तैयारियां हो रही थीं। दरबारे आम में राज्य के मंत्रियों के स्थान पर अप्सराएं शोभायमान थीं। धर्मशालों और सरायों में घोड़े हिनहिना रहे थे। रियासत के नौकर क्या छोटे, क्या बड़े, रसद पहुंचाने के बहाने से दरबारे आम में जमे रहते थे। किसी तरह हटाये न हटते थे। दरबारे ख़ास में पंडित और पुजारी और महन्त लोग आसन जमाये पाठ करते हुए नज़र आते थे। वहाँ किसी राज्य के कर्मचारी की शकल न दिखायी देती थी। घी और पूजा की सामग्री न होने के कारण सुबह की पूजा शाम को होती थी। रसद न मिलने की वजह से पंडित लोग हवन के घी और मेवों को भोग के अग्निकुण्ड में डालते थे। दरबारे आम में अंग्रेज़ी प्रबन्ध था और दरबारे ख़ास में राज्य का।

राजा देवमल बड़े हौसलेमन्द रईस थे। इस वार्षिक आनन्दोत्सव में वह जी खोलकर रुपया ख़र्च करते। जिन दिनों अकाल पड़ा, राज्य के आधे आदमी भूखों तड़पकर मर गये। बुख़ार, हैज़ा और प्लेग में हज़ारों आदमी हर साल मृत्यु का ग्रास बन जाते थे। राज्य निर्धन था इसलिए न वहां पाठशालाएं थीं, न चिकित्सालय, न सड़कें। बरसात में रनिवास दलदल हो जाता और अँधेरी रातों में सरेशाम से घरों के दरवाज़े बन्द हो जाते। अँधेरी सड़कों पर चलना जान जोखिम था। यह सब और इनसे भी ज्यादा कष्टप्रद बातें स्वीकार थीं मगर यह कठिन था, असम्भव था कि दुर्गा देवी का वार्षिक आनन्दोत्सव न हो। इससे राज्य की शान में बट्टा लगने का भय था। राज्य मिट जाय, महलों की ईंटें बिक जायँ मगर यह उत्सव ज़रूर हो। आसपास के राजे-रईस आमंत्रित होते, उनके शामियानों से मीलों तक संगमरमर का एक शहर बस जाता, हफ्तों तक खूब चहल-पहल धूम-धाम रहती। इसी की बदौलत अचलगढ़ का नाम अटल हो गया था।

२

मगर कुंवर इन्दरमल को राजा साहब की इन मस्ताना कार्रवाइयों में बिलकुल आस्था न थी। वह प्रकृति से एक बहुत गम्भीर और सीधा-सादा नवयुवक था।

यों ग़ज़ब का दिलेर, मौत के सामने भी ताल ठोंककर उतर पड़े मगर उसकी बहादुरी ख़ून की प्यास से पाक थी। उसके वार बिना पर की चिड़ियों या बेज़बान जानवरों पर नहीं होते थे। उसकी तलवार कमज़ोरों पर नहीं उठती थी। ग़रीबों की हिमायत, अनाथों की सिफ़ारिशें, निर्धनों की सहायता और भाग्य के मारे हुओं के घाव की मरहम-पट्टी इन कामों से उसकी आत्मा को सुख मिलता था। दो साल हुए वह इन्दौर कालेज से ऊँची शिक्षा पाकर लौटा था और तब से उसका यह जोश असाधारण रूप से बढ़ा हुआ था, इतना कि वह साधारण समझदारी की सीमाओं को लांघ गया था। चौबीस साल का लम्बा-तड़ंगा, हैकल जवान, धन-ऐश्वर्य के बीच पला हुआ, जिसे चिन्ताओं की कभी हवा तक न लगी, अगर रुलाया तो हँसी ने, वह ऐसा नेक हो, उसके मर्दाना चेहरे पर चिन्तन का पीलापन और झुर्रियाँ नज़र आयें यह एक असाधारण बात थी। उत्सव का शुभ दिन पास आ पहुँचा था, सिर्फ़ चार दिन बाक़ी थे। उत्सव का प्रबन्ध पूरा हो चुका था, सिर्फ़ अगर कसर थी तो कहीं-कहीं दोबारा नज़र डाल लेने की। तीसरे पहर का वक्त था, राजा साहब रनिवास में बैठे हुए कुछ चुनी हुई अप्सराओं का गाना सुन रहे थे। उनकी सुरीली तानों से जो खुशी हो रही थी, उससे कहीं ज्यादा खुशी यह सोचकर हो रही थी कि यह तराने पोलिटिकल एजेण्ट को भड़का देंगे। वह आंखें बन्द करके सुनेगा और मारे खुशी के उछल-उछल पड़ेगा।

इस विचार से जो प्रसन्नता होती थी वह तानसेन की तानों में भी नहीं हो सकती थी। आह, उसकी ज़बान से अनजाने ही वाह वाह निकल पड़ेगी। अजब नहीं कि उठकर मुझसे हाथ मिलाये और मेरे चुनाव की तारीफ़ करे। इतने में कुंवर इन्दरमल बहुत सादा कपड़े पहने सेवा में उपस्थित हुए और सर झुकाकर अभिवादन किया। राजा साहब की आंखें शर्म से झुक गयीं, मगर कुंवर साहब का इस समय आना अच्छा नहीं लगा। गानेवालियों को वहां से उठ जाने का इशारा किया।

कुंवर इन्दरमल बोले——महाराज, क्या मेरी बिनती पर बिलकुल ध्यान न दिया जायगा?

राजा साहब गद्दी के उत्तराधिकारी राजकुमार की इज्ज़त करते थे और मुहब्बत तो कुदरती बात थी, तो भी उन्हें यह बेमौक़ा हठ पसन्द न आता था। वह इतने संकीर्ण बुद्धि न थे कि कुंवर साहब की नेक सलाहों की क़द्र न करें। इससे निश्चय ही राज्य पर बोझ बढ़ता जाता था और रिआया पर बहुत ज़ुल्म करना पड़ता था। मैं अंधा नहीं हूं कि ऐसी मोटी-मोटी बातें न समझ सकूँ। मगर अच्छी बातें

भी मौका-महल देखकर की जाती हैं। आख़िरकार नाम और यश, इज्ज़त और आबरू भी तो कोई चीज़ है ? रियासत में संगमरमर की सड़कें बनवा दूं, गली-गली मदरसे खोल दूँ, घर-घर कुएँ खोदवा दूँ, दवाओं की नहरें जारी कर दूँ मगर दशहरे की धूम-धाम से रियासत की जो इज्ज़त और नाम है वह इन बातों से कभी हासिल नहीं हो सकता। यह हो सकता है कि धीरे-धीरे यह खर्च घटा दूँ मगर एकबारगी ऐसा करना न तो उचित है और न सम्भव। जवाब दिया—आख़िर तुम क्या चाहते हो ? क्या दशहरा बिलकुल बन्द कर दूँ ?

इन्दरमल ने राजा साहब के तेवर बदले हुए देखे, तो बड़े आदरपूर्वक बोले—मैंने कभी दशहरे के उत्सव के ख़िलाफ़ मुँह से एक शब्द नहीं निकाला, यह हमारा जातीय पर्व है, यह विजय का शुभ दिन है, आज के दिन खुशियाँ मनाना हमारा जातीय कर्तव्य है। मुझे सिर्फ़ इन अप्सराओं से आपत्ति है, नाच-गाने से इस दिन की गम्भीरता और महत्ता डूब जाती है।

राजा साहब ने व्यंग्य के स्वर में कहा—तुम्हारा मतलब है कि रो-रोकर जशन मनाएं, मातम करें !

इन्दरमल ने तीखे होकर कहा—यह न्याय के सिद्धान्तों के ख़िलाफ़ बात है कि हम तो उत्सव मनाएं और हज़ारों आदमी उसकी बदौलत मातम करें। बीस हज़ार मज़दूर एक महीने से मुफ्त में काम कर रहे हैं, क्या उनके घरों में खुशियां मनाई जा रही हैं ? जो पसीना बहायें वह रोटियों को तरसें और जिन्होंने हराम-कारी को अपना पेशा बना लिया है, वह हमारी महफ़िलों की शोभा बनें। मैं अपनी आंखों से यह अन्याय और अत्याचार नहीं देख सकता। मैं इस पाप-कर्म में योग नहीं दे सकता। इससे तो यही अच्छा है कि मुंह छिपाकर कहीं निकल जाऊं। ऐसे राज में रहना, मैं अपने उसूलों के ख़िलाफ़ और शर्मनाक समझता हूँ।

इन्दरमल ने तैश में यह धृष्टतापूर्ण बातें कीं। मगर पिता के प्रेम को जगाने की कोशिश ने राजहठ के सोये हुए काले देव को जगा दिया। राजा साहब गुस्से से भरी हुई आंखों से देखकर बोले—हां मैं भी यही ठीक समझता हूँ। तुम अपने उसूलों के पक्के हो तो मैं भी अपनी धुन का पूरा हूँ।

इन्दरमल ने मुस्कराकर राजा साहब को सलाम किया। उसका मुसकरान घाव पर नमक हो गया। राजकुमार की आंखों में कुछ बूंदें शायद मरहम का काम देतीं।

३

राजकुमार ने इधर पीठ फेरी, उधर राजा साहब ने फिर अप्सराओं को बुलाया और फिर चित्त को प्रफुल्लित करनेवाले गानों की आवाज़ें गूंजने लगीं। उनके संगीत-प्रेम की नदी कभी इतने ज़ोर-शोर से न उमड़ी थी, वाह वाह की बाढ़ आयी हुई थी, तालियों का शोर मचा हुआ था और सुर की किश्ती उस पुरशोर दरिया में हिंडोले की तरह झूल रही थी ।

यहां तो नाच-गाने का हंगामा गरम था और रनिवास में रोने-पीटने का। रानी भानकुंवर दुर्गा की पूजा करके लौट रही थीं कि एक लौंडी ने आकर यह मर्मान्तिक समाचार दिया। रानी ने आरती का थाल ज़मीन पर पटक दिया। वह एक हफ्ते से दुर्गा का व्रत रखती थीं। मृगछाले पर सोती और दूध का आहार करती थीं। पाँव थर्राये, ज़मीन पर गिर पड़ीं। मुरझाया हुआ फूल हवा के झोंके को न सह सका। चेरियां सम्हल गयीं और रानी के चारों तरफ़ ग़ोल बांधकर छाती और सिर पीटने लगीं। कोहराम मच गया। आंखों में आंसू न सही, आंचलों से उनका पर्दा छिपा हुआ था, मगर गले में आवाज़ तो थी। इस वक़्त उसी की ज़रूरत थी। उसी की बुलन्दी और गरज में इस समय भाग्य की झलक छिपी हुई थी ।

लौंडियां तो इस प्रकार स्वामिभक्ति का परिचय देने में व्यस्त थीं और भानकुंवर अपने खयालों में डूबी हुई थी। कुंवर से ऐसी बेअदबी क्योंकर हुई, यह ख़याल में नहीं आता। उसने कभी मेरी बातों का जवाब नहीं दिया, ज़रूर राजा की ज़्यादती है।

उसने इस नाच-रंग का विरोध किया होगा, किया ही चाहिए। उन्हें क्या, जो कुछ बनेगी-बिगड़ेगी उसके ज़िम्मे लगेगी। यह गुस्सेवर हैं ही। झल्ला गये होंगे। उसे सख्त-सुस्त कहा होगा। बात की उसे कहां बर्दाश्त, यही तो उसमें बड़ा ऐब है, रूठकर कहीं चला गया होगा। मगर गया कहां ? दुर्गा ! तुम मेरे लाल की रक्षा करना, मैं उसे तुम्हारे सुपुर्द करती हूँ। अफ़सोस, यह ग़ज़ब हो गया। मेरा राज्य सूना हो गया और इन्हें अपने राग-रंग की सूझी हुई है। यह सोचते-सोचते रानी के शरीर में कँपकँपी आ गयी, उठकर गुस्से से कांपती हुई वह बेधड़क नाच-गाने की महफ़िल की तरफ़ चली। क़रीब पहुंची तो सुरीली तानें सुनायी दीं। एक बरछी-सी जिगर में चुभ गयी। आग पर तेल पड़ गया।

रानी को देखते ही गानेवालियों में एक हलचल-सी मच गयी। कोई किसी कोने जा छिपी, कोई गिरती-पड़ती दरवाज़े की तरफ़ भागी। राजा साहब ने रानी

की तरफ़ घूरकर देखा। भयानक गुस्से का शोला सामने दहक रहा था। उनकी त्योरियों पर भी बल पड़ गये। खून बरसाती हुई आंखें आपस में मिलीं। मोम ने लोहे का सामना किया।

रानी थर्रायी हुई आवाज़ में बोली—मेरा इन्दरमल कहां गया ? यह कहते-कहते उसकी आवाज़ रुक गयी और होंठ कांपकर रह गये।

राजा ने बेरुख़ी से जवाब दिया—मैं नहीं जानता।

रानी सिसकियां भरकर बोली—आप नहीं जानते कि वह कल तीसरे पहर से ग़ायब है और उसका कहीं पता नहीं ? आपकी इन ज़हरीली नागिनों ने यह विष बोया है। अगर उसका बाल भी बांका हुआ तो उसके ज़िम्मेदार आप होंगे।

राजा ने तुर्शी से कहा—वह बड़ा घमण्डी और बिनकहा हो गया है, मैं उसका मुंह नहीं देखना चाहता।

रानी कुचले हुए साँप की तरह ऐंठकर बोली—राजा, तुम्हारी ज़बान से यह बातें निकल रही हैं ! हाय मेरा लाल, मेरी आंखों की पुतली, मेरे जिगर का टुकड़ा, मेरा सब कुछ यों अलोप हो जाय और इस बेरहम का दिल ज़रा भी न पसीजे ! मेरे घर में आग लग जाय और यहां इन्द्र का अखाड़ा सजा रहे ! मैं खून के आंसू रोऊं और यहाँ खुशी के राग अलापे जायं !

राजा के नथने फड़कने लगे, कड़ककर बोले—रानी भान कुंवर, अब ज़बान बन्द करो। मैं इससे ज़्यादा नहीं सुन सकता। बेहतर होगा कि तुम महल में चली जाओ।

रानी ने बिफरी हुई शेरनी की तरह गर्दन उठाकर कहा—हां, मैं खुद जाती हूँ। मैं हुज़ूर के ऐश में विघ्न नहीं डालना चाहती, मगर आपको इसका भुगतान करना पड़ेगा। अचलगढ़ में या तो भान कुंवर रहेगी या आपकी ज़हरीली, विषैली परियां !

राजा पर इस धमकी का कोई असर न हुआ। गैंडे की ढाल पर कच्चे लोहे का असर क्या हो सकता है ! जी में आया कि साफ़-साफ़ कह दें, भान कुंवर चाहे रहे या न रहे यह परियां ज़रूर रहेंगी, लेकिन अपने को रोककर बोले—तुमको अख़्तियार है, जो ठीक समझो वह करो।

रानी कुछ क़दम चलकर फिर लौटी और बोली—त्रिया-हठ रहेगी या राजहठ ?

राजा ने निष्कम्प स्वर में उत्तर दिया—इस वक़्त तो राजहठ ही रहेगी।

४

रानी भान कुंवर के चले जाने के बाद राजा देवमल फिर अपने कमरे में आ बैठे, मगर चिन्तित और मन बिलकुल बुझा हुआ, मुर्दे के समान। रानी की सख़्त बातों से दिल के सबसे नाजुक हिस्सों में टीस और जलन हो रही थी। पहले तो वह अपने ऊपर झुंझलाये कि मैंने उसकी बातों को क्यों इतने धीरज से सुना मगर जब ज़रा गुस्से की आग धीमी हुई और दिमाग़ का सन्तुलन फिर असली हालत पर आया तो उन घटनाओं पर अपने मन में विचार करने लगे। न्यायप्रिय स्वभाव के लोगों के लिए क्रोध एक चेतावनी होता है, जिससे उन्हें अपने कथन और आचार की अच्छाई और बुराई को जांचने और आगे के लिए सावधान हो जाने का मौक़ा मिलता है। इस कड़वी दवा से अक्सर अनुभव को शक्ति, दृष्टि को व्यापकता और चिन्तन को सजगता प्राप्त होती है। राजा सोचने लगे—बेशक रियासत के अन्दरूनी हालात के लिहाज़ से यह सब नाच-रंग बेमौक़ा है। बेशक वह रिआया के साथ अपना फ़र्ज़ नहीं अदा कर रहे थे। वह इन ख़र्चों और इस नैतिक धब्बे को मिटाने के लिए तैयार थे, मगर इस तरह कि नुक्ताचीनी करनेवाली आंखें उसमें कुछ और मतलब न निकाल सकें। रियासत की शान कायम रहे। इतना इन्दरमल से उन्होंने साफ़ कह दिया था कि अगर इतने पर भी वह अपनी ज़िद से बाज़ नहीं आता तो यह उसकी ढिठाई है। हर एक मुमकिन पहलू से ग़ौर करने पर राजा साहब के इस फ़ैसले में जरा भी फेर-फार न हुआ। कुंवर का यों ग़ायब हो जाना ज़रूर चिन्ता की बात है और रियासत के लिए उसके ख़तरनाक नतीजे हो सकते हैं मगर वह अपने आप को इन नतीजों की जिम्मेदारियों से बिलकुल बरी समझते थे। वह यह मानते थे कि इन्दरमल के चले जाने के बाद उनका यह महफ़िलें जमाना बेमौक़ा और दूसरों को भड़कानेवाला था मगर इसका कुंवर के आख़िरी फैसले पर क्या असर पड़ सकता है। कुंवर ऐसा नादान, नातजुर्बेकार और बुज़दिल तो नहीं है कि आत्महत्या कर ले, हां वह दो-चार दिन इधर-उधर आवारा घूमेगा और अगर ईश्वर ने कुछ भी विवेक उसे दिया तो वह दुखी और लज्जित होकर ज़रूर चला आयेगा। मैं खुद उसे ढूँढ़ निकालूँगा। वह ऐसा कठोर नहीं है कि अपने बूढ़े बाप की मजबूरी पर कुछ भी ध्यान न दे।

इन्दरमल से फ़ारिग़ होकर राजा साहब का ध्यान रानी की तरफ़ पहुंचा और जब उसकी आग का तरह दहकती हुई बातें याद आयीं तो गुस्से से बदन में पसीना

आ गया और वह बेताब होकर उठकर टहलने लगे। बेशक, मैं उसके साथ बेरहमी से पेश आया। मां को अपनी औलाद ईमान से भी ज़्यादा प्यारी होती है और उसका रुष्ट होना उचित था मगर इन धमकियों के क्या माने? इसके सिवा कि वह रूठकर मैके चली जाय और मुझे बदनाम करे, वह मेरा और क्या कर सकती है? अक़्लमन्दों ने कहा है कि औरत की ज़ात बेवफ़ा होती है, वह मीठे पानी की चंचल, चुलबुली-चमकीली धारा है, जिसकी गोद में चहकती और चिमटती है उसे बालू का ढेर बनाकर छोड़ती है। यही भान कुंवर है जिसकी नाज़बरदारियां मुहब्बत का दर्जा रखती हैं। आह, क्या वह पिछली बातें भूल जाऊं! क्या उन्हें क़िस्सा समझकर दिल को तसकीन दूं।

इसी बीच में एक लौंडी ने आकर कहा कि महारानी ने हाथी मंगवाया है और न जाने कहां जा रही हैं। कुछ बताती नहीं। राजा ने सुना और मुँह फेर लिया।

५

शहर इन्दौर से तीन मील उत्तर की तरफ घने पेड़ों के बीच में एक तालाब है जिसके चांदी-जैसे चेहरे से काई का हरा मखमली घूंघट कभी नहीं उठता। कहते हैं किसी ज़माने में उसके चारों तरफ़ पक्के घाट बने हुए थे। मगर इस वक़्त तो सिर्फ़ यह जनश्रुति बाक़ी थी जो कि इस दुनिया में अक्सर ईंट-पत्थर की यादगारों से ज़्यादा टिकाऊ हुआ करती है।

तालाब के पूरब में एक पुराना मन्दिर था, उसमें शिव जी राख की धूनी रमाये खामोश बैठे हुए थे। अबाबीलें और जंगली कबूतर उन्हें अपनी मीठी बोलियां सुनाया करते। मगर उस वीराने में भी उनके भक्तों की कमी न थी। मन्दिर के अन्दर भरा हुआ पानी और बाहर बदबूदार कीचड़, इस भक्ति के प्रमाण थे। वह मुसाफ़िर जो इस तालाब में नहाता उसके एक लोटे पानी से अपने ईश्वर की प्यास बुझाता था। शिव जी खाते कुछ न थे मगर पानी बहुत पीते थे। उनकी न बुझनेवाली प्यास कभी न बुझती थी।

तीसरे पहर का वक़्त था। क्वार की धूप तेज़ थी। कुंवर इन्दरमल अपने हवा की चालवाले घोड़े पर सवार इन्दौर की तरफ़ से आये और एक पेड़ की छाया में ठहर गये। वह बहुत उदास थे। उन्होंने घोड़े को पेड़ से बांध दिया और खुद ज़ीन के ऊपर डालनेवाला कपड़ा बिछाकर लेट रहे। उन्हें अचलगढ़ से निकले आज तीसरा दिन है मगर चिन्ताओं ने पलक तक नहीं झपकने दी। रानी भानकुंवर उसके दिल

से एक पल के लिए भी दूर न होती थी। इस वक़्त ठण्डी हवा लगी तो नींद आ गयी। सपने में देखने लगा कि जैसे रानी आयी हैं और उसे गले लगाकर रो रही हैं। चौंककर आंखें खोली तो रानी सचमुच सामने खड़ी उसकी तरफ आंसू भरी आंखों से ताक रही थीं। वह उठ बैठा और मां के पैरों को चूमा। मगर रानी ने ममता से उठाकर गले लगा लेने के बजाय अपने पांव हटा लिये और मुंह से कुछ न बोली।

इन्दरमल ने कहा—मां जी, आप मुझसे नाराज़ हैं?

रानी ने रुखाई से जवाब दिया—मैं तुम्हारी कौन होती हूँ!

कुंवर—आपको यक़ीन आये न आये, मैं जबसे अचलगढ़ से चला हूं एक पल के लिए भी आपका ख़याल दिल से दूर नहीं हुआ। अभी आपही को सपने में देख रहा था।

इन शब्दों ने रानी का गुस्सा ठंडा किया। कुँवर की ओर से निश्चिन्त होकर अब वह राजा का ध्यान कर रही थी। उसने कुँवर से पूछा—तुम तीन दिन कहां रहे?

कुंवर ने जवाब दिया—क्या बताऊं, कहां रहा। इन्दौर चला गया था। वहां पोलिटिकल एजेण्ट से सारी कथा कह सुनायी।

रानी ने यह सुना तो माथा पीटकर बोली—तुमने ग़ज़ब कर दिया। आग लगा दी।

इन्दरमल—क्या करूं, खुद पछताता हूं, उस वक़्त यही धुन सवार थी।

रानी—मुझे जिन बातों का डर था वह सब हो गयीं। अब कौन मुंह लेकर अचलगढ़ जायंगे।

इन्दरमल—मेरा जी चाहता है कि अपना गला घोंट लूं।

रानी—गुस्सा बुरी बला है। तुम्हारे आने के बाद मैंने रार मचाई और कुछ यही इरादा करके इन्दौर जा रही थी, रास्ते में तुम मिल गये।

यह बातें हो ही रही थीं कि सामने से बहलियों और साँड़नियों की एक लम्बी कतार आती हुई दिखायी दी। साँड़नियों पर मर्द सवार थे। सुरमा-लगी आंखोंवाले, पेचदार जुल्फ़ोंवाले। बहलियों में हुस्न के जलवे थे। शोख़ निगाहें, बेधड़क चितवनें, यह उन नाच-रंग वालों का क़ाफ़िला था जो अचलगढ़ से निराश और खिन्न चला आता था। उन्होंने रानी की सवारी देखी और कुंवर का घोड़ा पहचान लिया। घमण्ड से सलाम किया मगर बोले नहीं। जब वह दूर निकल गये तो कुंवर ने ज़ोर से क़हक़हा मारा। यह विजय का नारा था।

रानी ने पूछा—यह क्या कायापलट हो गयी। यह सब अचलगढ़ से लौटे आते हैं और ऐन दशहरे के दिन ?

इन्दरमल बड़े गर्व से बोले—यह पोलिटिकल एजेण्ट के इनकारी तार के करिश्मे हैं, मेरी चाल बिलकुल ठीक पड़ी।

रानी का सन्देह दूर हो गया। ज़रूर यही बात है। यह इनकारी तार की करामात है। वह बड़ी देर तक बेसुध-सी ज़मीन की तरफ़ ताकती रही और उसके दिल में बार-बार यह सवाल पैदा होता था, क्या इसी का नाम राजहठ है ?

आख़िर इन्दरमल ने ख़ामोशी तोड़ी—क्या आज चलने का इरादा है कि कल ?

रानी—कल शाम तक हमको अचलगढ़ पहुंचना है, महाराज घबराते होंगे।

—ज़माना, सितम्बर १९१२

त्रिया-चरित्र

सेठ लगनदास जी के जीवन की बगिया फलहीन थी। कोई ऐसा मानवीय, आध्यात्मिक या चिकित्सात्मक प्रयत्न न था जो उन्होंने न किया हो। यों शादी में एक-पत्नीव्रत के क़ायल थे मगर ज़रूरत और आग्रह से विवश होकर एक-दो नहीं पाँच शादियाँ कीं, यहाँ तक कि उम्र के चालीस साल गुज़र गये और अँधेरे घर में उजाला न हुआ। बेचारे बहुत रंजीदा रहते। यह धन-संपत्ति, यह ठाट-बाट, यह वैभव और ऐश्वर्य क्या होंगे। मेरे बाद इनका क्या हाल होगा, कौन इनको भोगेगा। यह ख़याल बहुत अफ़सोसनाक था। आख़िर यह सलाह हुई कि किसी लड़के को गोद लेना चाहिए मगर यह मसला पारिवारिक झगड़ों के कारण कई सालों तक स्थगित रहा। जब सेठ जी ने देखा कि बीवियों में अब तक बदस्तूर कशमकश हो रही है तो उन्होंने नैतिक साहस से काम लिया और एक होनहार अनाथ लड़के को गोद ले लिया। उसका नाम रखा गया मगनदास। उसकी उम्र पाँच-छः साल से ज़्यादा न थी। बला का ज़हीन और तमीज़दार। मगर औरतें सब कुछ कर सकती हैं, दूसरे के बच्चे को अपना नहीं समझ सकतीं। यहां तो पांच औरतों का साझा था। अगर एक उसे प्यार करती तो बाक़ी चार औरतों का फ़र्ज़ था कि उससे नफ़रत करें। हाँ, सेठ जी उसके साथ बिलकुल अपने लड़के की-सी मुहब्बत करते थे। पढ़ाने को मास्टर रक्खे, सवारी के लिए घोड़े। रईसी ख़याल के आदमी थे। राग-रंग का सामान भी मुहैया था। गाना सीखने का लड़के ने शौक़ किया तो उसका भी इन्तज़ाम हो गया। ग़रज़ जब मगनदास जवानी पर पहुँचा तो रईसाना दिलचस्पियों में उसे कमाल हासिल था। उसका गाना सुनकर उस्ताद लोग कानों पर हाथ रखते। शहसवार ऐसा कि दौड़ते हुए घोड़े पर सवार हो जाता। डीलडौल, शक्ल सूरत में उसका-सा अलबेला जवान दिल्ली में कम होगा। शादी का मसला पेश हुआ। नागपुर के करोड़पति सेठ मक्खनलाल बहुत लहराये हुए थे। उनकी लड़की से शादी हो गयी। धूमधाम का ज़िक्र किया जाय तो क़िस्सा वियोग की रात

से भी लम्बा हो जाय। मक्खनलाल का उसी शादी में दीवाला निकल गया। इस वक़्त मगनदास से ज़्यादा ईर्ष्या के योग्य आदमी और कौन होगा? उसकी ज़िन्दगी की बहार उमंगों पर थी और मुरादों के फूल अपनी शबनमी ताज़गी में खिल-खिलकर हुस्न और ताज़गी का समाँ दिखा रहे थे। मगर तक़दीर की देवी कुछ और ही सामान कर रही थी। वह सैर-सपाटे के इरादे से जापान गया हुआ था कि दिल्ली से खबर आयी कि ईश्वर ने तुम्हें एक भाई दिया है। मुझे इतनी खुशी है कि ज़्यादा अर्से तक ज़िन्दा न रह सकूँ। तुम बहुत जल्द लौट आओ।

मगनदास के हाथ से तार का काग़ज़ छूट गया और सर में ऐसा चक्कर आया कि जैसे किसी ऊंचाई से गिर पड़ा है।

२

मगनदास का किताबी ज्ञान बहुत कम था। मगर स्वभाव की सज्जनता से वह खाली न था। हाथों की उदारता ने, जो समृद्धि का वरदान है, हृदय को भी उदार बना दिया था। उसे घटनाओं की इस कायापलट से दुख तो ज़रूर हुआ, आखिर इन्सान ही था, मगर उसने धीरज से काम लिया और एक आशा और भय की मिली-जुली हालत में देश को रवाना हुआ।

रात का वक़्त था। जब अपने दरवाज़े पर पहुँचा तो नाच-गाने की महफिल सजी देखी। उसके क़दम आगे न बढ़े, लौट पड़ा और एक दुकान के चबूतरे पर बैठ-कर सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए। इतना तो उसे यक़ीन था कि सेठ जी उसके साथ उसी भलमन्सी और मुहब्बत से पेश आयेंगे बल्कि शायद अब और भी कृपा करने लगें। सेठानियाँ भी अब उसके साथ ग़ैरों का-सा बर्ताव न करेंगी। मुम-किन है मझली बहू जो इस बच्चे की खुशनसीब माँ थीं, उससे दूर-दूर रहें मगर बाक़ी चारों सेठानियों की तरफ़ से सेवा-सत्कार में कोई शक नहीं था। उनकी डाह से वह फ़ायदा उठा सकता था। ताहम उसके स्वाभिमान ने गवारा न किया कि जिस घर में मालिक की हैसियत से रहता था उसी घर में अब एक आश्रित की हैसियत से ज़िन्दगी बसर करे। उसने फ़ैसला कर लिया कि अब यहाँ रहना न मुनासिब है, न मसलहत। मगर जाऊँ कहाँ? न कोई ऐसा फ़न सीखा, न कोई ऐसा इल्म हासिल किया जिससे रोज़ी कमाने की सूरत पैदा होती। रईसाना दिलचस्पियाँ उसी वक़्त तक क़द्र की निगाह से देखी जाती हैं जब तक कि वे रईसों के आभूषण रहें। जीविका

बनकर वे सम्मान के पद से गिर जाती हैं। अपनी रोजी हासिल करना तो उसके लिए कोई ऐसा मुश्किल काम न था। किसी सेठ-साहूकार के यहां मुनीम बन सकता था, किसी कारखाने की तरफ से एजेण्ट हो सकता था, मगर उसके कन्धे पर एक भारी जुआ रक्खा हुआ था, उसे क्या करे। एक बड़े सेठ की लड़की जिसने लाड़-प्यार में परवरिश पायी, उससे यह कंगाली की तकलीफें क्योंकर झेली जायंगी। क्या मक्खनलाल की लाड़ली बेटी एक ऐसे आदमी के साथ रहना पसन्द करेगी जिसे रात की रोटी का भी ठिकाना नहीं! मगर इस फिक्र में अपनी जान क्यों खपाऊँ। मैंने अपनी मर्ज़ी से शादी नहीं की। मैं बराबर इनकार करता रहा। सेठ जी ने ज़बर्दस्ती मेरे पैरों में बेड़ी डाली है। अब वही इसके ज़िम्मेदार हैं। मुझसे कोई वास्ता नहीं। लेकिन जब उसने दुबारा ठण्डे दिल से इस मसले पर ग़ौर किया तो बचाव की कोई सूरत नज़र न आयी। आखिरकार उसने यह फ़ैसला किया कि पहले नागपुर चलूँ, ज़रा उन महारानी के तौर-तरीके को देखूँ, बाहर ही बाहर उनके स्वभाव की, मिज़ाज की जांच करूं। उस वक़्त तय करूंगा कि मुझे क्या करना चाहिए। अगर रईसी की बू उनके दिमाग़ से निकल गयी है और मेरे साथ रूखी रोटियां खाना उन्हें मंजूर है, तो इससे अच्छा फिर और क्या, लेकिन अगर वह अमीरी ठाट-बाट के हाथों बिकी हुई हैं तो मेरे लिए रास्ता साफ है। फिर मैं हूँ और दुनिया का ग़म। ऐसी जगह जाऊं जहां किसी परिचित की सूरत सपने में भी न दिखायी दे। ग़रीबी की ज़िल्लत ज़िल्लत नहीं रहती, अगर अजनबियों में ज़िन्दगी बसर की जाय। यह जानने-पहचाननेवालों की कनखियां और कनबतियां हैं जो ग़रीबी को यन्त्रणा बना देती हैं। इस तरह दिल में ज़िन्दगी का नकशा बनाकर मगनदास अपनी मर्दाना हिम्मत के भरोसे पर नागपुर की तरफ चला, उस मल्लाह की तरह जो किश्ती और पाल के बग़ैर नदी की उमड़ती हुई लहरों में अपने को डाल दे।

३

शाम के वक़्त सेठ मक्खनलाल के सुन्दर बाग़ीचे में सूरज की पीली किरणें मुरझाये हुए फूलों से गले मिलकर बिदा हो रही थीं। बाग़ के बीच में एक पक्का कुआँ था और एक मौलसिरी का पेड़। कुएँ के मुँह पर अँधेरे की नीली-सी नक़ाब थी, पेड़ के सिर पर रोशनी की सुनहरी चादर। इसी पेड़ के नीचे एक बुढ़िया मालिन बैठी हुई फूलों के हार और गजरे गूँथ रही थी। इतने में एक नौजवान थका-मांदा कुएँ पर आया और लोटे से पानी भरकर पीने के बाद जगत पर बैठ गया। मालिन

ने पूछा—कहाँ जाओगे? मगनदास ने जवाब दिया कि जाना तो था बहुत दूर, मगर यहीं रात हो गयी। यहाँ कहीं ठहरने का ठिकाना मिल जायगा?

मालिन—चले जाओ सेठ जी के धर्मशाले में, बड़े आराम की जगह है।

मगनदास—धर्मशाले में तो मुझे ठहरने का कभी संयोग नहीं हुआ। कोई हर्ज न हो तो यहीं पड़ रहूँ। यहाँ कोई रात को रहता है?

मालिन—भाई, मैं यहाँ ठहरने को न कहूँगी। यह मिली हुई बाई जी की बैठक है। झरोखे में बैठकर सैर किया करती हैं। कहीं देख-भाल लें तो मेरे सिर में एक बाल भी न रहे।

मगनदास—बाई जी कौन?

मालिन—यही सेठ जी की बेटी। इन्दिरा बाई।

मगनदास—यह गजरे उन्हीं के लिए बना रही हो क्या?

मालिन—हाँ, और सेठ जी के यहाँ है ही कौन? फूलों के गहने बहुत पसन्द करती हैं।

मगनदास—शौक़ीन औरत मालूम होती हैं?

मालिन—भाई, यही तो बड़े आदमियों की बातें हैं। वह शौक न करें तो हमारा-तुम्हारा निबाह कैसे हो। और धन है किसलिए। अकेली जान पर दस लौंडियाँ हैं। सुना करती थी कि भागवान आदमी का हल भूत जोतता है, वह आँखों देखा। आपही आप पंखा चलने लगे। आप ही आप सारे घर में दिन का-सा उजाला हो जाय। तुम झूठ समझते होगे, मगर मैं आँखों देखी बात कहती हूँ।

उस गर्व की चेतना के साथ जो किसी नादान आदमी के सामने अपनी जानकारी के बयान करने में होता है, बूढ़ी मालिन अपनी सर्वज्ञता का प्रदर्शन करने लगी। मगनदास ने उकसाया—होगा भाई, बड़े आदमी की बातें निराली होती हैं। लक्ष्मी के बस में सब कुछ है। मगर अकेली जान पर दस लौंडियाँ? समझ में नहीं आता।

मालिन ने बुढ़ापे के चिड़चिड़ेपन से जवाब दिया—तुम्हारी समझ मोटी हो तो कोई क्या करे! कोई पान लगाती है, कोई पंखा झलती है, कोई कपड़े पहनाती है, दो हज़ार रुपये में तो सेजगाड़ी आयी थी, चाहो तो मुँह देख लो, उस पर हवा खाने जाती हैं। एक बंगालिन गाना-बजाना सिखाती है, मेम पढ़ाने आती है, शास्त्री जी संस्कृत पढ़ाते हैं, कागद पर ऐसी मूरत बनाती हैं कि अब बोली और अब बोली। दिल की रानी है, बेचारी के भाग फूट गये। दिल्ली के सेठ लगनदास के गोद लिये हुए लड़के से ब्याह हुआ था। मगर राम जी की लीला, सत्तर बरस के

मुर्दे को लड़का दिया, कौन पतियायेगा। जब से यह सुनावनी आयी है, तब से बहुत उदास रहती हैं। एक दिन रोती थीं। मेरे सामने की बात है। बाप ने देख लिया। समझाने लगे। लड़की को बहुत चाहते हैं। सुनती हूँ, दामाद को यहीं बुलाकर रक्खेंगे। नारायन करे, मेरी रानी दूधों नहाय पूतों फले। माली मर गया था, उन्होंने आड़ न ली होती तो घर भर के टुकड़े माँगती।

मगनदास ने एक ठण्डी साँस ली। बेहतर है, अब यहाँ से अपनी इज्ज़त-आबरू लिये हुए चल दो। यहाँ मेरा निबाह न होगा। इन्दिरा रईसज़ादी है। तुम इस क़ाबिल नहीं हो कि उसके शौहर बन सको। मालिन से बोला—तो धर्मशाले में जाता हूँ। जाने वहाँ खाट-वाट मिल जाती है कि नहीं, मगर रात ही तो काटनी है, किसी तरह कट ही जायगी। रईसों के लिए मखमली गद्दे चाहिए, हम मज़दूरों के लिए पुआल ही बहुत है।

यह कहकर उसने लुटिया उठायी, डण्डा सम्हाला और दर्दभरे दिल से एक तरफ को चल दिया।

उस वक्त इन्दिरा अपने झरोखे पर बैठी हुई इन दोनों की बातें सुन रही थी। कैसा संयोग है कि स्त्री को स्वर्ग की सब सिद्धियाँ प्राप्त हैं और उसका पति आवारों की तरह मारा-मारा फिर रहा है। उसे रात काटने का ठिकाना नहीं।

४

मगनदास निराश विचारों में डूबा हुआ शहर से बाहर निकल आया और एक सराय में ठहरा जो सिर्फ इसलिए मशहूर थी, कि वहाँ शराब की एक दुकान थी। यहाँ आस-पास से मज़दूर लोग आ-आकर अपने दुख को भुलाया करते थे। जो भूले-भटके मुसाफिर यहाँ ठहरते, उन्हें होशियारी और चौकसी का व्यावहारिक पाठ मिल जाता था। मगनदास थका-माँदा था ही, एक पेड़ के नीचे चादर बिछाकर सो रहा और जब सुबह को नींद खुली तो उसे किसी पीर-औलिया के ज्ञान की सजीव दीक्षा का चमत्कार दिखायी पड़ा जिसकी पहली मंजिल वैराग्य है। उसकी छोटी-सी पोटली जिसमें दो-एक कपड़े और थोड़ा-सा रास्ते का खाना और लुटिया-डोर बँधी हुई थी, ग़ायब हो गयी। उन कपड़ों को छोड़कर जो उसके बदन पर थे अब उसके पास कुछ भी न था और भूख जो कंगाली में और भी तेज़ हो जाती है उसे बेचैन कर रही थी। मगर दृढ़ स्वभाव का आदमी था, उसने क़िस्मत का रोना नहीं रोया, किसी तरह गुज़र करने की तदबीरें सोचने लगा। लिखने और गणित में

उसे अच्छा अभ्यास था मगर इस हैसियत में उससे फ़ायदा उठाना असम्भव था। उसने संगीत का बहुत अभ्यास किया था। किसी रसिक रईस के दरबार में उसकी क़दर हो सकती थी। मगर उसके पुरुषोचित अभिमान ने इस पेशे को अख्तियार करने की इजाज़त न दी। हाँ, वह आला दर्जे का घुड़सवार था और यह फ़न मज़े में पूरी शान के साथ उसकी रोज़ी का साधन बन सकता था। यह पक्का इरादा करके उसने हिम्मत से क़दम आगे बढ़ाये। ऊपर से देखने पर यह बात यक़ीन के क़ाबिल नहीं मालूम होती मगर वह अपना बोझ हलका हो जाने से इस वक़्त बहुतउदास नहीं था। मर्दाना हिम्मत का आदमी ऐसी मुसीबतों को उसी निगाह से देखता है जिससे एक होशियार विद्यार्थी परीक्षा के प्रश्नों को देखता है। उसे अपनी हिम्मत आज़माने का, एक मुश्किल से जूझने का मौक़ा मिल जाता है। उसकी हिम्मत अनजाने ही मज़बूत हो जाती है। अक्सर ऐसे मार्के मर्दाना हौसले के लिए प्रेरणा का काम देते हैं। मगनदास इस जोश से क़दम बढ़ाता चला जाता था कि जैसे कामयाबी की मंज़िल सामने नज़र आ रही है। मगर शायद वहाँ के घोड़ों ने शरारत और बिगड़ैलपन से तोबा कर ली थी या वे स्वाभाविक रूप से बहुत मज़े में धीमे-धीमे चलनेवाले थे। वह जिस गाँव में जाता निराशा को उकसानेवाला जवाब पाता। आख़िरकार शाम के वक़्त जब सूरज अपनी आख़िरी मंज़िल पर जा पहुँचा था, उसकी कठिन मंज़िल तमाम हुई। नागरघाट के ठाकुर अटल सिंह ने उसकी जीविका की चिन्ता को समाप्त किया।

यह एक बड़ा गाँव था। पक्के मकान बहुत थे। मगर उनमें प्रेतात्माएँ आबाद थीं। कई साल पहले प्लेग ने आबादी के बड़े हिस्से को इस क्षणभंगुर संसार से उठाकर स्वर्ग में पहुँचा दिया था। इस वक़्त प्लेग के बचे-खुचे लोग गाँव के नौजवान और शौक़ीन ज़मीन्दार साहब और हलक़े के कारगुज़ार और रोबीले थानेदार साहब थे। उनकी मिली-जुली कोशिशों से गाँव में सतयुग का राज था। धन-दौलत को लोग जान का अज़ाब समझते थे। उसे गुनाह की तरह छिपाते थे। घर-घर में रुपये रहते हुए लोग क़र्ज़ ले-लेकर खाते और फटेहालों रहते थे। इसी में निबाह था। काजल की कोठरी थी, सफ़ेद कपड़े पहनना उन पर धब्बा लगाना था। हुकूमत और ज़बर्दस्ती का बाज़ार गर्म था। अहीरों के यहाँ आँजन के लिए भी दूध न था। थाने में दूध की नदी बहती थी। मवेशीखाने के मुहर्रिर दूध की कुल्लियाँ करते थे। इसी अन्धेरनगरी को मगनदास ने अपना घर बनाया। ठाकुर साहब ने असाधारण उदारता से काम लेकर उसे रहने के लिए एक मकान भी दे

दिया, जो केवल बहुत व्यापक अर्थों में मकान कहा जा सकता था। इसी झोपड़ी में वह एक हफ़्ते से ज़िन्दगी के दिन काट रहा है। उसका चेहरा ज़र्द है और कपड़े मैले हो रहे हैं। मगर ऐसा मालूम होता है कि उसे अब इन बातों की अनुभूति ही नहीं रही। ज़िन्दा है मगर ज़िन्दगी रुख़सत हो गयी है। हिम्मत और हौसला मुश्किल को आसान कर सकते हैं, आँधी और तूफ़ान से बचा सकते हैं मगर चेहरे को खिला सकना उनके सामर्थ्य से बाहर है। टूटी हुई नाव पर बैठकर मल्हार गाना हिम्मत का काम नहीं हिमाक़त का काम है।

एक रोज़ जब शाम के वक़्त वह अँधेरे में खाट पर पड़ा हुआ था, एक औरत उसके दरवाज़े पर आकर भीख माँगने लगी। मगनदास को आवाज़ परिचित जान पड़ी। बाहर आकर देखा तो वही चम्पा मालिन थी। कपड़े तार-तार, मुसीबत की रोती हुई तसवीर। बोला—मालिन? तुम्हारी यह क्या हालत है? मुझे पहचानती हो?

मालिन ने चौंककर देखा और पहचान गयी। रोकर बोली—बेटा, अब बताओ मेरा कहाँ ठिकाना लगे? तुमने मेरा बना-बनाया घर उजाड़ दिया। न उस दिन तुमसे बातें करती न मुझ पर यह बिपत पड़ती। बाई ने तुम्हें बैठे देख लिया, बातें भी सुनीं, सुबह होते ही मुझे बुलाया और बरस पड़ीं—नाक कटवा लूँगी, मुँह में कालिख लगवा दूँगी, चुड़ैल, कुटनी, तू मेरी बात किसी ग़ैर आदमी से क्यों चलाये? तू दूसरों से मेरी चर्चा क्यों करे? वह क्या तेरा दामाद था, जो तू उससे मेरा दुखड़ा रोती थी? जो कुछ मुँह में आया बकती रही। मुझसे भी न सहा गया। रानी रूठेंगी अपना सुहाग लेंगी! बोली—बाई जी, मुझसे क़सूर हुआ, लीजिए अब जाती हूँ। छींकते नाक कटती है तो मेरा निबाह यहाँ न होगा। ईश्वर ने मुँह दिया है तो अहार भी देगा। चार घर से माँगूँगी तो मेरे पेट को हो जायेगा। उस छोकरी ने मुझे खड़े-खड़े निकलवा दिया। बताओ मैंने तुमसे उसकी कौन-सी शिकायत की थी? उसकी क्या चर्चा की थी? मैं तो उसका बखान कर रही थी। मगर बड़े आदमियों का गुस्सा भी बड़ा होता है। अब बताओ मैं किस की होकर रहूँ? आठ दिन इसी तरह टुकड़े माँगते हो गये। एक भतीजी उन्हीं के यहाँ लौंडियों में नौकर थी, उसी दिन उसे भी निकाल दिया। तुम्हारी बदौलत, जो कभी न किया था, वह करना पड़ा। तुम्हें काहे को दोष लगाऊँ, क़िस्मत में जो कुछ लिखा था, वह देखना पड़ा।

मगनदास सन्नाटे में आ गया। आह, मिज़ाज का यह हाल है, यह घमण्ड,

यह शान! मालिन को इत्मीनान दिलाया। उसके पास अगर दौलत होती तो उसे मालामाल कर देता। सेठ मक्खनलाल की बेटी को भी मालूम हो जाता कि रोजी की कुंजी उसी के हाथ में नहीं है। बोला—तुम फिक्र न करो, मेरे घर में आराम से रहो। अकेले मेरा जी भी नहीं लगता। सच कहो तो मुझे तुम्हारी तरह एक औरत की तलाश थी, अच्छा हुआ तुम आ गयीं।

मालिन ने आँचल फैलाकर असीस दिया—बेटा तुम जुग-जुग जियो, बड़ी उमिर हो, यहाँ कोई घर मिले तो मुझे दिलवा दो। मैं यहाँ रहूँगी तो मेरी भतीजी कहाँ जायगी। वह बेचारी शहर में किसके आसरे रहेगी।

मगनदास के ख़ून में जोश आया। उसके स्वाभिमान को चोट लगी। उन पर यह आफ़त मेरी लायी हुई है। उनकी इस आवारागर्दी का ज़िम्मेदार मैं हूँ। बोला—कोई हर्ज न हो तो उसे भी यहीं ले आओ। मैं दिन को यहाँ बहुत कम रहता हूँ। रात को बाहर चारपाई डालकर पड़ रहा करूँगा। मेरी वजह से तुम लोगों को कोई तकलीफ़ न होगी। यहाँ दूसरा मकान मिलना मुश्किल है। यही झोपड़ा बड़ी मुश्किलों से मिला है। यह अन्धेरनगरी है। जब तुम्हारा सुभीता कहीं लग जाय तो चली जाना।

मगनदास को क्या मालूम था कि हज़रत इश्क़ उसकी ज़बान पर बैठे हुए उससे यह बातें कहला रहे हैं। क्या यह ठीक है कि इश्क़ पहले माशूक़ के दिल में पैदा होता है?

५

नागपुर इस गाँव से बीस मील की दूरी पर था। चम्पा उसी दिन चली गयी और तीसरे दिन रम्भा के साथ लौट आयी। यह उसकी भतीजी का नाम था। उसके आने से झोपड़े में जान-सी पड़ गयी। मगनदास के दिमाग़ में मालिन की लड़की की जो तस्वीर थी उसका रम्भा से कोई मेल न था। वह सौन्दर्य नाम की चीज़ का अनुभवी जौहरी था मगर ऐसी सूरत जिस पर जवानी की ऐसी मस्ती और दिल का चैन छीन लेनेवाला ऐसा आकर्षण हो उसने पहले कभी न देखा था। उसकी जवानी का चाँद अपनी सुनहरी और गम्भीर शान के साथ चमक रहा था। सुबह का वक़्त था। मगनदास दरवाज़े पर पड़ा ठण्डी-ठण्डी हवा का मज़ा उठा रहा था। रम्भा सिर पर घड़ा रक्खे पानी भरने को निकली। मगनदास ने उसे देखा और एक लम्बी साँस खींचकर उठ बैठा। चेहरा-मोहरा बहुत ही मोहक। ताज़े फूल की तरह खिला हुआ चेहरा, आँखों में गम्भीर सरलता। मगनदास को उसने भी देखा। चेहरे पर लाज की लाली दौड़ गयी। प्रेम ने पहला वार किया।

मगनदास सोचने लगा—क्या तक़दीर यहाँ कोई और गुल खिलानेवाली है! क्या दिल मुझे यहाँ भी चैन न लेने देगा। रम्भा, तू यहाँ नाहक आयी, नाहक एक ग़रीब का ख़ून तेरे सर पर होगा। मैं तो अब तेरे हाथों बिक चुका, मगर क्या तू भी मेरी हो सकती है? लेकिन नहीं, इतनी जल्दबाज़ी ठीक नहीं। दिल का सौदा सोच-समझकर करना चाहिए। तुमको अभी ज़ब्त करना होगा। रम्भा सुन्दरी है मगर झूठे मोती की आब और ताब उसे सच्चा नहीं बना सकती। तुम्हें क्या ख़बर कि उस भोली लड़की के कान प्रेम के शब्द से परिचित नहीं हो चुके हैं। कौन कह सकता है कि उसके सौन्दर्य की बाटिका पर किसी फूल चुननेवाले के हाथ नहीं पड़ चुके हैं। अगर कुछ दिनों की दिलबस्तगी के लिए कुछ चाहिए तो तुम आज़ाद हो मगर यह नाज़ुक मामला है, ज़रा सम्हल के क़दम रखना। पेशेवर ज़ातों में दिखायी पड़नेवाला सौन्दर्य अक्सर नैतिक बन्धनों से मुक्त होता है।

तीन महीने गुज़र गये। मगनदास रम्भा को ज्यों-ज्यों बारीक से बारीक निगाहों से देखता, त्यों-त्यों उस पर प्रेम का रंग गाढ़ा होता जाता था। वह रोज़ उसे कुएँ से पानी निकालते देखता, वह रोज़ घर में झाड़ू देती, रोज खाना पकाती। आह, मगनदास को उन ज्वार की रोटियों में जो मज़ा आता था वह अच्छे से अच्छे व्यंजनों में भी न आया था। उसे अपनी कोठरी हमेशा साफ-सुथरी मिलती। न जाने कौन उसके बिस्तर बिछा देता। क्या यह रम्भा की कृपा थी? उसकी निगाहें कैसी शर्मीली थीं। उसने उसे कभी अपनी तरफ चंचल आँखों से ताकते नहीं देखा। आवाज़ कैसी मीठी। उसकी हँसी की आवाज़ कभी उसके कान में नहीं आयी। अगर मगनदास उसके प्रेम में मतवाला हो रहा था तो कोई ताज्जुब की बात नहीं थी। उसकी भूखी निगाहें बेचैनी और लालसा में डूबी हुई हमेशा रम्भा को ढूँढ़ा करतीं। वह जब किसी दूसरे गाँव को जाता तो मीलों तक उसकी ज़िद्दी और बेताब आँखें मुड़-मुड़कर झोपड़े के दरवाज़े की तरफ़ आतीं। उसकी ख्याति आस-पास फैल गयी थी मगर उसके स्वभाव की मुरौवत और उदारहृदयता से अक्सर लोग अनुचित लाभ उठाते थे। इन्साफ़-पसन्द लोग तो स्वागत-सत्कार से काम निकाल लेते और जो लोग ज़्यादा समझदार थे वे लगातार तक़ाज़ों का इन्तज़ार करते। चूँकि मगनदास इस फ़न को बिलकुल न जानता था, बावजूद दिन-रात की दौड़-धूप के ग़रीबी से उसका गला न छूटता। जब वह रम्भा को चक्की पीसते हुए देखता तो गेहूँ के साथ उसका दिल भी पिस जाता था। वह कुएँ से पानी निकालती तो उसका कलेजा निकल आता। जब वह पड़ोस की औरतों के कपड़े

सीती तो कपड़ों के साथ मगनदास का दिल छिद जाता। मगर कुछ बस था न क़ाबू।

मगनदास की हृदयवेधी दृष्टि को इसमें तो कोई सन्देह नहीं था कि उसके प्रेम का आकर्षण बिलकुल बेअसर नहीं है वर्ना रम्भा की उन वफ़ा से भरी हुई ख़ातिर-दारियों की तुक कैसे बिठाता। वफ़ा ही वह जादू है जो रूप के गर्व का सिर नीचा कर सकता है। मगर प्रेमिका के दिल में बैठने का माद्दा उसमें बहुत कम था। कोई दूसरा मनचला प्रेमी अब तक अपने वशीकरण में कामयाब हो चुका होता लेकिन मगनदास ने दिल आशिक़ का पाया था और ज़बान माशूक़ की।

एक रोज़ शाम के वक़्त चम्पा किसी काम से बाज़ार गयी हुई थी और मगन-दास हमेशा की तरह चारपाई पर पड़ा सपने देख रहा था कि रम्भा अद्भुत छटा के साथ आकर उसके सामने खड़ी हो गयी। उसका भोला चेहरा कमल की तरह खिला हुआ था और आँखों से सहानुभूति का भाव झलक रहा था। मगनदास ने उसकी तरफ़ पहले आश्चर्य और फिर प्रेम की निगाहों से देखा और दिल पर ज़ोर डालकर बोला—आओ रम्भा, तुम्हें देखने को बहुत दिन से आँखें तरस रही थीं।

रम्भा ने भोलेपन से कहा—मैं यहाँ न आती तो तुम मुझसे कभी न बोलते।

मगनदास का हौसला बढ़ा, बोला—बिना मर्ज़ी पाये तो कुत्ता भी नहीं आता।

रम्भा मुस्करायी, कली खिल गयी—मैं तो आप ही चली आयी।

मगनदास का कलेजा उछल पड़ा। उसने हिम्मत करके रम्भा का हाथ पकड़ लिया और भावावेश से काँपती हुई आवाज़ में बोला—नहीं रम्भा, ऐसा नहीं है। यह मेरी महीनों की तपस्या का फल है।

मगनदास ने बेताब होकर उसे गले से लगा लिया। जब वह चलने लगी तो अपने प्रेमी की ओर प्रेमभरी दृष्टि से देखकर बोली—अब यह प्रीत हमको निभानी होगी।

पौ फटने के वक़्त जब सूर्य देवता के आगमन की तैयारियाँ हो रही थीं, मगन-दास की आँख खुली। रम्भा आटा पीस रही थी। उस शान्तिपूर्ण सन्नाटे में चक्की की घुमर-घुमर बहुत सुहानी मालूम होती थी और उससे सुर मिलाकर अपने प्यारे ढंग से गाती थी —

झुलनियाँ मोरी पानी में गिरी
मैं जानूँ पिया मोको मनैहैं
उलटी मनावन मोको पड़ी
झुलनियाँ मोरी पानी में गिरी

साल भर गुज़र गया। मगनदास की मुहब्बत और रम्भा के सलीक़े ने मिलकर उस वीरान झोपड़े को कुंज बाग़ बना दिया। अब वहाँ गायें थीं, फूलों की क्यारियाँ थीं और कई देहाती ढंग के मोढ़े थे। सुख-सुविधा की अनेक चीज़ें दिखायी पड़ती थीं।

एक रोज़ सुबह के वक्त मगनदास कहीं जाने के लिए तैयार हो रहा था कि एक सम्भ्रान्त व्यक्ति अंग्रेज़ी पोशाक पहने उसे ढूँढ़ता हुआ आ पहुँचा और उसे देखते ही दौड़कर गले से लिपट गया। मगनदास और वह दोनों एक साथ पढ़ा करते थे। वह अब वकील हो गया था। मगनदास ने भी अब उसे पहचाना और कुछ झेंपता और कुछ झिझकता उससे गले लिपट गया। बड़ी देर तक दोनों दोस्त बातें करते रहे। बाते क्या थीं घटनाओं और संयोगों की एक लंबी कहानी थी। कई महीने हुए सेठ लगन का छोटा बच्चा चेचक की नज़र हो गया। सेठ जी ने दुख के मारे आत्महत्या कर ली और अब मगनदास सारी जायदाद, कोठी, इलाके और मकानों का एकछत्र स्वामी था। सेठानियों में आपसी झगड़े हो रहे थे। कर्मचारियों ने ग़बन को अपना ढंग बना रक्खा था। बड़ी सेठानी उसे बुलाने के लिए खुद आने को तैयार थीं, मगर वकील साहब ने उन्हें रोका था। जब मगनदास ने मुस्कराकर पूछा—तुम्हें क्योंकर मालूम हुआ कि मैं यहाँ हूँ तो वकील साहब ने फरमाया—महीने भर से तुम्हारी ही टोह में हूँ। सेठ मक्खनलाल ने अता-पता बतलाया। तुम दिल्ली पहुँचे और मैंने अपना महीने भर का बिल पेश किया।

रम्भा अधीर हो रही थी कि यह कौन है और इनमें क्या बातें हो रही हैं? दस बजते-बजते वकील साहब मगनदास से एक हफ्ते के अन्दर आने का वादा लेकर विदा हुए। उसी वक्त रम्भा आ पहुँची और पूछने लगी—यह कौन थे, इनका तुमसे क्या काम था?

मगनदास ने जवाब दिया—यमराज का दूत।

रम्भा—क्या असगुन बकते हो!

मगन—नहीं रम्भा, यह असगुन नहीं है, यह सचमुच मेरी मौत का दूत था। मेरी ख़ुशियों के बाग़ को रौंदनेवाला, मेरी हरी-भरी खेती को उजाड़नेवाला, रम्भा मैंने तुम्हारे साथ दग़ा की है, मैंने तुम्हें अपने फ़रेब के जाल में फँसाया है, मुझे माफ़ करो। मुहब्बत ने मुझसे यह सब करवाया। मैं मगनसिंह ठाकुर नहीं हूँ; मैं सेठ लगनदास का बेटा और सेठ मक्खनलाल का दामाद हूँ।

मगनदास को डर था कि रम्भा यह सुनते ही चौंक पड़ेगी और शायद उसे

ज़ालिम दग़ाबाज़ कहने लगे, मगर उसका ख़याल ग़लत निकला। रम्भा ने आँखों में आँसू भरकर सिर्फ इतना कहा—तो क्या तुम मुझे छोड़कर चले जाओगे?

मगनदास ने उसे गले लगाकर कहा—हाँ।

रम्भा—क्यों?

मगन—इसलिए कि इन्दिरा बहुत होशियार, सुन्दर और धनी है।

रम्भा—मैं तुम्हें न छोड़ूँगी। कभी इन्दिरा की लौंडी थी, अब उनकी सौत बनूँगी। तुम जितनी मेरी मुहब्बत करोगे उतनी इन्दिरा की तो न करोगे, क्यों?

मगनदास इस भोलेपन पर मतवाला हो गया। मुस्कराकर बोला—अब इन्दिरा तुम्हारी लौंडी बनेगी, मगर सुनता हूँ वह बहुत सुन्दर है। कहीं मैं उसकी सूरत पर लुभा न जाऊँ। मर्दों का हाल तुम नहीं जानतीं, मुझे अपने ही से डर लगता है।

रम्भा ने विश्वासभरी आँखों से देखकर कहा—क्या तुम भी ऐसा करोगे? उँह, जो जी में आये करना, मैं तुम्हें न छोड़ूँगी। इन्दिरा रानी बने, मैं लौंडी हूँगी क्या इतने पर भी मुझे छोड़ दोगे?

मगनदास की आँखें डबडबा गयीं, बोला—प्यारी, मैंने फ़ैसला कर लिया है कि दिल्ली न जाऊँगा। यह तो मैं कहने ही न पाया कि सेठ जी का स्वर्गवास हो गया। बच्चा उनसे पहले ही चल बसा था। अफसोस सेठ जी के आख़िरी दर्शन भी न कर सका। अपना बाप भी इतनी मुहब्बत नहीं कर सकता। उन्होंने मुझे अपना वारिस बनाया है। वकील साहब कहते थे कि सेठानियों में अनबन है। नौकर चाकर लूटमार मचा रहे हैं। वहाँ का यह हाल है और मेरा दिल वहाँ जाने पर राज़ी नहीं होता। दिल तो यहाँ है, वहाँ कौन जाय।

रम्भा ज़रा देर तक सोचती रही, फिर बोली—तो मैं तुम्हें छोड़ दूंगी। इतने दिन तुम्हारे साथ रही, ज़िन्दगी का सुख लूटा, अब जब तक जिऊँगी इस सुख का ध्यान करती रहूँगी। मगर तुम मुझे भूल तो न जाओगे? साल में एक बार देख लिया करना और इसी झोंपड़े में।

मगनदास ने बहुत रोका मगर आँसू न रुक सके, बोले—रम्भा, यह बातें न करो, कलेजा बैठा जाता है। मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता, इसलिए नहीं कि तुम्हारे ऊपर कोई एहसान है। तुम्हारी ख़ातिर नहीं, अपनी ख़ातिर। वह शान्ति, वह प्रेम, वह आनन्द जो मुझे यहाँ मिलता है और कहीं नहीं मिल सकता। ख़ुशी के साथ ज़िन्दगी बसर हो, यही मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है। मुझे ईश्वर ने वह

ख़ुशी यहाँ दे रक्खी है तो मैं उसे क्यों छोड़ूँ। धन-दौलत को मेरा सलाम है, मुझे उसकी हवस नहीं है।

रम्भा फिर गम्भीर स्वर में बोली—मैं तुम्हारे पाँव की बेड़ी न बनूँगी। चाहे तुम अभी मुझे न छोड़ो लेकिन थोड़े दिनों में तुम्हारी यह मुहब्बत न रहेगी।

मगनदास को कोड़ा लगा। जोश से बोला—तुम्हारे सिवा इस दिल में अब कोई और जगह नहीं पा सकता।

रात ज़्यादा आ गयी थी। अष्टमी का चाँद सोने जा चुका था। दोपहर के कमल की तरह साफ़ आसमान में सितारे खिले हुए थे। किसी खेत के रखवाले की बाँसुरी की आवाज़, जिसे दूरी ने तासीर, सन्नाटे ने सुरीलापन और अँधेरे ने आत्मिकता का आकर्षण दे दिया था, कानों में आ रही थी कि जैसे कोई पवित्र आत्मा नदी के किनारे बैठी हुई पानी की लहरों से या दूसरे किनारे के ख़ामोश और अपनी तरफ खींचनेवाले पेड़ों से अपनी ज़िन्दगी की ग़म की कहानी सुना रही है।

मगनदास सो गया, मगर रम्भा की आँखों में नींद न आयी।

६

सुबह हुई तो मगनदास उठा और रम्भा, रम्भा पुकारने लगा। मगर रम्भा रात ही को अपनी चाची के साथ वहाँ से कहीं चली गयी। मगनदास को उस मकान के दरो-दीवार पर एक हसरत-सी छायी हुई मालूम हुई कि जैसे घर की जान निकल गयी हो। वह घबराकर उस कोठरी में गया जहाँ रम्भा रोज़ चक्की पीसती थी, मगर अफसोस आज चक्की एकदम निश्चल थी। फिर वह कुएँ की तरफ़ दौड़ा गया लेकिन ऐसा मालूम हुआ कि कुएँ ने उसे निगल जाने के लिए अपना मुँह खोल दिया है। तब वह बच्चों की तरह चीख उठा और रोता हुआ फिर उसी झोंपड़ी में आया जहाँ कल रात तक प्रेम का वास था। मगर आह, उस वक्त वह शोक का घर बना हुआ था। जब ज़रा आँसू थमे तो उसने घर में चारों तरफ़ निगाह दौड़ाई। रम्भा की साड़ी अरगनी पर पड़ी हुई थी। एक पिटारी में वह कंगन रक्खा हुआ था जो मगनदास ने उसे दिया था। बर्तन सब रखे हुए थे, साफ और सुथरे। मगनदास सोचने लगा—रम्भा, तूने रात को कहा था—मैं तुम्हें छोड़ दूँगी। क्या तूने वह बात दिल से कही थी? मैंने तो समझा था, तू दिल्लगी कर रही है, नहीं तो मैं तुझे कलेजे में छिपा लेता। मैं तो तेरे लिए सब कुछ छोड़े बैठा था। तेरा प्रेम मेरे लिए सब कुछ था। आह, मैं यों बेचैन हूँ, क्या तू बेचैन नहीं है? हाय तू रो रही है।

मुझे यकीन है कि तू अब भी लौट आयेगी। फिर सजीव कल्पनाओं का एक जमघट उसके सामने आया—वह नाज़ुक अदायें, वह मतवाली आँखें, वह भोली-भोली बातें, वह अपने को भूली हुई-सी मेहरबानियाँ, वह जीवनदायी मुस्कान, वह आशिकों जैसी दिलजोइयाँ, वह प्रेम का नशा, वह हमेशा खिला रहनेवाला चेहरा, वह लचक-लचककर कुएँ से पानी लाना, वह इन्तज़ार की सूरत, वह मुहब्बत से भरी हुई बेचैनी—यह सब तस्वीरें उसकी निगाहों के सामने हसरतनाक बेताबी के साथ फिरने लगीं। मगनदास ने एक ठण्डी साँस ली और आँसुओं और दर्द की उमड़ती हुई नदी को मर्दाना ज़ब्त से रोककर उठ खड़ा हुआ। नागपुर जाने का पक्का फैसला हो गया। तकिये के नीचे से सन्दूक की कुंजी उठायी तो काग़ज़ का एक टुकड़ा निकल आया। यह रम्भा की विदा की चिट्ठी थी—

प्यारे,

मैं बहुत रो रही हूँ। मेरे पैर नहीं उठते, मगर मेरा जाना ज़रूरी है। तुम्हें जगाऊँगी तो तुम जाने न दोगे। आह कैसे जाऊँ, अपने प्यारे पति को कैसे छोड़ूँ! किस्मत मुझसे यह आनन्द का घर छुड़वा रही है, मुझे बेवफा न कहना, मैं तुमसे फिर कभी मिलूँगी। मैं जानती हूँ कि तुमने मेरे लिए यह सब कुछ त्याग दिया है। मगर तुम्हारे लिए ज़िन्दगी में बहुत कुछ उम्मीदें हैं। मैं अपनी मुहब्बत की धुन में तुम्हें उन उम्मीदों से क्यों दूर रक्खूँ। अब तुमसे जुदा होती हूँ। मेरी सुध मत भूलना। मैं तुम्हें हमेशा याद रखूँगी। यह आनन्द के दिन कभी न भूलेंगे। क्या तुम मुझे भूल सकोगे?

तुम्हारी प्यारी
रम्भा

७

मगनदास को दिल्ली आये तीन महीने गुज़र चुके हैं। इस बीच उसे सबसे बड़ा जो निजी अनुभव हुआ वह यह था कि रोज़ी की फिक्र और धन्धों की बहुतायत से उमड़ती हुई भावनाओं का ज़ोर कम किया जा सकता है। डेढ़ साल पहले का बेफिक्र नौजवान अब एक समझदार और सूझ-बूझ रखनेवाला आदमी बन गया था। सागर घाट के उस कुछ दिनों के रहने से उसे रिआया की उन तकलीफों का निजी ज्ञान हो गया था जो कारिन्दों और मुख्तारों की सख्तियों की बदौलत उन्हें उठानी पड़ती हैं। उसने उसे रियासत के इन्तज़ाम में बहुत मदद दी और गो कर्मचारी दबी ज़बान से उसकी शिकायत करते थे और अपनी किस्मतों और ज़माने के उलट

फेर को कोसते थे मगर रिआया खुश थी। हां जब वह सब धंधों से फुरसत पाता तो एक भोली-भाली सूरतवाली लड़की उसके ख़याल के पहलू में आ बैठती और थोड़ी देर के लिए सागर घाट का वह हरा-भरा झोंपड़ा और उसकी मस्तियाँ आंखों के सामने आ जातीं। सारी बातें एक सुहाने सपने की तरह याद आ-आकर उसके दिल को मसोसने लगतीं लेकिन कभी-कभी खुद-बखुद उसका ख्याल इन्दिरा की तरफ भी जा पहुँचता। गो उसके दिल में रम्भा की वही जगह थी मगर किसी तरह उसमें इन्दिरा के लिए भी एक कोना निकल आया था। जिन हालतों और आफतों ने उसे इन्दिरा से बेज़ार कर दिया था वह अब रुखसत हो गयी थीं। अब उसे इन्दिरा से कुछ हमदर्दी हो गयी थी। अगर उसके मिज़ाज में घमण्ड है, हुकूमत है, तकल्लुफ है, शान है तो यह उसका कसूर नहीं, यह रईसज़ादों की आम कमज़ोरियां हैं। यही उनकी शिक्षा है। वे बिलकुल बेबस और मजबूर हैं। इन बदले हुए और संतुलित भावों के साथ जहाँ वह बेचैनी के साथ रम्भा की याद को ताज़ा किया करता था वहां इन्दिरा का स्वागत करने और उसे अपने दिल में जगह देने के लिए तैयार था। वह दिन भी दूर नहीं था जब उसे उस आज़माइश का सामना करना पड़ेगा। उसके कई आत्मीय अमीराना शान-शौकत के साथ इन्दिरा को बिदा कराने के लिए नागपुर गए हुए थे। मगनदास की तबीयत आज तरह-तरह के भावों के कारण, जिनमें प्रतीक्षा और मिलन की उत्कंठा विशेष थी, उचाट-सी हो रही थी। जब कोई नौकर आता तो वह सम्हल बैठता कि शायद इन्दिरा आ पहुँची। आखिर शाम के वक्त, जब दिन और रात गले मिल रहे थे, ज़नानखाने में ज़ोर-शोर के गाने की आवाज़ों ने बहू के पहुँचने की सूचना दी।

सुहाग की सुहानी रात थी। दस बज गये थे। खुले हुए हवादार सहन में चांदनी छिटकी हुई थी, वह चांदनी जिसमें नशा है, आरज़ू है और खिंचाव है। गमलों में खिले हुए गुलाब और चम्पे के फूल चांद की सुनहरी रोशनी में ज़्यादा गम्भीर और खामोश नज़र आते थे। मगनदास इन्दिरा से मिलने के लिए चला। उसके दिल में लालसाएं ज़रूर थीं मगर एक पीड़ा भी थी। दर्शन की उत्कण्ठा थी मगर प्यास से खाली। मुहब्बत नहीं, प्राणों का खिंचाव था जो उसे खींचे लिये जाता था। उसके दिल में बैठी हुई रम्भा शायद बार-बार बाहर निकलने की कोशिश कर रही थी। इसीलिए दिल में धड़कन हो रही थी। वह सोने के कमरे के दरवाज़े पर पहुँचा। रेशमी पर्दा पड़ा हुआ था। उसने पर्दा उठा दिया। अन्दर एक औरत सफ़ेद साड़ी पहने खड़ी थी। हाथ में चन्द खूबसूरत चूड़ियों के सिवा उसके बदन पर

एक ज़ेवर भी न था। ज्योंही पर्दा उठा और मगनदास ने अन्दर क़दम रक्खा, वह मुस्कराती हुई उसकी तरफ बढ़ी। मगनदास ने उसे देखा और चकित होकर बोला, 'रम्भा!' और दोनों प्रेमावेश से लिपट गये। दिल में बैठी हुई रम्भा बाहर निकल आयी थी।

साल भर गुज़रने के बाद एक दिन इन्दिरा ने अपने पति से कहा— क्या रम्भा को बिलकुल भूल गये? कैसे बेवफा हो! कुछ याद है, उसने चलते वक्त तुमसे क्या विनती की थी?

मगनदास ने कहा—खूब याद है। वह आवाज़ भी कानों में गूँज रही है। मैं रम्भा को भोली-भाली लड़की समझता था। यह नहीं जानता था कि यह त्रिया-चरित्र का जादू है। मैं अपनी रम्भा को अब भी इन्दिरा से ज़्यादा प्यार करता हूं। तुम्हें डाह तो नहीं होती?

इन्दिरा ने हँसकर जवाब दिया—डाह क्यों हो। तुम्हें रम्भा है तो क्या मेरा मगनसिंह नहीं है। मैं अब भी उस पर मरती हूँ।

दूसरे दिन दोनों दिल्ली से एक राष्ट्रीय समारोह में शरीक होने का बहाना करके रवाना हो गये और सागर घाट जा पहुँचे। वह झोंपड़ा, वह मुहब्बत का मन्दिर, वह प्रेम-भवन फूल और हरियाली से लहरा रहा था। चम्पा मालिन उन्हें वहाँ मिली। गांव के ज़मीन्दार उनसे मिलने के लिए आये, कई दिन तक फिर मगनसिंह को घोड़े निकालना पड़े। रम्भा कुएं से पानी लाती, खाना पकाती, फिर चक्की पीसती और गाती। गांव की औरतें फिर उससे अपने कुर्ते और बच्चों की लेसदार टोपियाँ सिलातीं। हां, इतना ज़रूर कहतीं कि उसका रंग कैसा निखर आया है, हाथ-पांव कैसे मुलायम पड़ गये हैं, किसी बड़े घर की रानी मालूम होती है। मगर स्वभाव वही है, वही मीठी बोली है, वही मुरौवत, वही हँसमुख चेहरा।

इस तरह एक हफ्ते तक इस सरल और पवित्र जीवन का आनन्द उठाने के बाद दोनों दिल्ली वापस आये और अब दस साल गुज़रने पर भी साल में एक बार उस झोंपड़े के नसीब जागते हैं। वह मुहब्बत की दीवार अभी तक उन दोनों प्रेमियों को अपनी छाया में आराम देने के लिए खड़ी है।

—ज़माना, जनवरी १९१३

मिलाप

लाला ज्ञानचन्द बैठे हुए हिसाब-किताब जाँच रहे थे कि उनके सुपुत्र बाबू नानकचन्द आये और बोले—दादा, अब यहाँ पड़े-पड़े जी उकता गया, आपकी आज्ञा हो तो मैं सैर को निकल जाऊँ। दो-एक महीने में लौट आऊँगा।

नानकचन्द बहुत सुशील और सुन्दर नवयुवक था। रंग पीला, आंखों के गिर्द हलक़े, कंधे झुके हुए। ज्ञानचन्द ने उसकी तरफ तीखी निगाह से देखा और व्यंगपूर्ण स्वर में बोले—क्यों, क्या यहाँ तुम्हारे लिए कुछ कम दिलचस्पियाँ हैं?

ज्ञानचन्द ने बेटे को सीधे रास्ते पर लाने की बहुत कोशिश की थी, मगर सफल न हुए। उनकी डाँट-फटकार और समझाना-बुझाना बिलकुल बेकार हुआ। उसकी संगति अच्छी न थी, पीने-पिलाने और राग-रंग में डूबा रहता था। उन्हें यह नया प्रस्ताव क्यों पसन्द आने लगा, लेकिन नानकचन्द उनके स्वभाव से परिचित था। बेधड़क बोला—अब यहाँ जी नहीं लगता। कश्मीर की बहुत तारीफ सुनी है, अब वहीं जाने की सोचता हूँ।

ज्ञानचन्द—बेहतर है, तशरीफ ले जाइए।

नानकचन्द—(हँसकर) रुपये तो दिलवाइए। इस वक्त पांच सौ रुपये की सख्त ज़रूरत है।

ज्ञानचन्द—ऐसी फिज़ूल बातों का मुझसे ज़िक्र न किया करो, मैं तुमको बार-बार समझा चुका।

नानकचन्द ने हठ करना शुरू किया और बूढ़े लाला इनकार करते रहे, यहाँ तक कि नानकचन्द झुंझलाकर बोला—अच्छा कुछ मत दीजिये, मैं यों ही चला जाऊँगा।

ज्ञानचन्द ने कलेजा मजबूत करके कहा—बेशक, तुम ऐसे ही हिम्मतवर हो। वहाँ भी तुम्हारे भाई-बन्द बैठे हुए हैं न!

नानकचन्द—मुझे किसी की परवाह नहीं है। आपका रुपया आपको मुबारक रहे।

नानकचन्द की यह चाल कभी पट नहीं पड़ती थी। अकेला लड़का था, बूढ़े

लाला साहब ढीले पड़ गये। रुपया दिया, खुशामद की और उसी दिन नानकचन्द कश्मीर की सैर के लिए रवाना हुआ।

२

मगर नानकचन्द यहाँ से अकेला न चला। उसकी प्रेम की घातें आज सफल हो गयी थीं। पड़ोस में बाबू रामदास रहते थे। बेचारे सीधे-सादे आदमी थे, सुबह को दफ्तर जाते और शाम को आते और इस बीच नानकचन्द अपने कोठे पर बैठा हुआ उनकी बेवा लड़की से मुहब्बत के इशारे किया करता। यहाँ तक कि अभागी ललिता उसके जाल में आ फँसी। भाग जाने के मंसूबे हुए।

आधी रात का वक्त था, ललिता एक साड़ी पहने अपनी चारपाई पर करवटें बदल रही थी। ज़ेवरों को उतारकर उसने एक सन्दूकचे में रख दिया था। उसके दिल में इस वक्त तरह-तरह के ख़याल दौड़ रहे थे और कलेजा ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था। मगर चाहे और कुछ न हो, नानकचन्द की तरफ से उसे बेवफाई का ज़रा भी गुमान न था। जवानी की सबसे बड़ी नेमत मुहब्बत है और इस नेमत को पाकर ललिता अपने को खुशनसीब समझ रही थी। रामदास बेसुध सो रहे थे कि इतने में कुण्डी खटकी। ललिता चौंककर उठ खड़ी हुई। उसने ज़ेवरों का सन्दूकचा उठा लिया। एक बार इधर-उधर हसरत-भरी निगाहों से देखा और दबे पाँव चौंक-चौंककर क़दम उठाती देहलीज़ में आयी और कुण्डी खोल दी। नानकचन्द ने उसे गले से लगा लिया। बग्घी तैयार थी, दोनों उस पर जा बैठे।

सुबह को बाबू रामदास उठे, ललिता न दिखायी दी। घबराये, सारा घर छान मारा, कुछ पता न चला। बाहर की कुण्डी खुली देखी। बग्घी के निशान नज़र आये। सर पीटकर बैठ गये। मगर अपने दिल का दर्द किससे कहते। हँसी और बदनामी का डर ज़बान पर मोहर हो गया। मशहूर किया कि वह अपने ननिहाल चली गयी, मगर लाला ज्ञानचन्द सुनते ही भाँप गये कि कश्मीर की सैर के कुछ और ही माने थे। धीरे-धीरे यह बात सारे मुहल्ले में फैल गयी। यहाँ तक कि बाबू रामदास ने शर्म के मारे आत्महत्या कर ली।

३

मुहब्बत की सरगर्मियाँ नतीजे की तरफ से बिलकुल बेखबर होती हैं। नानक-चन्द जिस वक्त बग्घी में ललिता के साथ बैठा तो उसे इसके सिवाय और कोई ख़याल

न था कि एक युवती मेरे बग़ल में बैठी है, जिसके दिल का मैं मालिक हूँ। उसी धुन में वह मस्त था। बदनामी का डर, कानून का खटका, जीविका के साधन, इन समस्याओं पर विचार करने की उसे उस वक्त फुरसत न थी। हाँ, उसने कश्मीर का इरादा छोड़ दिया। कलकत्ते जा पहुँचा। किफ़ायतशारी का सबक़ न पढ़ा था। जो कुछ जमा-जथा थी, दो महीनों में खर्च हो गयी। ललिता के गहनों पर नौबत आयी। लेकिन नानकचन्द में इतनी शराफत बाकी थी। दिल मज़बूत करके बाप को खत लिखा, मुहब्बत को गालियाँ दीं और विश्वास दिलाया कि अब आपके पैर चूमने के लिए जी बेक़रार है, कुछ खर्च भेजिए। लाला साहब ने खत पढ़ा, तसकीन हो गयी कि चलो ज़िन्दा है और खैरियत से है। धूम-धाम से सत्यनारायण की कथा सुनी। रुपया रवाना कर दिया, लेकिन जवाब में लिखा—खैर, जो कुछ तुम्हारी किस्मत में था वह हुआ। अभी इधर आने का इरादा मत करो। बहुत बदनाम हो रहे हो। तुम्हारी वजह से मुझे भी बिरादरी से नाता तोड़ना पड़ेगा। इस तूफान को उतर जाने दो। तुम्हें खर्च की तकलीफ न होगी। मगर इस औरत की बांह पकड़ी है तो उसका निबाह करना, उसे अपनी ब्याहता स्त्री समझो।

नानकचन्द के दिल पर से चिन्ता का बोझ उतर गया। बनारस से माहवार वज़ीफ़ा मिलने लगा। इधर ललिता की कोशिश ने भी कुछ दिल को खींचा और गो शराब की लत न छूटी और हफ्ते में दो दिन ज़रूर थियेटर देखने जाता तो भी तबीयत में स्थिरता और कुछ संयम आ चला था। इस तरह कलकत्ते में उसने तीन साल काटे। इसी बीच उसे एक प्यारी लड़की के बाप बनने का सौभाग्य हुआ जिसका नाम उसने कमला रक्खा।

४

तीसरा साल गुज़रा ही था कि नानकचन्द के उस शान्तिमय जीवन में हलचल पैदा हुई। लाला ज्ञानचन्द का पचासवाँ साल था जो हिन्दोस्तानी रईसों की प्राकृतिक आयु है। उनका स्वर्गवास हो गया और ज्योंही यह खबर नानकचन्द को मिली वह ललिता के पास जाकर चीखें मार-मारकर रोने लगा। ज़िन्दगी के नये-नये मसले अब उसके सामने आये। इस तीन साल की सँभली हुई ज़िन्दगी ने उसके दिल से शोहदेपन और नशेबाज़ी के ख़याल बहुत कुछ दूर कर दिये थे। उसे अब यह फिक्र सवार हुई कि चलकर बनारस में अपनी जायदाद का कुछ इन्तज़ाम करना चाहिए, वर्ना सारा कारोबार धूल में मिल जायगा। लेकिन ललिता को क्या करूँ। अगर इसे वहाँ लिये चलता हूँ तो तीन साल की पुरानी घटनाएँ ताज़ी हो जायेंगी

और फिर एक हलचल पैदा होगी जो मुझ हुक्काम और हमजोलियों में ज़लील कर देगी। इसके अलावा उसे अब कानूनी औलाद की जरूरत भी नज़र आने लगी। यह हो सकता था कि वह ललिता को अपनी ब्याहता स्त्री मशहूर कर देता लेकिन इस आम खयाल को दूर करना असम्भव था कि उसने उसे भगाया है। ललिता से नानकचन्द को अब वह मुहब्बत न थी जिसमें दर्द होता है और बेचैनी होती है। वह अब एक स.धारण पति था जो गले में पड़े हुए ढोल को पीटना ही अपना धर्म समझता है, जिसे बीबी की मुहब्बत उसी वक्त याद आती है, जब वह बीमार होती है। और इसमें अचरज की कोई बात नहीं है अगर ज़िंदगी की नयी-नयी उमंगों ने उसे उकसाना शुरू किया। वे मंसूबे पैदा होने लगे जिनका दौलत और बड़े लोगों के मेल-जोल से संबंध है। मानव भावनाओं की यही साधारण दशा है। नानकचन्द अब मजबूत इरादे के साथ सोचने लगा कि यहाँ से क्योंकर भागूँ। अगर इजाज़त लेकर जाता हूँ तो दो-चार दिन में सारा पर्दा फ़ाश हो जायगा। अगर हीला किये जाता हूँ, तो आज के तीसरे दिन ललिता बनारस में मेरे सर पर सवार होगी। कोई ऐसी तरकीब निकालूँ, कि इन सम्भावनाओं से मुक्ति मिले। सोचते-सोचते उसे आखिर एक तदबीर सूझी। वह एक दिन शाम को दरिया की सैर का बहाना करके चला और रात को घर पर न आया। दूसरे दिन सुबह को एक चौकीदार ललिता के पास आया और उसे थाने में ले गया। ललिता हैरान थी कि क्या माजरा है। दिल में तरह-तरह की दुश्चिन्तायें पैदा हो रही थीं। वहाँ जाकर जो कैफियत देखी, तो दुनिया आँखों में अँधेरी हो गयी। नानकचन्द के कपड़े खून में तर-ब-तर पड़े थे। उसकी वही सुनहरी घड़ी, वही खूबसूरत छतरी, वही रेशमी साफा, सब वहाँ मौजूद था। जेब में उसके नाम के छपे हुए कार्ड थे। कोई सन्देह न रहा कि नानकचन्द को किसी ने कत्ल कर डाला। दो-तीन हफ्ते तक थाने में तहकीकातें होती रहीं और आखिरकार खूनी का पता चल गया। पुलिस के अफसरों को बड़े-बड़े इनाम मिले, इसको जासूसी का एक बड़ा आश्चर्य समझा गया। खूनी ने प्रेम की प्रतिद्वन्द्विता के जोश में यह काम किया। मगर इधर तो गरीब, बेगुनाह खूनी सूली पर चढ़ा हुआ था और वहाँ बनारस में नानकचन्द की शादी रचायी जा रही थी।

५

लाला नानकचन्द की शादी एक रईस घराने में हुई और तब धीरे-धीरे फिर वही पुराने उठने-बैठनेवाले आने शुरू हुए। फिर वही मजलिसें जमीं और फिर वही

साग़र-ओ-मीना के दौर चलने लगे। संयम का कमजोर अहाता इन विषय-वासना के बटमारों को न रोक सका। हाँ, अब इस पीने-पिलाने में कुछ परदा रखा जाता है और ऊपर से थोड़ी-सी गम्भीरता बनाये रखी जाती है। साल भर इसी बहार में गुज़रा। नवेली बहू घर में कुढ़-कुढ़कर मर गयी। तपेदिक ने उसका काम तमाम कर दिया। तब दूसरी शादी हुई। मगर इस स्त्री में नानकचन्द की सौन्दर्य-प्रेमी आँखों के लिए कोई आकर्षण न था। इनका भी वही हाल हुआ। कभी बिना रोये कौर मुँह में नहीं दिया। तीन साल में चल बसीं। तब तीसरी शादी हुई। यह औरत बहुत सुन्दर थी, अच्छे आभूषणों से सुसज्जित। उसने नानकचन्द के दिल में जगह कर ली। एक बच्चा भी पैदा हुआ और नानकचन्द गार्हस्थिक आनन्दों से परिचित होने लगा, दुनिया के नाते-रिश्ते अपनी तरफ खींचने लगे। मगर प्लेग के एक ही हमले ने सारे मंसूबे धूल में मिला दिये। पतिप्राणा स्त्री मरी, तीन बरस का प्यारा लड़का हाथ से गया और दिल पर ऐसा दाग़ छोड़ गया जिसका कोई मरहम न था। उच्छृंखलता भी चली गयी, ऐयाशी का भी खात्मा हुआ। दिल पर रंजोग़म छा गया और तबीयत संसार से विरक्त हो गयी।

६

जीवन की दुर्घटनाओं में अक्सर बड़े महत्व के नैतिक पहलू छिपे हुआ करते हैं। इन सदमों ने नानकचन्द के दिल में मरे हुए इन्सान को जगा दिया। जब वह निराशा के यातनापूर्ण अकेलेपन में पड़ा हुआ इन घटनाओं को याद करता तो उसका दिल रोने लगता और ऐसा मालूम होता कि ईश्वर ने मुझे मेरे पापों की सज़ा दी है। धीरे-धीरे यह खयाल उसके दिल में मजबूत हो गया—उफ् मैंने उस मासूम औरत पर कैसा जुल्म किया। कैसी बेरहमी की! यह उसी का दण्ड है। यह सोचते-सोचते ललिता की मासूम तस्वीर उसकी आँखों के सामने खड़ी हो जाती और प्यारे मुखड़ेवाली कमला अपने मरे हुए सौतेले भाई के साथ उसकी तरफ प्यार से दौड़ती हुई दिखायी देती। इस लम्बी अवधि में नानकचन्द को ललिता की याद तो कई बार आयी थी मगर भोग-विलास, पीने-पिलाने की उन कैफियतों ने कभी उस खयाल को जमने न दिया। एक धुँधला सा सपना दिखायी दिया और बिखर गया। मालूम नहीं, दोनों मर गयीं या ज़िन्दा हैं। अफसोस! ऐसी बेकसी की हालत में छोड़कर मैंने उनकी सुध तक न ली। उस नेकनामी पर धिक्कार है, जिसके लिए ऐसी निर्दयता की कीमत देनी पड़े। यह खयाल आखिर

उसके दिल पर इस बुरी तरह बैठा कि एक रोज़ वह कलकत्ता के लिए रवाना हो गया।

सुबह का वक्त था। वह कलकत्ते पहुँचा और अपने उसी पुराने घर को चला। सारा शहर कुछ से कुछ हो गया था। बहुत तलाश के बाद उसे अपना पुराना घर नज़र आया। उसके दिल में ज़ोर से धड़कन होने लगी और भावनाओं में हलचल पैदा हो गयी। उसने एक पड़ोसी से पूछा—इस मकान में कौन रहता है?

बूढ़ा बंगाली था, बोला—हाम यह नहीं कह सकता, कौन है कौन नहीं है। इतना बड़ा मुलुक में कौन किसको जानता है? हाँ, एक लड़की और उसका बूढ़ा माँ, दो औरत रहता है। विधवा है, कपड़े की सिलाई करता है। जबसे उसका आदमी मर गया, तबसे यही काम करके अपना पेट पालता है।

इतने में दरवाज़ा खुला और एक तेरह-चौदह साल की सुन्दर लड़की किताब लिये हुए बाहर निकली। नानकचन्द पहचान गया कि यह कमला है। उसकी आँखों में आँसू उमड़ आये, बेअख्तियार जी चाहा कि उस लड़की को छाती से लगा ले। कुबेर की दौलत मिल गयी। आवाज को सम्हालकर बोला—बेटी, जाकर अपनी अम्माँ से कह दो कि बनारस से एक आदमी आया है। लड़की अन्दर चली गयी और थोड़ी देर में ललिता दरवाज़े पर आयी। उसके चेहरे पर घूँघट था और गो सौन्दर्य की ताज़गी न थी मगर आकर्षण अब भी था। नानकचन्द ने उसे देखा और एक ठंडी साँस ली। पातिव्रत और धैर्य और निराशा की सजीव मूर्ति सामने खड़ी थी। उसने बहुत ज़ोर लगाया, मगर जब्त न हो सका, बरबस रोने लगा। ललिता ने घूँघट की आड़ से उसे देखा और आश्चर्य के सागर में डूब गयी। वह चित्र जो हृदय-पट पर अंकित था और जो जीवन के अल्पकालिक आनन्दों की याद दिलाता रहता था, जो सपनों में सामने आ-आकर कभी खुशी के गीत सुनाता था और कभी रंज के तीर चुभाता था, इस वक्त सजीव, सचल सामने खड़ा था। ललिता पर एक बेहोशी-सी छा गयी, कुछ वही हालत जो आदमी को सपने में होती है। वह व्यग्र होकर नानकचन्द की तरफ बढ़ी और रोती हुई बोली—मुझे भी अपने साथ ले चलो। मुझे अकेले किस पर छोड़ दिया है! मुझसे अब यहाँ नहीं रहा जाता।

ललिता को इस बात की ज़रा भी चेतना न थी कि वह उस व्यक्ति के सामने खड़ी है जो एक ज़माना हुआ मर चुका, वर्ना शायद वह चीखकर भागती। उस पर

एक सपने की सी हालत छायी हुई थी, मगर जब नानकचन्द ने उसे सीने से लगाकर कहा 'ललिता, अब तुमको अकेले न रहना पड़ेगा, तुम्हें इन आँखों की पुतली बनाकर रखूँगा। मैं इसीलिए तुम्हारे पास आया हूँ। मैं अब तक नरक में था, अब तुम्हारे साथ स्वर्ग का सुख भोगूँगा। तो ललिता चौंकी और छिटककर अलग हटती हुई बोली—आँखों को तो यकीन आ गया मगर दिल को नहीं आता। ईश्वर करे यह सपना न हो!

—ज़माना, जून १९१३

०

मनावन

बाबू दयाशंकर उन लोगों में थे जिन्हें उस वक्त तक सोहबत का मज़ा नहीं मिलता जब तक कि वह प्रेमिका की जबान की तेज़ी का मज़ा न उठायें। रूठे हुए को मनाने में उन्हें बड़ा आनन्द मिलता। फिरी हुई निगाहें कभी-कभी मुहब्बत के नशे की मतवाली आँखों से भी ज्यादा मोहक जान पड़तीं। कभी कभी प्रेमिका की बेरुखी और तुर्शियाँ जोश और उमंग से भी ज़्यादा आकर्षक लगतीं। झगड़ों में मिलाप से ज़्यादा मज़ा आता। पानी में हलके-हलके झकोले कैसा समाँ दिखा जाते हैं। जब तक दरिया में धीमी-धीमी हलचल न हो सैर का लुत्फ नहीं।

अगर बाबू दयाशंकर को इन दिलचस्पियों के कम मौके मिलते थे तो यह उनका क़सूर न था। गिरिजा स्वभाव से बहुत नेक और गम्भीर थी, तो भी चूँकि उसे अपने पति की रुचि का अनुभव हो चुका था इसलिए वह कभी-कभी अपनी तबीयत के खिलाफ सिर्फ उनकी खातिर से उनसे रूठ जाती थी। मगर यह बे-नींव की दीवार हवा का एक झोंका भी न सम्हाल सकती। उसकी आँखें, उसके होंठ और उसका दिल यह बहुरूपिये का खेल ज़्यादा देर तक न चला सकते। आसमान पर घटायें आतीं मगर सावन की नहीं, कुआर की। वह डरती, कहीं ऐसा न हो कि हँसी-हँसी में रोना आ जाय। आपस की बदमज़गी के खयाल से उसकी जान निकल जाती थी मगर इन मौकों पर बाबू साहब को जैसी-जैसी रिझानेवाली घातें सूझतीं वह काश विद्यार्थी जीवन में सूझी होतीं तो वह कई साल तक कानून से सिर मारने के बाद भी मामूली क्लर्क न रहते।

२

दयाशंकर को क़ौमी जलसों से बहुत दिलचस्पी थी। इस दिलचस्पी की बुनियाद उसी जमाने में पड़ी जब वह कानून की दरगाह के मुजाविर थे और वह अब तक कायम थी। रुपयों की थैली ग़ायब हो गयी थी मगर कंधों में दर्द मौजूद था। इस साल कांफ्रेन्स का जलसा सतारा में होनेवाला था। नियत तारीख से

एक रोज पहले बाबू साहब सतारा को रवाना हुए। सफ़र की तैयारियों में इतने व्यस्त थे कि गिरिजा से बातचीत करने की भी फुर्सत न मिलती थी। आनेवाली खुशियों की उम्मीद उस क्षणिक वियोग के खयाल के ऊपर भारी थी।

कैसा शहर होगा! बड़ी तारीफ सुनते हैं। दकन सौन्दर्य और संपदा की खान है। खूब सैर रहेगी। हज़रत तो इन दिल को खुश करनेवाले खयालों में मस्त थे और गिरिजा आँखों में आँसू भरे अपने दरवाज़े पर खड़ी यह कैफियत देख रही थी और ईश्वर से प्रार्थना कर रही थी कि इन्हें खैरियत से लाना। वह खुद एक हफ़्ता कैसे काटेगी, यह ख़याल बहुत ही कष्ट देनेवाला था।

गिरिजा इन विचारों में व्यस्त थी और दयाशंकर सफर की तैयारियों में। यहाँ तक कि सब तैयारियाँ पूरी हो गयीं। इक्का दरवाज़े पर आ गया। बिस्तर और ट्रंक उस पर रख दिये गये और तब विदाई भेंट की बातें होने लगीं। दयाशंकर गिरिजा के सामने आये और मुस्कराकर बोले—अब जाता हूँ।

गिरिजा के कलेजे में एक बर्छी-सी लगी। बरबस जी चाहा कि उनके सीने से लिपटकर रोऊँ। आँसुओं की एक बाढ़ सी आँखों में आती हुई मालूम हुई मगर ज़ब्त करके बोली—जाने को कैसे कहूँ, क्या वक्त आ गया?

दयाशंकर—हाँ, बल्कि देर हो रही है।

गिरिजा—मंगल को शाम की गाड़ी से आओगे न?

दयाशंकर—ज़रूर, किसी तरह नहीं रुक सकता। तुम सिर्फ उसी दिन मेरा इन्तज़ार करना।

गिरिजा—ऐसा न हो भूल जाओ। सतारा बहुत अच्छा शहर है।

दयाशंकर—(हँसकर) वह स्वर्ग ही क्यों न हो, मंगल को यहाँ ज़रूर आ जाऊँगा। दिल बराबर यहीं रहेगा। तुम ज़रा भी न घबराना।

यह कहकर गिरिजा को गले लगा लिया और मुस्कराते हुए बाहर निकल आये। इक्का रवाना हो गया। गिरिजा पलँग पर बैठ गयी और खूब रोयी। मगर इस वियोग के दुख, आँसुओं की बाढ़, अकेलेपन के दर्द और तरह-तरह के भावों की भीड़ के साथ एक और खयाल दिल में बैठा हुआ था जिसे वह बार-बार हटाने की कोशिश करती थी—क्या इनके पहलू में दिल नहीं है! या है तो उस पर उन्हें पूरा-पूरा अधिकार है? वह मुस्कराहट जो विदा होते वक्त दयाशंकर के चेहरे पर लग रही थी, गिरिजा की समझ में नहीं आती थी।

३

सतारा में बड़ी धूमधाम थी। दयाशंकर गाड़ी से उतरे तो वर्दीपोश वालंटियरों ने उनका स्वागत किया। एक फिटन उनके लिए तैयार खड़ी थी। उस पर बैठकर वह कांफ्रेन्स पंडाल की तरफ चले। दोनों तरफ झंडियाँ लहरा रही थीं। दरवाज़े पर बन्दनवारें लटक रही थीं। औरतें अपने झरोखों से और मर्द बरामदों में खड़े हो-होकर खुशी से तालियाँ बजाते थे। इस शान-शौकत के साथ वह पंडाल में पहुँचे और एक खूबसूरत खेमे में उतरे। यहाँ सब तरह की सुविधाएँ एकत्र थीं। दस बजे कांफ्रेन्स शुरू हुई। वक्ता अपनी-अपनी भाषा के जलवे दिखाने लगे। किसी के हँसी-दिल्लगी से भरे हुए चुटकुलों पर वाह-वाह की धूम मच गयी, किसी की आग बरसानेवाली तकरीर ने दिलों में जोश की एक लहर-सी पैदा कर दी। विद्वत्तापूर्ण भाषणों के मुकाबले में हँसी-दिल्लगी और बात कहने की खूबी को लोगों ने ज्यादा पसन्द किया। श्रोताओं को उन भाषणों में थियेटर के गीतों का-सा आनन्द आता था।

कई दिन तक यही हालत रही और भाषणों की दृष्टि से कांफ्रेन्स को शानदार कामयाबी हासिल हुई। आखिरकार मंगल का दिन आया। बाबू साहब वापसी की तैयारियाँ करने लगे। मगर कुछ ऐसा संयोग हुआ कि आज उन्हें मजबूरन ठहरना पड़ा। बम्बई और यू० पी० के डेलीगेटों में एक हाकी मैच की ठहर गयी। बाबू दयाशंकर हाकी के बहुत अच्छे खिलाड़ी थे। वह भी टीम में दाखिल कर लिये गये थे। उन्होंने बहुत कोशिश की कि अपना गला छुड़ा लूँ मगर दोस्तों ने इनकी आनाकानी पर बिलकुल ध्यान न दिया। एक साहब जो ज्यादा बेतकल्लुफ थे, बोले—आखिर तुम्हें इतनी जल्दी क्यों है? तुम्हारा दफ्तर अभी हफ़्ता भर बंद है। बीवी साहबा की नाराज़गी के सिवा मुझे इस जल्दबाज़ी का कोई कारण नहीं दिखायी पड़ता। दयाशंकर ने जब देखा कि जल्दी ही मुझपर बीवी का गुलाम होने की फबतियाँ कसी जानेवाली हैं, जिससे ज्यादा अपमानजनक बात मर्द की शान में कोई दूसरी नहीं कही जा सकती, तो उन्होंने बचाव की कोई सूरत न देखकर वापसी मुल्तवी कर दी और हाकी में शरीक हो गये। मगर दिल में यह पक्का इरादा कर लिया कि शाम की गाड़ी से ज़रूर चले जायेंगे, फिर चाहे कोई बीवी का गुलाम नहीं, बीवी के गुलाम का बाप कहे, एक न मानेंगे।

खैर पाँच बजे खेल शुरू हुआ। दोनों तरफ के खिलाड़ी बहुत तेज़ थे जिन्होंने हाकी खेलने के सिवा ज़िन्दगी में और कोई काम ही नहीं किया। खेल बड़े जोश और

सरगर्मी से होने लगा। कई हज़ार तमाशाई जमा थे। उनकी तालियाँ और बढ़ावे खिलाड़ियों पर मारू बाजे का काम कर रहे थे और गेंद किसी अभागे की किस्मत की तरह इधर-उधर ठोकरें खाता फिरता था। दयाशंकर के हाथों की तेज़ी और सफाई, उनकी पकड़ और बेऐब निशानेबाज़ी पर लोग हैरान थे, यहाँ तक कि जब वक्त ख़त्म होने में सिर्फ एक मिनट बाकी रह गया था और दोनों तरफ के लोग हिम्मतें हार चुके थे तो दयाशंकर ने गेंद लिया और बिजली की तरह विरोधी पक्ष के गोल पर पहुँच गये। एक पटाखे की आवाज़ हुई, चारों तरफ से गोल का नारा बुलन्द हुआ। इलाहाबाद की जीत हुई और इस जीत का सेहरा दयाशंकर के सिर था—जिसका नतीजा यह हुआ कि बेचारे दयाशंकर को उस वक्त भी रुकना पड़ा और सिर्फ इतना ही नहीं, सतारा अमेचर क्लब की तरफ से इस जीत की बधाई में एक नाटक खेलने का प्रस्ताव हुआ जिससे बुध के रोज़ भी रवाना होने की कोई उम्मीद बाक़ी न रही। दयाशंकर ने दिल में बहुत पेचोताब खाया मगर ज़बान से क्या कहते। बीवी का गुलाम कहलाने का डर ज़बान बन्द किये हुए था। हालाँकि उनका दिल कह रहा था कि अब की देवी रूठेंगी तो सिर्फ खुशामदों से न मानेंगी।

४

बाबू दयाशंकर वादे के रोज़ के तीन दिन बाद मकान पर पहुँचे। सतारा से गिरिजा के लिए कई अनूठे तोहफ़े लाये थे। मगर उसने इन चीज़ों को कुछ इस तरह देखा कि जैसे उनसे उसका जी भर गया है। उसका चेहरा उतरा हुआ था और होंठ सूखे थे। दो दिन से उसने कुछ नहीं खाया था। अगर चलते वक्त दया शंकर की आँखों से आँसू की चन्द बूँदें टपक पड़ी होतीं या कम से कम चेहरा कुछ उदास और आवाज़ कुछ भारी हो गयी होती तो शायद गिरिजा उनसे न रूठती। आँसुओं की चन्द बूँदें उसके दिल में इस ख़याल को तरो-ताजा रखतीं कि उनके न आने का कारण चाहे और कुछ हो निष्ठुरता हरगिज़ नहीं है। शायद हाल पूछने के लिए उसने तार दिया होता और अपने पति को अपने सामने खैरियत से देखकर वह बरबस उनके सीने से जा चिमटती और देवताओं की कृतज्ञ होती। मगर आँखों की वह बेमौक़ा कंजूसी और चेहरे की वह निष्ठुर मुस्कान इस वक्त उसके पहलू में खटक रही थी। दिल में यह ख़याल जम गया था कि मैं चाहे इनके लिए मर भी मिटूँ मगर इन्हें मेरी परवाह नहीं है। दोस्तों का आग्रह और ज़िद केवल बहाना है। कोई ज़बरदस्ती किसी को रोक नहीं सकता। खूब! मैं तो रात की रात बैठकर काटूँ और वहाँ मज़े उड़ाये जायँ!

बाबू दयाशंकर को रूठों के मनाने में विशेष दक्षता थी और इस मौक़े पर उन्होंने कोई बात, कोई कोशिश उठा नहीं रक्खी। तोहफ़े तो लाये थे मगर उनका जादू न चला। तब हाथ जोड़कर एक पैर से खड़े हुए, गुदगुदाया, तलुवे सहलाये, कुछ शोखी और शरारत की, दस बजे तक इन्हीं सब बातों में लगे रहे। इसके बाद खाने का वक्त आया। आज उन्होंने रूखी रोटियाँ बड़े शौक से और मामूली से कुछ ज्यादा खायीं—गिरिजा आज हफ्ते भर के बाद रोटियाँ नसीब हुई हैं, सतारे में रोटियों को तरस गये। पूड़ियाँ खाते-खाते आँतों में बायगोले पड़ गये। यक़ीन मानो गिरिजन, वहाँ कोई आराम न था, न कोई सैर, न कोई लुत्फ़। सैर और लुत्फ तो महज़ अपने दिल की कैफियत पर मुनहसर है। बेफिक्री हो तो चटियल मैदान में बाग़ का मज़ा आता है और तबीयत को कोई फिक्र हो तो बाग़ वीराने से भी ज्यादा उजाड़ मालूम होता है। कम्बख्त दिल तो हरदम यहीं धरा रहता था, वहाँ मज़ा क्या खाक आता। तुम चाहे इन बातों को केवल बनावट समझ लो, क्योंकि मैं तुम्हारे सामने दोषी हूँ और तुम्हें अधिकार है कि मुझे झूठा, मक्कार, दग़ाबाज़, बेवफ़ा, बात बनानेवाला जो चाहे समझ लो, मगर सच्चाई यही है जो मैं कह रहा हूँ। मैं जो अपना वादा पूरा नहीं कर सका, उसका कारण दोस्तों की ज़िद थी।

दयाशंकर ने रोटियों की खूब तारीफ़ की क्योंकि पहले कई बार यह तरकीब फ़ायदेमन्द साबित हुई थी, मगर आज यह मन्त्र भी कारगर न हुआ और गिरिजा के तेवर बदले ही रहे।

तीसरे पहर दयाशंकर गिरिजा के कमरे में गये और पंखा झलने लगे; यहाँ तक कि गिरिजा झुँझलाकर बोल उठी—अपनी नाज़बरदारियाँ अपने ही पास रखिये। मैंने हुजूर से भर पाया। मैं तुम्हें पहचान गयी, अब धोखा नहीं खाने की। मुझे न मालूम था कि मुझसे आप यों दग़ा करेंगे। ग़रज़ जिन शब्दों में बेवफ़ाइयों और निष्ठुरताओं की शिकायतें हुआ करती हैं वह सब इस वक़्त गिरिजा ने खर्च कर डाले।

५

शाम हुई। शहर की गलियों में मोतिये और बेले की लपटें आने लगीं। सड़कों पर छिड़काव होने लगा और मिट्टी की सोंधी खुशबू उड़ने लगी। गिरिजा खाना पकाने जा रही थी कि इतने में उसके दरवाज़े पर एक इक्का आकर रुका और उसमें से एक औरत उतर पड़ी। उसके साथ एक महरी थी। उसने ऊपर आकर गिरिजा से कहा—बहू जी, आपकी सखी आ रही हैं।

यह सखी पड़ोस में रहनेवाली अहलमद साहब की बीवी थीं। अहलमद साहब बूढ़े आदमी थे। उनकी पहली शादी उस वक़्त हुई थी, जब दूध के दाँत न टूटे थे। दूसरी शादी संयोग से उस ज़माने में हुई जब मुँह में एक दाँत भी बाक़ी न था। लोगों ने बहुत समझाया कि अब आप बूढ़े हुए, शादी न कीजिए, ईश्वर ने लड़के दिये हैं, बहुएँ हैं, आपको किसी बात की तकलीफ़ नहीं हो सकती। मगर अहलमद साहब खुद बुढ्ढे और दुनिया देखे हुए आदमी थे, इन शुभचिंतकों की सलाहों का जवाब व्यावहारिक उदाहरणों से दिया करते थे—क्यों, क्या मौत को बूढ़ों से कोई दुश्मनी है? बूढ़े ग़रीब उसका क्या बिगाड़ते हैं। हम बाग़ में जाते हैं तो मुरझाये हुए फूल नहीं तोड़ते, हमारी आँखें तरो-ताज़ा, हरे-भरे ख़ूबसूरत फूलों पर पड़ती हैं। कभी-कभी गजरे वग़ैरह बनाने के लिए कलियाँ भी तोड़ ली जाती हैं। यही हालत मौत की है। क्या यमराज को इतनी समझ भी नहीं है। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि जवान और बच्चे बूढ़ों से ज़्यादा मरते हैं। मैं अभी ज्यों का त्यों हूँ, मेरे तीन जवान भाई, पाँच बहनें, बहनों के पति, तीनों भावजें, चार बेटे, पाँच बेटियाँ, कई भतीजे, सब मेरी आँखों के सामने इस दुनिया से चल बसे। मौत सबको निगल गयी मगर मेरा बाल बाँका न कर सकी। यह ग़लत, बिलकुल ग़लत है कि बूढ़े आदमी जल्द मर जाते हैं। और असल बात तो यह है कि जवान बीवी की ज़रूरत बुढ़ापे में ही होती है। बहुएँ मेरे सामने निकला न चाहें और न निकल सकती हैं, भावजें खुद बूढ़ी हुईं, छोटे भाई की बीवी मेरी परछाईं भी नहीं देख सकती हैं, बहनें अपने-अपने घर हैं, लड़के सीधे मुँह बात नहीं करते। मैं ठहरा बूढ़ा, बीमार पड़ूँ तो पास कौन फटके, एक लोटा पानी कौन दे, देखूँ किसकी आँख से, जी कैसे बहलाऊँ! क्या आत्महत्या कर लूँ! या कहीं डूब मरूँ! इन दलीलों के मुक़ाबिले में किसी की ज़बान न खुलती थी।

ग़रज़ इस नयी अहलमदिन और गिरिजा में कुछ बहनापा-सा हो गया था, कभी-कभी उससे मिलने आ जाया करती थी। अपने भाग्य पर सन्तोष करनेवाली स्त्री थी, कभी शिकायत या रंज की एक बात ज़बान से न निकालती। एक बार गिरिजा ने मज़ाक में कहा था कि बूढ़े और जवान का मेल अच्छा नहीं होता। इस पर वह नाराज़ हो गयी और कई दिन तक न आयी। गिरिजा महरी को देखते ही फ़ौरन आँगन में निकल आयी और गो उसे इस वक़्त मेहमान का आना नागवार गुज़रा मगर महरी से बोली—बहन, अच्छी आयीं, दो घड़ी दिल बहलेगा।

ज़रा देर में अहलमदिन साहब गहने से लदी हुई, घूँघट निकाले, छमछम करती

हुई आँगन में आकर खड़ी हो गयीं। गिरिजा ने क़रीब आकर कहा—वाह सखी, आज तो तुम दुलहिन बनी हो। मुझसे पर्दा करने लगी हो क्या! यह कहकर उसने घूँघट हटा दिया और सखी का मुँह देखते ही चौंककर एक क़दम पीछे हट गयी। दयाशंकर ने ज़ोर से क़हक़हा लगाया और गिरिजा को सीने से लिपटा लिया और विनती के स्वर में बोले—गिरजन, अब मान जाओ, ऐसी ख़ता फिर कभी न होगी। मगर गिरजन अलग हट गयी और रुखाई से बोली—तुम्हारा बहुरूप बहुत देख चुकी, अब तुम्हारा असली रूप देखना चाहती हूँ।

६

दयाशंकर प्रेम-नदी की हलकी-हलकी लहरों का आनन्द तो ज़रूर उठाना चाहते थे मगर तूफ़ान से उनकी तबीयत भी उतना ही घबराती थी जितना गिरिजा की, बल्कि शायद उससे भी ज़्यादा। हृदय-परिवर्तन के जितने मन्त्र उन्हें याद थे वह सब उन्होंने पढ़े और उन्हें कारगर न होते देखकर आखिर उनकी तबीयत को भी उलझन होने लगी। यह वे मानते थे कि बेशक मुझसे ख़ता हुई है मगर ख़ता उनके खयाल में ऐसी दिल जलानेवाली सज़ाओं के क़ाबिल न थी। मनाने की कला में वह ज़रूर सिद्धहस्त थे मगर इस मौक़े पर उनकी अक्ल ने कुछ काम न दिया। उन्हें ऐसा कोई जादू नज़र नहीं आता था जो उठती हुई काली घटाओं और ज़ोर पकड़ते हुए झोंकों को रोक दे। कुछ देर तक वह इन्हीं ख़यालों में खामोश खड़े रहे और फिर बोले—आखिर गिरजन, अब तुम क्या चाहती हो।

गिरिजा ने अत्यन्त सहानुभूतिशून्य बेपरवाही से मुँह फेरकर कहा—कुछ नहीं।

दयाशंकर—नहीं, कुछ तो ज़रूर चाहती हो वर्ना चार दिन तक बिना दाना-पानी के रहने का क्या मतलब! क्या मुझ पर जान देने की ठानी है? अगर यही फैसला है तो बेहतर है तुम यों जान दो और मैं क़त्ल के जुर्म में फाँसी पाऊँ, किस्सा तमाम हो जाय। अच्छा होगा, बहुत अच्छा होगा, दुनिया की परेशानियों से छुटकारा हो जायगा।

यह मन्तर बिलकुल बेअसर न रहा। गिरिजा आँखों में आँसू भरकर बोली—तुम खामखाह मुझसे झगड़ना चाहते हो और मुझे झगड़े से नफ़रत है। मैं न तुमसे बोलती हूँ और न चाहती हूँ कि तुम मुझसे बोलने की तकलीफ़ गवारा करो। क्या आज शहर में कहीं नाच नहीं होता, कहीं हाकी मैच नहीं है, कहीं शतरंज नहीं बिछी

हुई है। वहीं तुम्हारी तबीयत जमती है, आप वहीं जाइए, मुझे अपने हाल पर रहने दीजिए। मैं बहुत अच्छी तरह हूँ।

दयाशंकर करुण स्वर में बोले—क्या तुमने मुझे ऐसा बेवफ़ा समझ लिया है?

गिरिजा—जी हाँ, मेरा तो यही तजुर्बा है।

दयाशंकर—तो तुम सख्त ग़लती पर हो। अगर तुम्हारा यही खयाल है तो मैं कह सकता हूँ कि औरतों की अंन्तर्दृष्टि के बारे में जितनी बातें सुनी हैं वह सब ग़लत हैं। गिरजन, मेरे भी दिल है...

गिरिजा ने बात काटकर कहा—सच, आपके भी दिल है यह आज नयी बात मालूम हुई!

दयाशंकर कुछ झेंपकर बोले—खैर, जैसा तुम समझो। मेरे दिल न सही, मेरे जिगर न सही, दिमाग़ तो साफ़ ज़ाहिर है कि ईश्वर ने मुझे नहीं दिया वर्ना वकालत में फ़ेल क्यों होता। तो गोया मेरे शरीर में सिर्फ पेट है, मैं सिर्फ खाना जानता हूँ और सचमुच है भी ऐसा ही, तुमने मुझे कभी फ़ाक़ा करते नहीं देखा। तुमने कई बार दिन-दिन भर कुछ नहीं खाया है, मैं पेट भरने से कभी बाज़ नहीं आया। लेकिन कई बार ऐसा भी हुआ है कि दिल और जिगर जिस कोशिश में असफल रहे वह इसी पेट ने पूरी कर दिखायी या यों कहो कि कई बार इसी पेट ने दिल और दिमाग़ और जिगर का काम कर दिखाया है और मुझे अपने इस अजीब पेट पर कुछ गर्व होने लगा था मगर अब मालूम हुआ कि मेरे पेट की बेहयाइयाँ लोगों को बुरी मालूम होती हैं....इस वक़्त मेरा खाना न बने। मैं कुछ न खाऊँगा।

गिरिजा ने पति की तरफ देखा, चेहरे पर हलकी-सी मुस्कराहट थी, वह यह कह रही थी कि यह आखिरी बात तुम्हें ज़्यादा सम्हलकर कहनी चाहिए थी। गिरिजा और औरतों की तरह यह भूल जाती थी कि मर्दों की आत्मा को भी कष्ट हो सकता है। उसके खयाल में कष्ट का मतलब शारीरिक कष्ट था। उसने दयाशंकर के साथ और चाहे जो रियायत की हो, खिलाने-पिलाने में उसने कभी भी रियायत नहीं की और जब तक खाने की दैनिक मात्रा उनके पेट में पहुँचती जाय उसे उनकी तरफ़ से कोई ज़्यादा अन्देशा नहीं होता था। हज़म करना दयाशंकर का काम था। सच पूछिये तो गिरिजा ही की सख़्तियों ने उन्हें हाकी का शौक दिलाया वर्ना अपने और सैकड़ों भाइयों की तरह उन्हें दफ्तर से आकर हुक्के और शतरंज से ज़्यादा मनोरंजन होता था। गिरिजा ने यह धमकी सुनी तो त्योरियाँ चढ़ाकर बोली—अच्छी बात है, न बनेगा।

दयाशंकर दिल में कुछ झेंप-से गये। उन्हें इस बेरहम जवाब की उम्मीद न थी। अपने कमरे में जाकर अखबार पढ़ने लगे। इधर गिरिजा हमेशा की तरह खाना पकाने में लग गयी। दयाशंकर का दिल इतना टूट गया था कि उन्हें खयाल भी न था कि गिरिजा खाना पका रही होगी। इसलिए जब नौ बजे के क़रीब उसने आकर कहा कि चलो खाना खा लो तो वह ताज्जुब से चौंक पड़े मगर यह यक़ीन आ गया कि मैंने बाज़ी मार ली। जी हरा हुआ, फिर भी ऊपर से रुखाई से कहा—मैंने तो तुमसे कह दिया था कि आज कुछ न खाऊँगा।

गिरिजा—चलो थोड़ा-सा खा लो।

दयाशंकर—मुझे ज़रा भी भूख नहीं है।

गिरिजा—क्यों? आज भूख क्यों नहीं लगी?

दयाशंकर—तुम्हें तीन दिन से क्यों भूख नहीं लगी?

गिरिजा—मुझे तो इस वजह से नहीं लगी कि तुमने मेरे दिल को चोट पहुँचायी थी।

दयाशंकर—मुझे भी इस वजह से नहीं लगी कि तुमने मुझे तकलीफ दी है।

दयाशंकर ने रुखाई के साथ यह बातें कहीं और अब गिरिजा उन्हें मनाने लगी। फौरन पाँसा पलट गया। अभी एक ही क्षण पहले वह उसकी खुशामदें कर रहे थे, मुजरिम की तरह उसके सामने हाथ बाँधे खड़े थे, गिड़गिड़ा रहे थे, मिन्नतें करते थे और अब बाज़ी पलटी हुई थी, मुजरिम इन्साफ की मसनद पर बैठा हुआ था। मुहब्बत की राहें मकड़ी के जालों से भी पेचीदा हैं।

दयाशंकर ने दिल में प्रतिज्ञा की थी कि मैं भी इसे इतना ही हैरान करूँगा जितना इसने मुझे किया है और थोड़ी देर तक वह योगियों की तरह स्थिरता के साथ बैठे रहे। गिरिजा ने उन्हें गुदगुदाया, तलुवे खुजलाये, उनके बालों में कंघी की, कितनी ही लुभानेवाली अदाएँ खर्च कीं मगर असर न हुआ। तब उसने अपनी दोनों बाँहें उनकी गर्दन में डाल दीं और याचना और प्रेम से भरी हुई आँखें उठाकर बोलीं—चलो मेरी क़सम खा लो।

फूस की बाँध बह गयी। दयाशंकर ने गिरिजा को गले से लगा लिया। उसके भोलेपन और भावों की सरलता ने उनके दिल पर एक अजीब दर्दनाक असर पैदा किया। उनकी आँखें भी गीली हो गयीं। आह मैं कैसा ज़ालिम हूँ, मेरी बेवफ़ाइयों ने इसे कितना रुलाया है, तीन दिन तक इसके आँसू नहीं थमे, आँखें नहीं झपकीं, तीन दिन तक इसने दाने की सूरत नहीं देखी मगर मेरे एक ज़रा से इनकार

ने, झूठे नक़ली इनकार ने, चमत्कार कर दिखाया। कैसा कोमल हृदय है। गुलाब की पंखुड़ी की तरह, जो मुरझा जाती है मगर मैली नहीं होती। कहाँ मेरा ओछापन, खुदग़र्ज़ी और कहाँ यह बेख़ुदी, यह त्याग, यह साहस।

दयाशंकर के सीने से लिपटी हुई गिरिजा उस वक़्त अपने प्रबल आकर्षण से उनके दिल को खींचे लेती थी। उसने जीती हुई बाज़ी हारकर आज अपने पति के दिल पर कब्ज़ा पा लिया। इतनी ज़बर्दस्त जीत उसे कभी न हुई थी। आज दयाशंकर को मुहब्बत और भोलेपन की इस मूरत पर जितना गर्व था उसका अनुमान लगाना कठिन है। ज़रा देर में वह उठ खड़े हुए और बोले—एक शर्त पर चलूँगा।

गिरिजा—क्या ?

दयाशंकर—अब कभी मत रूठना।

गिरिजा—यह तो टेढ़ी शर्त है मगर. . .मंजूर है।

दो-तीन क़दम चलने के बाद गिरिजा ने उनका हाथ पकड़ लिया और बोली—तुम्हें भी मेरी एक शर्त माननी पड़ेगी।

दयाशंकर—मैं समझ गया। तुमसे सच कहता हूँ, अब ऐसा न होगा।

दयाशंकर ने आज गिरिजा को भी अपने साथ खिलाया। वह बहुत लजायी, बहुत हीले किये, कोई सुनेगा तो क्या कहेगा, यह तुम्हें क्या हो गया है। मगर दयाशंकर ने एक न मानी और कई कौर गिरिजा को अपने हाथ से खिलाये और हर बार अपनी मुहब्बत का बेदर्दी के साथ मुआवज़ा लिया।

खाते-खाते उन्होंने हँसकर गिरिजा से कहा—मुझे न मालूम था कि तुम्हें मनाना इतना आसान है ?

गिरिजा ने नीची निगाहों से देखा और मुस्करायी, मगर मुँह से कुछ न बोली।

—उर्दू 'प्रेम पचीसी' से

अंधेर

नागपंचमी आयी। साठे के ज़िन्दादिल नौजवानों ने रंग-बिरंगे जाँघिये बनवाये। अखाड़े में ढोल की मर्दाना सदायें गूँजने लगीं। आसपास के पहलवान इकट्ठे हुए और अखाड़े पर तम्बोलियों ने अपनी दुकानें सजायीं क्योंकि आज कुश्ती और दोस्ताना मुकाबले का दिन है। औरतों ने गोबर से अपने आँगन लीपे और गाती-बजाती कटोरों में दूध-चावल लिये नाग पूजने चलीं।

साठे और पाठे दो लगे हुए मौज़े थे। दोनों गंगा के किनारे। खेती में ज़्यादा मशक्कत नहीं करनी पड़ती थी इसीलिए आपस में फौजदारियाँ खूब होती थीं। आदिकाल से उनके बीच होड़ चली आती थी। साठेवालों को यह घमण्ड था कि उन्होंने पाठेवालों को कभी सिर न उठाने दिया। उसी तरह पाठेवाले अपने प्रतिद्वन्द्वियों को नीचा दिखलाना ही ज़िन्दगी का सबसे बड़ा काम समझते थे। उनका इतिहास विजयों की कहानियों से भरा हुआ था। पाठे के चरवाहे यह गीत गाते हुए चलते थे—

साठेवाले कायर सगरे पाठेवाले हैं सरदार

और साठे के धोबी गाते—

साठेवाले साठ हाथ के जिनके हाथ सदा तरवार।
उन लोगन के जनम नसाये जिन पाठे मान लीन अवतार॥

ग़रज़ आपसी होड़ का यह जोश बच्चों में माँ के दूध के साथ दाखिल होता था और उसके प्रदर्शन का सबसे अच्छा और ऐतिहासिक मौक़ा यही नागपंचमी का दिन था। इस दिन के लिए साल भर तैयारियाँ होती रहती थीं। आज उनमें मार्के की कुश्ती होनेवाली थी। साठे को गोपाल पर नाज़ था, पाठे को बलदेव का ग़र्रा। दोनों सूरमा अपने-अपने फ़रीक़ की दुआएँ और आरजुएँ लिये हुए अखाड़े में उतरे। तमाशाइयों पर चुम्बक का-सा असर हुआ। मौज़े के चौकीदारों ने लट्ठ और डण्डों का यह जमघट देखा और मर्दों की अंगारे की तरह लाल आँखें तो पिछले अनुभव के आधार पर बेपता हो गये। इधर अखाड़े में दाँव-पेंच होते रहे। बलदेव

उलझता था, गोपाल पैंतरे बदलता था। उसे अपनी ताक़त का ज़ोम था, इसे अपने करतब का भरोसा। कुछ देर तक अखाड़े से ताल ठोंकने की आवाज़ें आती रहीं, तब यकायक बहुत से आदमी ख़ुशी के नारे मार-मार उछलने लगे, कपड़े और बर्तन और पैसे और बताशे लुटाये जाने लगे। किसी ने अपना पुराना साफा फेंका, किसी ने अपनी बोसीदा टोपी हवा में उड़ा दी। साठे के मनचले जवान अखाड़े में पिल पड़े। और गोपाल को गोद में उठा लाये। बलदेव और उसके साथियों ने गोपाल को लहू की आँखों से देखा और दाँत पीसकर रह गये।

२

दस बजे रात का वक़्त और सावन का महीना। आसमान पर काली घटाएँ छायी हुई थीं। अँधेरे का यह हाल था कि जैसे रोशनी का अस्तित्व ही नहीं रहा। कभी-कभी बिजली चमकती थी मगर अँधेरे को और ज़्यादा अँधेरा करने के लिए। मेढकों की आवाज़ें ज़िन्दगी का पता देती थीं वर्ना चारों तरफ मौत थी। खामोश, डरावने और गम्भीर साठे के झोंपड़े और मकान इस अँधेरे में बहुत ग़ौर से देखने पर काली-काली भेड़ों की तरह नज़र आते थे। न बच्चे रोते थे, न औरतें गाती थीं। पवित्रात्मा बुड्ढे राम नाम न जपते थे।

मगर आबादी से बहुत दूर कई पुरशोर नालों और ढाक के जंगलों से गुज़रकर ज्वार और बाजरे के खेत थे और उनकी मेंड़ों पर साठे के किसान जगह-जगह मड़ैया डाले खेतों की रखवाली कर रहे थे। तले ज़मीन, ऊपर अँधेरा, मीलों तक सन्नाटा छाया हुआ। कहीं जंगली सुअरों के गोल, कहीं नीलगायों के रेवड़, चिलम के सिवा कोई साथी नहीं, आग के सिवा कोई मददगार नहीं। ज़रा खटका हुआ और चौंक पड़े। अँधेरा भय का दूसरा नाम है, जब मिट्टी का एक ढेर, एक ठूंठा पेड़ और घास का एक ढेर भी जानदार चीजें बन जाती हैं। अँधेरा उनमें जान डाल देता है। लेकिन यह मज़बूत हाथोंवाले, मज़बूत जिगरवाले, मज़बूत इरादेवाले किसान हैं कि यह सब सख्तियाँ झेलते हैं ताकि अपने ज्यादा भाग्यशाली भाइयों के लिए भोग-विलास के सामान तैयार करें। इन्हीं रखवालों में आज का हीरो, साठे का गौरव गोपाल भी है जो अपनी मड़ैया में बैठा हुआ है और नींद को भगाने के लिए धीमे सुरों में यह गीत गा रहा है—

मैं तो तोसे नैना लगाय पछतायी रे

अचानक उसे किसी के पाँव की आहट मालूम हुई। जैसे हिरन कुत्तों की आवाज़ों को कान लगाकर सुनता है उसी तरह गोपाल ने भी कान लगाकर सुना।

नींद की औंघाई दूर हो गयी। लट्ठ कंधे पर रक्खा और मड़ैया से बाहर निकल आया। चारों तरफ कालिमा छायी हुई थी और हलकी-हलकी बूँदें पड़ रही थीं। वह बाहर निकला ही था कि उसके सर पर लाठी का भरपूर हाथ पड़ा। वह त्योरा-कर गिरा और रात भर वहीं बेसुध पड़ा रहा। मालूम नहीं उस पर कितनी चोटें पड़ीं। हमला करनेवालों ने तो अपनी समझ में उसका काम तमाम कर डाला। लेकिन ज़िन्दगी बाक़ी थी। यह पाठे के ग़ैरतमन्द लोग थे जिन्होंने अँधेरे की आड़ में अपनी हार का बदला लिया था।

३

गोपाल जाति का अहीर था, न पढ़ा न लिखा, बिलकुल अक्खड़। दिमाग़ रौशन ही नहीं हुआ तो शरीर का दीपक क्यों घुलता। पूरे छः फ़ुट का क़द, गठा हुआ बदन, ललकारकर गाता तो सुननेवाले मील भर पर बैठे हुए उसकी तानों का मज़ा लेते। गाने-बजाने का आशिक़, होली के दिनों में महीने भर तक गाता, सावन में मलार और भजन तो रोज़ का शग़ल था। निडर ऐसा कि भूत और पिशाच के अस्तित्व पर उसे विद्वानों जैसे सन्देह थे। लेकिन जिस तरह शेर और चीते भी लाल लपटों से डरते हैं उसी तरह लाल पगड़ी से उसकी रूह काँपने लगती थी। अगरचे साठे के एक हिम्मती सूरमा के लिए यह बेमतलब डर असाधारण बात थी लेकिन उसका कुछ बस न था। सिपाही की वह डरावनी तस्वीर जो बचपन में उसके दिल पर खींची गयी थी, पत्थर की लकीर बन गयी थी। शरारतें गयीं, बचपन गया, मिठाई की भूख गयी लेकिन सिपाही की तस्वीर अभी तक क़ायम थी। आज उसके दरवाज़े पर लाल पगड़ीवालों की एक फ़ौज जमा थी लेकिन गोपाल ज़ख्मों से चूर, दर्द से बेचैन होने पर भी अपने मकान के एक अँधेरे कोने में छिपा हुआ बैठा था। नम्बरदार और मुखिया, पटवारी और चौकीदार रोब खाये हुए ढंग से खड़े दारोग़ा की ख़ुशामद कर रहे थे। कहीं अहीर की फ़रियाद सुनायी देती थी, कहीं मोदी का रोना-धोना, कहीं तेली की चीख-पुकार, कहीं क़साई की आँखों से लहू जारी। कलवार खड़ा अपनी क़िस्मत को रो रहा था। फोहश और गन्दी बातों की गर्मबाज़ारी थी। दारोग़ा जी निहायत कारगुज़ार अफसर थे, गालियों में बात करते थे। सुबह को चारपाई से उठते ही गालियों का वज़ीफ़ा पढ़ते थे। मेहतर ने आकर फ़रियाद की—हुज़ूर, अण्डे नहीं हैं, दारोग़ा जी हण्टर लेकर दौड़े और उस ग़रीब का भुरकुस निकाल दिया। सारे गाँव में हलचल पड़ी हुई थी। कानिस्टिबिल और चौकीदार रास्तों पर यों अकड़ते चलते थे गोया अपनी ससुराल में आये हैं।

जब गाँव के सारे आदमी आ गये तो दारोग़ा जी ने अफ़सरी शान से फरमाया—मौज़े में ऐसी संगीन वारदात हुई और इस कम्बख़्त गोपाल ने रपट तक न की।

मुखिया साहब बेद की तरह काँपते हुए बोले—हजूर, अब माफी दी जाय।

दारोग़ा जी ने ग़ज़बनाक निगाहों से उसकी तरफ देखकर कहा—यह उसकी शरारत है। दुनिया जानती है कि जुर्म को छुपाना जुर्म करने के बराबर है। मैं इस बदमाश को इसका मज़ा चखा दूँगा। वह अपनी ताक़त के ज़ोम में भूला हुआ है, और कोई बात नहीं। लातों के भूत बातों से नहीं मानते।

मुखिया साहब ने सिर झुकाकर कहा—हजूर, अब माफी दी जाय।

दारोग़ा जी की त्योरियाँ चढ़ गयीं और झुँझलाकर बोले—अरे हजूर के बच्चे कुछ सठिया तो नहीं गया है। अगर इसी तरह माफी देनी होती तो मुझे क्या कुत्ते ने काटा था कि यहाँ तक दौड़ा आता। न कोई मामला, न मामले की बात, बस माफी की रट लगा रक्खी है। मुझे ज़्यादा फुरसत नहीं है। मैं नमाज़ पढ़ता हूँ, तब तक तुम अपना सलाह-मशविरा कर लो और मुझे हँसी-खुशी रुख़सत करो वर्ना ग़ौसखाँ को जानते हो, उसका मारा पानी भी नहीं माँगता!

दारोग़ा तक़वे व तहारत के बड़े पाबन्द थे। पांचों वक़्त की नमाज़ पढ़ते और तीसो रोज़े रखते, ईदों में धूमधाम से क़ुर्बानियाँ होतीं। इससे अच्छा आचरण किसी आदमी में और क्या हो सकता है!

४

मुखिया साहब दबे पाँव गुपचुप ढंग से गौरा के पास आये और बोले—यह दरोग़ा बड़ा काफिर है, पचास से नीचे तो बात ही नहीं करता। अव्वल दर्जे का थानेदार है। मैंने बहुत कहा, हजूर ग़रीब आदमी है, घर में कुछ सुभीता नहीं, मगर वह एक नहीं सुनता।

गौरा ने घूँघट में मुँह छिपाकर कहा—दादा, उनकी जान बच जाय, कोई तरह की आँच न आने पाये, रुपये पैसे की कौन बात है, इसी दिन के लिए तो कमाया जाता है।

गोपाल खाट पर पड़ा यह सब बातें सुन रहा था। अब उससे न रहा गया। लकड़ी गाँठ ही पर टूटती है। जो गुनाह किया नहीं गया वह दबता है मगर कुचला नहीं जा सकता। वह जोश से उठ बैठा और बोला—पचास रुपये की कौन कहे, मैं पचास कौड़ियाँ भी न दूँगा। कोई गदर है, मैंने कसूर क्या किया है?

मुखिया का चेहरा फ़क़ हो गया। बड़प्पन के स्वर में बोले—धीरे बोलो, कहीं सुन ले तो गजब हो जाय।

लेकिन गोपाल बिफरा हुआ था, अकड़कर बोला—मैं एक कौड़ी भी न दूँगा। देखें कौन मेरे फाँसी लगा देता है।

गौरा ने बहलाने के स्वर में कहा—अच्छा जब मैं तुमसे रुपये माँगू तो मत देना। यह कहकर गौरा ने, जो इस वक़्त लौंडी के बजाय रानी बनी हुई थी, छप्पर के एक कोने में से रुपयों की एक पोटली निकाली और मुखिया के हाथ में रख दी। गोपाल दाँत पीसकर उठा, लेकिन मुखिया साहब फौरन से पहले सरक गये। दारोग़ा जी ने गोपाल की बातें सुन ली थीं और दुआ कर रहे थे कि ऐ खुदा, इस मरदूद के दिल को पलट। इतने में मुखिया ने बाहर आकर पचीस रुपये की पोटली दिखायी। पचीस रास्ते ही में ग़ायब हो गये थे। दारोग़ा जी ने खुदा का शुक्र किया। दुआ सुनी गयी। रुपया जेब में रक्खा और रसद पहुँचानेवालों की भीड़ को रोते और बिलबिलाते छोड़कर हवा हो गये। मोदी का गला घुँट गया। क़साई के गले पर छुरी फिर गयी। तेली पिस गया। मुखिया साहब ने गोपाल की गर्दन पर एहसान रक्खा गोया रसद के दाम गिरह से दिये। गाँव में सुर्खरू हो गया, प्रतिष्ठा बढ़ गयी। इधर गोपाल ने गौरा की खूब खबर ली। गाँव में रात भर यही चर्चा रही। गोपाल बहुत बचा और इसका सेहरा मुखिया के सिर था। बड़ी विपत्ति आयी थी। वह टल गयी। पितरों ने, दीवान हरदौल ने, नीम तलेवाली देवी ने, तालाब के किनारे-वाली सती ने गोपाल की रक्षा की। यह उन्हीं का प्रताप था। देवी की पूजा होनी ज़रूरी थी। सत्यनारायण की कथा भी लाज़िमी हो गयी।

५

फिर सुबह हुई लेकिन गोपाल के दरवाज़े पर आज लाल पगड़ियों के बजाय लाल साड़ियों का जमघट था। गौरा आज देवी की पूजा करने जाती थी और गाँव की औरतें उसका साथ देने आयी थीं। उसका घर सोंधी सोंधी मिट्टी की खुशबू से महक रहा था जो खस और गुलाब से कम मोहक न थी। औरतें सुहाने गीत गा रही थीं। बच्चे खुश हो होकर दौड़ते थे। देवी के चबूतरे पर उसने मिट्टी का हाथी चढ़ाया। सती की माँग में सेंदुर डाला। दीवान साहब को बताशे और हलुआ खिलाया। हनुमान जी को लड्डू से ज़्यादा प्रेम है, उन्हें लड्डू चढ़ाये। तब गाती-बजाती घर को आयी और सत्यनारायण की कथा की तैयारियाँ होने लगीं।

मालिन फूल के हार, केले की शाखें और बन्दनवारें लायी। कुम्हार नये नये दिये और हाँड़िया दे गया। बारी हरे ढाक के पत्तल और दोने रख गया। कहार ने आकर मटकों में पानी भरा। बढ़ई ने आकर गोपाल और गौरा के लिए दो नयी-नयी पीढ़ियाँ बनायीं। नाइन ने आँगन लीपा और चौक बनायी। दरवाज़े पर बन्दन-वारें बँध गयीं। आँगन में केले की शाखें गड़ गयीं। पण्डित जी के लिए सिंहासन सज गया। आपस के कामों की व्यवस्था खुद-ब-खुद अपने निश्चित दायरे पर चलने लगी। यही व्यवस्था संस्कृति है जिसने देहात की ज़िन्दगी को आडम्बर की ओर से उदासीन बना रक्खा है। लेकिन अफसोस है कि अब ऊँच-नीच की बेमतलब और बेहूदा क़ैदों ने इन आपसी कर्तव्यों को सौहार्द सहयोग के पद से हटा कर उन पर अपमान और नीचता का दाग़ लगा दिया है।

शाम हुई। पण्डित मोटेराम जी ने कन्धे पर झोली डाली, हाथ में शंख लिया और खड़ाऊँ पर खटपट करते गोपाल के घर आ पहुँचे। आँगन में टाट बिछा हुआ था। गाँव के प्रतिष्ठित लोग कथा सुनने के लिए आ बैठे। घण्टी बजी, शंख फूँका गया और कथा शुरू हुई। गोपाल भी गाढ़े की चादर ओढ़े एक कोने में दीवार के सहारे बैठा हुआ था। मुखिया, नम्बरदार और पटवारी ने मारे हमदर्दी के उससे कहा—सत्यनारायण की महिमा थी कि तुम पर कोई आँच न आयी!

गोपाल ने अँगड़ाई लेकर कहा—सत्यनारायण की महिमा नहीं, यह अन्धेर है।

—ज़माना, जुलाई १९१३

●

सिर्फ एक आवाज़

सुबह का वक़्त था। ठाकुर दर्शनसिंह के घर में एक हंगामा बरपा था। आज रात को चन्द्रग्रहण होनेवाला था। ठाकुर साहब अपनी बूढ़ी ठकुराइन के साथ गंगाजी जाते थे इसलिए सारा घर उनकी पुरशोर तैयारी में लगा हुआ था। एक बहू उनका फटा हुआ कुर्ता टाँक रही थी, दूसरी बहू उनकी पगड़ी लिये सोचती थी, कि कैसे इसकी मरम्मत करूँ। दोनों लड़कियाँ नाश्ता तैयार करने में तल्लीन थीं, जो ज़्यादा दिलचस्प काम था और बच्चों ने अपनी आदत के अनुसार एक कुहराम मचा रक्खा था क्योंकि हर एक आने-जाने के मौके पर उनका रोने का जोश उमंग पर होता था। जाने के वक़्त साथ जाने के लिए रोते, आने के वक़्त इसलिए रोते कि शीरीनी का बाँट-बखरा मनोनुकूल नहीं हुआ। बूढ़ी ठकुराइन बच्चों को फुसलाती थीं और बीच-बीच में अपनी बहुओं को समझाती थीं—देखो खबरदार! जब तक उग्रह न हो जाय, घर से बाहर न निकलना। हँसिया, छुरी, कुल्हाड़ी, इन्हें हाथ से मत छूना। समझाये देती हूँ, मानना चाहे न मानना। तुम्हें मेरी बात की कौन परवाह है। मुँह में पानी की बूँद न पड़े। नारायण के घर विपत पड़ी है। जो साधू-भिखारी दरवाज़े पर आ जाय उसे फेरना मत। बहुओं ने सुना और नहीं सुना। वे मना रही थीं कि किसी तरह यह यहाँ से टलें। फागुन का महीना है, गाने को तरस गये। आज खूब गाना-बजाना होगा।

ठाकुर साहब थे तो बूढ़े, लेकिन बुढ़ापे का असर दिल तक नहीं पहुँचा था। उन्हें इस बात का गर्व था कि कोई ग्रहण गंगा-स्नान के बगैर नहीं छूटा। उनका ज्ञान आश्चर्यजनक था। सिर्फ पत्रों को देखकर महीनों पहले सूर्य-ग्रहण और दूसरे पर्वों के दिन बता देते थे। इसलिए गाँववालों की निगाह में उनकी इज़्ज़त अगर पण्डितों से ज़्यादा न थी तो कम भी न थी। जवानी में कुछ दिनों फ़ौज में नौकरी भी की थी। उसकी गर्मी अब तक बाक़ी थी, मज़ाल न थी कि कोई उनकी तरफ सीधी आँख से देख सके। सम्मन लानेवाले एक चपरासी को ऐसी व्यावहारिक चेतावनी दी थी जिसका उदाहरण आस-पास के दस-पाँच गाँव में भी नहीं मिल सकता। हिम्मत और हौसले के कामों में अब भी आगे-आगे रहते थे। किसी काम को

मुश्किल बता देना, उनकी हिम्मत को प्रेरित कर देना था। जहाँ सब की ज़बानें बन्द हो जायँ, वहाँ वे शेरों की तरह गरजते थे। जब कभी गाँव में दारोग़ा जी तशरीफ लाते तो ठाकुर साहब ही का दिल-गुर्दा था कि उनसे आँखें मिला कर आमने-सामने बात कर सकें। ज्ञान की बातों को लेकर छिड़नेवाली बहसों के मैदान में भी उनके कारनामे कुछ कम शानदार न थे। झगड़ा पण्डित हमेशा उनसे मुँह छिपाया करते। ग़रज़ ठाकुर साहब का स्वभावगत गर्व और आत्म-विश्वास उन्हें हर बरात में दूल्हा बनने पर मजबूर कर देता था। हाँ, कमज़ोरी इतनी थी कि अपना आल्हा भी आप ही गा लेते और मज़े ले-ले कर क्योंकि रचना को रचनाकार ही खूब बयान करता है!

२

जब दोपहर होते-होते ठाकुर और ठकुराइन गाँव से चले तो सैकड़ों आदमी उनके साथ थे और पक्की सड़क पर पहुँचे, तो यात्रियों का ऐसा ताँता लगा हुआ था कि जैसे कोई बाज़ार है। ऐसे-ऐसे बूढ़े लाठियाँ टेकते या डोलियों पर सवार चले जाते थे जिन्हें तकलीफ़ देने की यमराज ने भी कोई ज़रूरत न समझी थी। अन्धे दूसरों की लकड़ी के सहारे क़दम बढ़ाये आते थे। कुछ आदमियों ने अपनी बूढ़ी माताओं को पीठ पर लाद लिया था। किसी के सर पर कपड़ों की पोटली, किसी के कन्धे पर लोटा-डोर, किसी के कन्धे पर काँवर। कितने ही आदमियों ने पैरों पर चीथड़े लपेट लिये थे, जूते कहाँ से लायें। मगर धार्मिक उत्साह का यह वरदान था कि मन किसी का मैला न था। सब के चेहरे खिले हुए, हँसते-हँसते बातें करते चले जा रहे थे। कुछ औरतें गा रही थीं—

चाँद सुरज दूनो लोक के मालिक
एक दिना उनहूँ पर बनती
हम जानी हमहीं पर बनती

ऐसा मालूम होता था, यह आदमियों की एक नदी थी, जो सैकड़ों छोटे-छोटे नालों और धारों को लेती हुई समुद्र से मिलने के लिए जा रही थी।

जब यह लोग गंगा के किनारे पहुँचे तो तीसरे पहर का वक़्त था लेकिन मीलों तक कहीं तिल रखने की जगह न थी। इस शानदार दृश्य से दिलों पर ऐसा रोब और भक्ति का ऐसा भाव छा जाता था कि बरबस 'गंगा माता की जय' की सदायें बुलन्द हो जाती थीं। लोगों के विश्वास उसी नदी की तरह उमड़े हुए थे और वह

नदी! वह लहराता हुआ नीला मैदान! वह प्यासों की प्यास बुझानेवाली! वह निराशों की आशा! वह वरदानों की देवी! वह पवित्रता का स्रोत! वह मुट्ठी भर ख़ाक को आश्रय देनेवाली गंगा हँसती-मुस्कराती थी और उछलती थी। क्या इसलिए कि आज वह अपनी चौतरफा इज्ज़त पर फूली न समाती थी या इसलिए कि वह उछल-उछलकर अपने प्रेमियों से गले मिलना चाहती थी जो उसके दर्शनों के लिए मंजिलें तय करके आये थे। और उसके परिधान की प्रशंसा किस ज़बान से हो, जिस पर सूरज ने चमकते हुए तारे टाँके थे और जिसके किनारों को उसकी किरणों ने रंग-बिरंग, सुन्दर और गतिशील फूलों से सजाया था।

अभी ग्रहण लगने में घण्टों की देर थी। लोग इधर-उधर टहल रहे थे। कहीं मदारियों के खेल थे, कहीं चूरनवाले की लच्छेदार बातों के चमत्कार। कुछ लोग मेढ़ों की कुश्ती देखने के लिए जमा थे। ठाकुर साहब भी अपने कुछ भक्तों के साथ सैर को निकले। उनकी हिम्मत ने गवारा न किया कि इन बाज़ारू दिलचस्पियों में शरीक हों। यकायक उन्हें एक बड़ा-सा शामियाना तना हुआ नज़र आया, जहाँ ज़्यादातर पढ़े-लिखे लोगों की भीड़ थी। ठाकुर साहब ने अपने साथियों को एक किनारे खड़ा कर दिया और खुद बड़े गर्व से ताकते हुए फर्श पर जा बैठे क्योंकि उन्हें विश्वास था कि यहाँ उन पर देहातियों की ईर्ष्या-दृष्टि पड़ेगी और सम्भव है कुछ ऐसी बारीक बातें भी मालूम हो जायँ जो उनके भक्तों को उनकी सर्वज्ञता का विश्वास दिलाने में काम दे सकें।

यह एक नैतिक अनुष्ठान था। दो-ढाई हज़ार आदमी बैठे हुए एक मधुरभाषी वक्ता का भाषण सुन रहे थे। फ़ैशनेबुल लोग ज़्यादातर अगली पंक्तियों में बैठे हुए थे जिन्हें कनबतियों का इससे अच्छा मौक़ा नहीं मिल सकता था! कितने ही अच्छे कपड़े पहने हुए लोग इसलिए दुखी नज़र आते थे कि उनकी बग़ल में निम्न श्रेणी के लोग बैठे हुए थे। भाषण दिलचस्प मालूम पड़ता था। वज़न ज़्यादा था और चटखारे कम, इसलिए तालियाँ नहीं बजती थीं।

३

वक्ता ने अपने भाषण में कहा—

मेरे प्यारे दोस्तो, यह हमारा और आपका कर्तव्य है। इससे ज़्यादा महत्वपूर्ण, ज़्यादा परिणामदायक और कौम के लिए ज़्यादा शुभ और कोई कर्तव्य नहीं है। हम मानते हैं कि उनके आचार-व्यवहार की दशा अत्यन्त करुण है। मगर विश्वास

मानिये यह सब हमारी करनी है। उनकी इस लज्जाजनक सांस्कृतिक स्थिति का ज़िम्मेदार हमारे सिवा और कौन हो सकता है? अब इसके सिवा इसका और कोई इलाज नहीं है कि हम उस घृणा और उपेक्षा को, जो उनकी तरफ से हमारे दिलों में बैठी हुई है, धोयें और खूब मलकर धोयें। यह आसान काम नहीं है। जो कालिख कई हज़ार वर्षों से जमी हुई है, वह आसानी से नहीं मिट सकती। जिन लोगों की छाया से हम बचते आये हैं, जिन्हें हमने जानवरों से भी ज़लील समझ रक्खा है, उनसे गले मिलने में हमको त्याग और साहस और परमार्थ से काम लेना पड़ेगा। उस त्याग से जो कृष्ण में था, उस हिम्मत से जो राम में थी, उस परमार्थ से जो चैतन्य और गोविन्द में था। मैं यह नहीं कहता कि आप आज ही उनसे शादी के रिश्ते जोड़ें या उनके साथ बैठकर खायें-पियें। मगर क्या यह भी मुमकिन नहीं है कि आप उनके साथ सामान्य सहानुभूति, सामान्य मनुष्यता, सामान्य सदाचार से पेश आयें? क्या यह सचमुच असम्भव बात है? आपने कभी ईसाई मिशनरियों को देखा है? आह, जब मैं एक उच्चकोटि की, सुन्दर, सुकुमार, गौरवर्ण लेडी को अपनी गोद में एक काला-कलूटा बच्चा लिये हुए देखता हूँ जिसके बदन पर फोड़े हैं, खून है और गन्दगी है—वह सुन्दरी उस बच्चे को चूमती है, प्यार करती है, छाती से लगाती है—तो मेरा जी चाहता है कि उस देवी के क़दमों पर सिर रख दूँ। अपनी नीचता, अपना कमीनापन, अपनी झूठी बड़ाई, अपने हृदय की संकीर्णता मुझे कभी इतनी सफ़ाई से नजर नहीं आती। इन देवियों के लिए ज़िन्दगी में क्या-क्या संपदाएँ नहीं थीं, खुशियाँ बाँहें पसारे हुए उनके इन्तज़ार में खड़ी थीं। उनके लिए दौलत की सब सुख-सुविधाएँ थीं। प्रेम के आकर्षण थे। अपने आत्मीयों और स्वजनों की सहानुभूतियाँ थीं और अपनी प्यारी मातृभूमि का आकर्षण था। लेकिन इन देवियों ने उन तमाम नेमतों, उन सब सांसारिक संपदाओं को सेवा, सच्ची निःस्वार्थ सेवा पर बलिदान कर दिया है! वे ऐसी बड़ी कुर्बानियाँ कर सकती हैं, तो हम क्या इतना भी नहीं कर सकते कि अपने अछूत भाइयों से हमदर्दी का सलूक कर सकें? क्या हम सचमुच ऐसे पस्त-हिम्मत, ऐसे बोदे, ऐसे बेरहम हैं? इसे खूब समझ लीजिए कि आप उनके साथ कोई रियायत, कोई मेहरबानी नहीं कर रहे हैं। यह उन पर कोई एहसान नहीं है। यह आप ही के लिए ज़िन्दगी और मौत का सवाल है। इसलिए मेरे भाइयो और दोस्तो, आइये इस मौक़े पर शाम के वक़्त पवित्र गंगा नदी के किनारे काशी के पवित्र स्थान में हम मज़बूत दिल से प्रतिज्ञा करें कि आज से हम अछूतों के साथ भाई-चारे का सलूक करेंगे, उनके तीज-त्योहार में शरीक होंगे और

अपने त्योहारों में उन्हें बुलायेंगे। उनके गले मिलेंगे और उन्हें अपने गले लगायेंगे। उनकी खुशियों में खुश और उनके दर्दों में दर्दमन्द होंगे, और चाहे कुछ ही क्यों न हो जाय, चाहे तानों-तिश्नों और ज़िल्लत का सामना ही क्यों न करना पड़े, हम इस प्रतिज्ञा पर क़ायम रहेंगे। आपमें सैकड़ों जोशीले नौजवान हैं जो बात के धनी और इरादे के मज़बूत हैं। कौन यह प्रतिज्ञा करता है? कौन अपने नैतिक साहस का परिचय देता है? वह अपनी जगह पर खड़ा हो जाय और ललकारकर कहे कि मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ और मरते दम तक इस पर दृढ़ता से क़ायम रहूँगा।

४

सूरज गंगा की गोद में जा बैठा था और माँ प्रेम और गर्व से मतवाली जोश से उमड़ी हुई, रंग में केसर को शर्माती और चमक में सोने को लजाती थी। चारों तरफ़ एक रोबीली खामोशी छायी थी। उस सन्नाटे में संन्यासी की गर्मी और जोश से भरी हुई बातें गंगा की लहरों और गगनचुम्बी मन्दिरों में समा गयीं। गंगा एक गम्भीर माँ की निराशा के साथ हँसी और देवताओं ने अफ़सोस से सिर झुका लिया, मगर मुँह से कुछ न बोले।

संन्यासी की जोशीली पुकार फ़िज़ा में जाकर ग़ायब हो गयी, मगर उस मजमे में किसी आदमी के दिल तक न पहुँची। वहाँ क़ौम पर जान देनेवालों की कमी न थी; स्टेजों पर क़ौमी तमाशे खेलनेवाले कालेजों के होनहार नौजवान, क़ौम के नाम पर मिटनेवाले पत्रकार, क़ौमी संस्थाओं के मेम्बर, सेक्रेटरी और प्रेसिडेण्ट, राम और कृष्ण के सामने सिर झुकानेवाले सेठ और साहूकार, क़ौमी कालिजों के ऊँचे हौसलोंवाले प्रोफ़ेसर और अखबारों में क़ौमी तरक्कियों की खबरें पढ़कर खुश होनेवाले दफ्तरों के कर्मचारी हज़ारों की तादाद में मौजूद थे। आँखों पर सुनहरी ऐनकें लगाये, मोटे-मोटे वकीलों की एक पूरी फ़ौज जमा थी मगर संन्यासी के उस गर्म भाषण से एक दिल भी न पिघला क्योंकि वह पत्थर के दिल थे जिनमें दर्द और घुलावट न थी, जिनमें सदिच्छा थी मगर कार्य-शक्ति न थी, जिनमें बच्चों की-सी इच्छा थी मगर मर्दों का-सा इरादा न था।

सारी मजलिस पर सन्नाटा छाया हुआ था। हर आदमी सिर झुकाये फ़िक्र में डूबा हुआ नज़र आता था। शर्मिन्दगी किसी को सर उठाने न देती थी और आँखें झेंप के मारे ज़मीन में गड़ी हुई थीं। यह वही सर हैं जो क़ौमी चर्चों पर उछल पड़ते थे, यह वही आँखें हैं जो किसी वक़्त राष्ट्रीय गौरव की लाली से भर जाती

थीं। मगर कथनी और करनी में आदि और अन्त का अन्तर है। एक व्यक्ति को भी खड़े होने का साहस न हुआ। क़ैंची की तरह चलनेवाली ज़बानें भी ऐसे महान् उत्तरदायित्व के भय से बन्द हो गयीं।

५

ठाकुर दर्शनसिंह अपनी जगह पर बैठे हुए इस दृश्य को बहुत ग़ौर और दिलचस्पी से देख रहे थे। वे अपने धार्मिक विश्वासों में चाहे कट्टर हों या न हों, लेकिन सांस्कृतिक मामलों में वे कभी अगुअई करने के दोषी नहीं हुए थे। इस पेचीदा और डरावने रास्ते में उन्हें अपनी बुद्धि और विवेक पर भरोसा नहीं होता था। यहाँ तर्क और युक्ति को भी उनसे हार माननी पड़ती थी। इस मैदान में वह अपने घर की स्त्रियों की इच्छा पूरी करना ही अपना कर्तव्य समझते थे और चाहे उन्हें खुद किसी मामले में कुछ एतराज़ भी हो लेकिन यह औरतों का मामला था और इसमें वे हस्तक्षेप नहीं कर सकते थे क्योंकि इससे परिवार की व्यवस्था में हलचल और गड़बड़ी पैदा हो जाने की ज़बरदस्त आशंका रहती थी। अगर किसी वक्त उनके कुछ जोशीले नौजवान दोस्त इस कमज़ोरी पर उन्हें आड़े हाथों लेते तो वे बड़ी बुद्धिमत्ता से कहा करते थे—भई, यह औरतों के मामले हैं, उनका जैसा दिल चाहता है करती हैं, मैं बोलनेवाला कौन हूँ। ग़रज़ यहाँ उनकी फ़ौजी गर्म-मिज़ाजी उनका साथ छोड़ देती थी। यह उनके लिए तिलिस्म की घाटी थी जहाँ होश-हवास बिगड़ जाते थे और अन्धे अनुकरण का पैर बँधी हुई गर्दन पर सवार हो जाता था।

लेकिन यह ललकार सुनकर वे अपने को क़ाबू में न रख सके। यही वह मौक़ा था जब उनकी हिम्मतें आसमान पर जा पहुँचती थीं। जिस बीड़े को कोई न उठाये उसे उठाना उनका काम था। वर्जनाओं से उनको आत्मिक प्रेम था। ऐसे मौक़े पर वे नतीजे और मसलहत से बग़ावत कर जाते थे और उनके इस हौसले में यश के लोभ को उतना दखल नहीं था जितना उनके नैसर्गिक स्वभाव को। वर्ना यह असम्भव था कि एक ऐसे जलसे में जहाँ ज्ञान और सभ्यता की धूमधाम थी, जहाँ सोने की ऐनकों से रोशनी और तरह-तरह के परिधानों से दीप्त चिन्तन की किरणें निकल रही थीं, जहाँ कपड़े-लत्ते की नफ़ासत से रोब और मोटापे से प्रतिष्ठा की झलक आती थी, वहाँ एक देहाती किसान को ज़बान खोलने का हौसला होता। ठाकुर ने इस दृश्य को ग़ौर और दिलचस्पी से देखा। उसके पहलू में गुदगुदी-सी हुई। ज़िन्दादिली का जोश रगों में दौड़ा। वह अपनी जगह से उठा और मर्दाना लहजे

में ललकारकर बोला—मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ और मरते दम तक उस पर क़ायम रहूँगा।

६

इतना सुनना था कि दो हज़ार आँखें अचम्भे से उसकी तरफ ताकने लगीं। सुभानअल्लाह, क्या हुलिया थी—गाढ़े की ढीली मिर्ज़ई, घुटनों तक चढ़ी हुई धोती, सर पर एक भारी-सा उलझा हुआ साफ़ा, कन्धे पर चुनौटी और तम्बाकू का वज़नी बटुआ, मगर चेहरे से गम्भीरता और दृढ़ता स्पष्ट थी। गर्व आँखों के तंग घेरे से बाहर निकला पड़ता था। उसके दिल में अब इस शानदार मजमे की इज्ज़त बाक़ी न रही थी। वह पुराने वक्तों का आदमी था जो अगर पत्थर को पूजता था तो उसी पत्थर से डरता भी था, जिसके लिए एकादशी का व्रत केवल स्वास्थ्य-रक्षा की एक युक्ति और गंगा केवल स्वास्थ्यप्रद पानी की एक धारा न थी। उसके विश्वासों में जागृति न हो लेकिन दुविधा नहीं थी। यानी कि उसकी कथनी और करनी में अन्तर न था और उसकी बुनियाद कुछ अनुकरण और देखादेखी पर थी मगर अधिकांशत: भय पर, जो ज्ञान के आलोक के बाद वृत्तियों के संस्कार की सबसे बड़ी शक्ति है। गेरुए बाने का आदर और भक्ति करना उसके धर्म और विश्वास का एक अंग था। संन्यास में उसकी आत्मा को अपना अनुचर बनाने की एक सजीव शक्ति छिपी हुई थी और उस ताक़त ने अपना असर दिखाया। लेकिन मजमे की इस हैरत ने बहुत जल्द मज़ाक़ की सूरत अख्तियार की। मतलब-भरी निगाहें आपस में कहने लगीं—आखिर गँवार ही तो ठहरा! देहाती है, ऐसे भाषण कभी काहे को सुने होंगे, बस उबल पड़ा। उथले गड्ढे में इतना पानी भी न समा सका! कौन नहीं जानता कि ऐसे भाषणों का उद्देश्य मनोरंजन होता है! दस आदमी आये, इकट्ठे बैठे, कुछ सुना, कुछ गप-शप मारी और अपने-अपने घर लौटे, न यह कि क़ौल-क़रार करने बैठें, अमल करने के लिए क़समें खायें!

मगर निराश संन्यासी सोच रहा था—अफ़सोस जिस मुल्क की रोशनी में इतना अँधेरा है, वहाँ कभी रोशनी का उदय होना मुश्किल नज़र आता है। इस रोशनी पर, इस अँधेरी, मुर्दा और बेजान रोशनी पर मैं जहालत को अज्ञान को ज़्यादा ऊँची जगह देता हूँ। अज्ञान में सफ़ाई है और हिम्मत है, उसके दिल और ज़बान में पर्दा नहीं होता, न कथनी और करनी में विरोध। क्या यह अफ़सोस की बात नहीं है कि ज्ञान अज्ञान के आगे सिर झुकाये? इस सारे मजमे में सिर्फ़ एक आदमी है,

जिसके पहलू में मर्दों का दिल है और गो उसे बहुत सजग होने का दावा नहीं लेकिन मैं उसके अज्ञान पर ऐसी हज़ारों जागृतियों को कुर्बान कर सकता हूँ। तब वह प्लेटफार्म से नीचे उतरे और दर्शनसिंह को गले से लगाकर कहा—ईश्वर तुम्हें प्रतिज्ञा पर क़ायम रक्खे।

—ज़माना, अगस्त-सितम्बर १९१३

●

नेकी

सावन का महीना था। रेवती रानी ने पांव में मेंहदी रचायी, मांग-चोटी संवारी और तब अपनी बूढ़ी सास से जाकर बोली—अम्मां जी, आज मैं भी मेला देखने जाऊँगी।

रेवती पण्डित चिन्तामणि की पत्नी थी। पण्डित जी ने सरस्वती की पूजा में ज़्यादा लाभ न देखकर लक्ष्मी देवी की पूजा करनी शुरू की थी। लेन-देन का कारबार करते थे मगर और महाजनों के विपरीत ख़ास-ख़ास हालतों के सिवा पच्चीस फ़ीसदी से ज़्यादा सूद लेना उचित न समझते थे।

रेवती की सास एक बच्चे को गोद में लिये खटोले पर बैठी थीं। बहू की बात सुनकर बोली—भीग जाओगी तो बच्चे को जुकाम हो जायगा।

रेवती—नहीं अम्मां मुझे देर न लगेगी, अभी चली आऊँगी।

रेवती के दो बच्चे थे—एक लड़का, दूसरी लड़की। लड़की अभी गोद में थी और लड़का हीरामन सातवें साल में था। रेवती ने उसे अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाये। नज़र लगने से बचाने के लिए माथे और गालों पर काजल के टीके लगा दिये, गुड़ियाँ पीटने के लिए एक अच्छी रंगीन छड़ी देदी और अपनी सहेलियों के साथ मेला देखने चली।

कीरत सागर के किनारे औरतों का बड़ा जमघट था। नीलगूं घटाएं छायी हुई थीं। औरतें सोलह सिंगार किये सागर के खुले हुए हरे-भरे सुन्दर मैदान में सावन की रिमझिम वर्षा की बहार लूट रही थीं। शाखों में झूले पड़े थे। कोई झूला झूलती कोई मल्हार गाती, कोई सागर के किनारे बैठी लहरों से खेलती। ठंडी-ठंडी खुशगवार पानी की हलकी-हलकी फुहार, पहाड़ियों की निखरी हुई हरियावल, लहरों के दिलकश झकोले मौसम को ऐसा बना रहे थे कि उसमें संयम टिक न पाता था।

आज गुड़ियों की विदाई है। गुड़ियाँ अपनी ससुराल जायंगी। कुंआरी लड़कियाँ हाथ-पांव में मेंहदी रचाये गुड़ियों को गहने-कपड़े से सजाये उन्हें विदा करने आयी हैं। उन्हें पानी में बहाती हैं और छकछककर सावन के गीत गाती हैं। मगर

सुख-चैन के आंचल से निकलते ही इन लाड़-प्यार में पली हुई गुड़ियों पर चारों तरफ़ से छड़ियों और लकड़ियों की बौछार होने लगती है।

रेवती यह सैर देख रही थी और हीरामन सागर की सीढ़ियों पर और लड़कियों के साथ गुड़ियाँ पीटने में लगा हुआ था। सीढ़ियों पर काई लगी हुई थी। अचानक उसका पांव फिसला तो पानी में जा पड़ा। रेवती चीख मारकर दौड़ी और सर पीटने लगी। दम के दम में वहाँ मर्दों और औरतों का ठट लग गया मगर यह किसी की इन्सानियत तक़ाज़ा न करती थी कि पानी में जाकर मुमकिन हो तो बच्चे की जान बचाये। संवारे हुए बाल न बिखर जायंगे! धुली हुई धोती न भीग जायगी! कितने ही मर्दों के दिलों में यह मर्दाना ख़याल आ रहे थे। दस मिनट गुज़र गये। मगर कोई आदमी हिम्मत करता नज़र न आया। गरीब रेवती पछाड़ें खा रही थी। अचानक उधर से एक आदमी अपने घोड़े पर सवार चला जाता था। यह भीड़ देखकर उतर पड़ा और एक तमाशाई से पूछा—यह कैसी भीड़ है? तमाशाई ने जवाब दिया—एक लड़का डूब गया है।

मुसाफिर—कहां?

तमाशाई—जहाँ वह औरत खड़ी रो रही है।

मुसाफिर ने फौरन अपनी गाढ़े की मिर्ज़ई उतारी और धोती कसकर पानी में कूद पड़ा। चारों तरफ़ सन्नाटा छा गया। लोग हैरान थे कि यह आदमी कौन है। उसने पहला ग़ोता लगाया, लड़के की टोपी मिली। दूसरा ग़ोता लगाया तो उसकी छड़ी हाथ लगी और तीसरे ग़ोते के बाद जब ऊपर आया तो लड़का उसकी गोद में था। तमाशाइयों ने ज़ोर से वाह-वाह का नारा बुलन्द किया। मां दौड़कर बच्चे से लिपट गयी। इसी बीच पण्डित चिन्तामणि के और कई मित्र आ पहुंचे और लड़के को होश में लाने की फिक्र करने लगे। आध घण्टे में लड़के ने आंखें खोल दीं। लोगों की जान में जान आयी। डाक्टर साहब ने कहा—अगर लड़का दो मिनट पानी में रहता तो बचना असम्भव था। मगर जब लोग अपने गुमनाम भलाई करने वाले को ढूंढ़ने लगे तो उसका कहीं पता न था। चारों तरफ़ आदमी दौड़ाये, सारा मेला छान मारा, मगर वह नज़र न आया।

२

बीस साल गुज़र गये। पण्डित चिन्तामणि का कारोबार रोज़-ब-रोज़ बढ़ता गया। इस बीच में उसकी मां ने सातों यात्राएं कीं और मरीं तो उनके नाम पर

ठाकुरद्वारा तैयार हुआ। रेवती बहू से सास बनी, लेनदेन, बहीखाता हीरामणि के हाथ में आया। हीरामणि अब एक हृष्ट-पुष्ट लम्बा-तड़ंगा नौजवान था—बहुत अच्छे स्वभाव का, नेक। कभी-कभी बाप से छिपाकर ग़रीब असामियों को यों ही क़र्ज़ दे दिया करता। चिन्तामणि ने कई बार इस अपराध के लिए बेटे को आंखें दिखायी थीं और अलग कर देने की धमकी दी थी। हीरामणि ने एक बार एक संस्कृत पाठशाला के लिए पचास रुपया चन्दा दिया। पण्डित जी उस पर ऐसे क्रुद्ध हुए कि दो दिन तक खाना नहीं खाया। ऐसे अप्रिय प्रसंग आये दिन होते रहते थे, इन्हीं कारणों से हीरामणि की तबीयत बाप से कुछ खिंची रहती थी। मगर उसकी यह सारी शरारतें हमेशा रेवती की साज़िश से हुआ करती थीं। जब कस्बे की ग़रीब विधवायें या ज़मीन्दार के सताये हुए असामियों की औरतें रेवती के पास आकर हीरामणि को आंचल फैला-फैलाकर दुआएं देने लगतीं तो उसे ऐसा मालूम होता कि मुझसे ज़्यादा भाग्यवान और मेरे बेटे से ज़्यादा नेक आदमी दुनिया में कोई न होगा। तब उसे बरबस वह दिन याद आ जाता जब हीरामणि कीरत सागर में डूब गया था और उस आदमी की तस्वीर उसकी आंखों के सामने खड़ी हो जाती जिसने उसके लाल को डूबने से बचाया था। उसके दिल की गहराई से दुआ निकलती और ऐसा जी चाहता कि उसे देख पाती तो उसके पांव पर गिर पड़ती। उसे अब पक्का विश्वास हो गया था कि वह मनुष्य न था बल्कि कोई देवता था। वह अब उसी खटोले पर बैठी हुई, जिस पर उसकी सास बैठती थी, अपने दोनों पोतों को खिलाया करती थी।

आज हीरामणि की सत्ताईसवीं सालगिरह थी। रेवती के लिए यह दिन साल भर के दिनों में सबसे अधिक शुभ था। आज उसका दया का हाथ खूब उदारता दिखलाता था और यही एक अनुचित खर्च था जिसमें पण्डित चिन्तामणि भी शरीक हो जाते थे। आज के दिन वह बहुत खुश होती और बहुत रोती और आज अपने गुमनाम भलाई करनेवाले के लिए उसके दिल से जो दुआएं निकलतीं वह दिल और दिमाग़ की अच्छी से अच्छी भावनाओं में रँगी होती थीं। उसी दिन की बदौलत तो आज मुझे यह दिन और यह सुख देखना नसीब हुआ है!

३

एक दिन हीरामणि ने आकर रेवती से कहा—अम्मां, श्रीपुर नीलाम पर चढ़ा हुआ है, कहो तो मैं भी दाम लगाऊं।

रेवती—सोलहो आना है?

हीरामणि—सोलहों आना। अच्छा गांव है। न बड़ा न छोटा। यहाँ से दस कोस है। बीस हज़ार तक बोली चढ़ चुकी है। सौ दो सौ में ख़त्म हो जायगा।

रेवती—अपने दादा से तो पूछो?

हीरामणि—उनके साथ दो घंटे तक माथापच्ची करने की किसे फ़ुरसत है।

हीरामणि अब घर का मालिक हो गया था और चिन्तामणि की एक न चलने पाती। वह ग़रीब अब ऐनक लगाये एक गद्दे पर बैठे अपना वक्त खांसने में खर्च करते थे।

दूसरे दिन हीरामणि के नाम पर श्रीपुर ख़त्म हो गया। महाजन से ज़मींदार हुए। अपने मुनीम और दो चपरासियों को लेकर गांव की सैर करने चले। श्रीपुर-वालों को खबर हुई। नये ज़मींदार का पहला आगमन था। घर-घर नज़राने देने की तैयारियाँ होने लगीं। पांचवें दिन शाम के वक़्त हीरामणि गांव में दाखिल हुए। दही और चावल का तिलक लगाया गया और तीन सौ असामी पहर रात तक हाथ बांधे हुए उनकी सेवा में खड़े रहे। सबेरे मुख्तारेआम ने असामियों का परिचय कराना शुरू किया। जो असामी ज़मींदार के सामने आता वह अपनी बिसात के मुताबिक़ एक या दो रुपये उनके पांव पर रख देता। दोपहर होते-होते वहाँ पांच सौ रुपयों का ढेर लगा हुआ था।

हीरामणि को पहली बार ज़मींदारी का मज़ा मिला, पहली बार धन और बल का नशा महसूस हुआ। सब नशों से ज़्यादा तेज़, ज़्यादा घातक धन का नशा है। जब असामियों की फ़ेहरिस्त ख़तम हो गयी तो मुख़्तार से बोले—और कोई असामी तो बाक़ी नहीं है?

मुख़्तार—हां महाराज, अभी एक असामी और है, तखत सिंह।

हीरामणि—वह क्यों नहीं आया?

मुख्तार—ज़रा मस्त है।

हीरामणि—मैं उसकी मस्ती उतार दूँगा। ज़रा कोई उसे बुला लाये।

थोड़ी देर में एक बूढ़ा आदमी लाठी टेकता हुआ आया और दण्डवत् करके जमीन पर बैठ गया, न नज़र न नियाज़। उसकी यह गुस्ताख़ी देखकर हीरामणि को बुख़ार चढ़ आया। कड़ककर बोले—अभी किसी ज़मींदार से पाला नहीं पड़ा है। एक-एक की हेकड़ी भुला दूँगा!

तखत सिंह ने हीरामणि की तरफ़ ग़ौर से देखकर जवाब दिया—मेरे सामने बीस ज़मींदार आये और चले गये। मगर कभी किसी ने इस तरह घुड़की नहीं दी।

यह कहकर उसने लाठी उठायी और अपने घर चला आया।

बूढ़ी ठकुराइन ने पूछा—देखा ज़मींदार को, कैसे आदमी हैं?

तख़त सिंह—अच्छे आदमी हैं। मैं उन्हें पहचान गया।

ठकुराइन—क्या तुमसे पहले की मुलाकात है?

तख़त सिंह—मेरी उनकी बीस बरस की जान-पहिचान है। गुड़ियों के मेले-वाली बात याद है न?

उस दिन से तख़त सिंह फिर हीरामणि के पास न आया।

४

छः महीने के बाद रेवती को भी श्रीपुर देखने का शौक़ हुआ। वह और उसकी बहू और बच्चे सब श्रीपुर आये। गाँव की सब औरतें उनसे मिलने आयीं। उनमें बूढ़ी ठकुराइन भी थी। उसकी बातचीत, सलीक़ा और तमीज़ देखकर रेवती दंग रह गयी। जब वह चलने लगी तो रेवती ने कहा—ठकुराइन, कभी-कभी आया करना, तुमसे मिलकर तबियत बहुत ख़ुश हुई।

इस तरह दोनों औरतों में धीरे-धीरे मेल हो गया। यहाँ तो यह कैफ़ियत थी और हीरामणि अपने मुख़्तारेआम के बहकावे में आकर तख़त सिंह को बेदखल करने की तरकीबें सोच रहा था।

जेठ की पूरनमासी आयी। हीरामणि की सालगिरह की तैयारियाँ होने लगीं। रेवती चलनी में मैदा छान रही थी कि बूढ़ी ठकुराइन आयी। रेवती ने मुस्कराकर कहा—ठकुराइन, हमारे यहाँ कल तुम्हारा न्योता है।

ठकुराइन—तुम्हारा न्योता सिर-आँखों पर। कौन-सी बरसगाँठ है?

रेवती—उनतीसवीं।

ठकुराइन—नरायन करे, अभी ऐसे-ऐसे सौ दिन तुम्हें और देखने नसीब हों।

रेवती—ठकुराइन, तुम्हारी ज़बान मुबारक हो। बड़े-बड़े जन्तर-मन्तर किये हैं तब तुम लोगों की दुआ से यह दिन देखना नसीब हुआ है। यह तो सातवें ही साल में थे कि इनकी जान के लाले पड़ गये। गुड़ियों का मेला देखने गयी थी। यह पानी में गिर पड़े। बारे, एक महात्मा ने इनकी जान बचायी। इनकी जान उन्हीं की दी हुई है। बहुत तलाश करवाया। उनका पता न चला। हर बरसगाँठ पर उनके नाम से सौ रुपये निकाल रखती हूँ। दो हज़ार से कुछ ऊपर हो गये हैं। बच्चे की नीयत है कि उनके नाम से श्रीपुर में एक मन्दिर बनवा दें। सच मानो ठकुराइन,

एक बार उनके दर्शन हो जाते तो जीवन सुफल हो जाता, जी की हवस निकाल लेते।

रेवती जब ख़ामोश हुई तो ठकुराइन की आँखों से आँसू जारी थे।

दूसरे दिन एक तरफ़ हीरामणि की सालगिरह का उत्सव था और दूसरी तरफ़ तख़त सिंह के खेत नीलाम हो रहे थे।

ठकुराइन बोली—मैं रेवती रानी के पास जाकर दुहाई मचाती हूँ।

तख़त सिंह ने जवाब दिया—मेरे जीते-जी नहीं।

५

असाढ़ का महीना आया। मेघराज ने अपनी प्राणदायी उदारता दिखायी। श्रीपुर के किसान अपने-अपने खेत जोतने चले। तख़त सिंह की लालसा भरी आँखें उनके साथ-साथ जातीं, यहाँ तक कि ज़मीन उन्हें अपने दामन में छिपा लेती।

तख़त सिंह के पास एक गाय थी। वह अब दिन के दिन उसे चराया करता। उसकी ज़िन्दगी का अब यही एक सहारा था। उसके उपले और दूध बेचकर गुज़र-बसर करता। कभी-कभी फ़ाक़े करने पड़ जाते। यह सब मुसीबतें उसने झेलीं मगर अपनी कंगाली का रोना रोने के लिए एक दिन भी हीरामणि के पास न गया। हीरामणि ने उसे नीचा दिखाना चाहा था मगर ख़ुद उसे ही नीचा देखना पड़ा, जीतने पर भी उसे हार हुई, पुराने लोहे को अपने नीच हठ की आँच से न झुका सका।

एक दिन रेवती ने कहा—बेटा, तुमने गरीब को सताया, अच्छा न किया।

हीरामणि ने तेज़ होकर जवाब दिया—वह ग़रीब नहीं है। उसका घमण्ड मैं तोड़ दूँगा।

दौलत के नशे में मतवाला ज़मींदार वह चीज़ तोड़ने की फ़िक्र में था जो कहीं थी ही नहीं। जैसे नासमझ बच्चा अपनी परछाईं से लड़ने लगता है।

६

साल भर तख़त सिंह ने ज्यों-त्यों करके काटा। फिर बरसात आयी। उसका घर छाया न गया था। कई दिन तक मूसलाधार मेंह बरसा तो मकान का एक हिस्सा गिर पड़ा। गाय वहाँ बँधी हुई थी, दबकर मर गयी। तख़त सिंह को भी सख़्त चोट आयी। उसी दिन से बुख़ार आना शुरू हुआ। दवा-दारू कौन करता, रोज़ी का सहारा था वह भी टूटा। ज़ालिम बेदर्द मुसीबत ने कुचल डाला। सारा मकान पानी

से भरा हुआ, घर में अनाज का एक दाना नहीं, अँधेरे में पड़ा हुआ कराह रहा था कि रेवती उसके घर गयी। तख़त सिंह ने आँखें खोलीं और पूछा कौन है?

ठकुराइन—रेवती रानी हैं।

तख़त सिंह—मेरे धन्यभाग, मुझ पर बड़ी दया की।

रेवती ने लज्जित होकर कहा—ठकुराइन, ईश्वर जानता है, मैं अपने बेटे से हैरान हूं। तुम्हें जो तकलीफ़ हो मुझसे कहो। तुम्हारे ऊपर ऐसी आफत पड़ गयी और हमसे ख़बर तक न की?

यह कहकर रेवती ने रुपयों की एक छोटी-सी पोटली ठकुराइन के सामने रख दी।

रुपयों की झनकार सुनकर तख़त सिंह उठ बैठा और बोला—रानी, हम इसके भूखे नहीं हैं। मरते दम गुनहगार न करो।

दूसरे दिन हीरामणि भी अपने मुसाहिबों को लिये उधर से जा निकला। गिरा हुआ मकान देखकर मुस्कराया। उसके दिल ने कहा, आखिर मैंने उसका घमण्ड तोड़ दिया। मकान के अन्दर जाकर बोला—ठाकुर, अब क्या हाल है?

ठाकुर ने धीरे से कहा—सब ईश्वर की दया है, आप कैसे भूल पड़े?

हीरामणि को दूसरी बार हार खानी पड़ी। उसकी यह आरजू कि तख़त सिंह मेरे पाँव को आँखों से चूमे, अब भी पूरी न हुई। उसी रात को वह ग़रीब, आज़ाद, ईमानदार और बेग़रज़ ठाकुर इस दुनिया से बिदा हो गया।

७

बूढ़ी ठकुराइन अब दुनिया में अकेली थी। कोई उसके ग़म का शरीक और उसके मरने पर आँसू बहानेवाला न था। कंगाली ने ग़म की आँच और तेज़ कर दी थी। ज़रूरत की चीज़ें मौत के घाव को चाहे न भर सकें मगर मरहम का काम ज़रूर करती हैं।

रोटी की चिन्ता बुरी बला है। ठकुराइन अब खेत और चरागाह से गोबर चुन लाती और उपले बनाकर बेचती। उसे लाठी टेकते हुए खेतों को जाते और गोबर का टोकरा सिर पर रखकर बोझ से हाँफते हुए आते देखना बहुत ही दर्दनाक था। यहाँ तक कि हीरामणि को भी उस पर तरस आ गया। एक दिन उन्होंने आटा, दाल, चावल, थालियों में रखकर उसके पास भेजा। रेवती खुद लेकर गयी। मगर बूढ़ी ठकुराइन आँखों में आँसू भरकर बोली—रेवती, जब तक आँखों से

सूझता है और हाथ-पाँव चलते हैं, मुझे और मरनेवाले को गुनहगार न करो।

उस दिन से हीरामणि को फिर उसके साथ अमली हमदर्दी दिखलाने का साहस न हुआ।

एक दिन रेवती ने ठकुराइन से उपले मोल लिये। गाँव में पैसे के तीस उपले बिकते थे। उसने चाहा कि इससे बीस ही उपले लूँ। उस दिन से ठकुराइन ने उसके यहाँ उपले लाना बन्द कर दिया।

ऐसी देवियां दुनिया में कितनी हैं! क्या वह इतना न जानती थी कि एक गुप्त रहस्य ज़बान पर लाकर मैं अपनी इन तकलीफ़ों का खात्मा कर सकती हूँ! मगर फिर वह एहसान का बदला न हो जायगा! मसल मशहूर है नेकी कर और दरिया में डाल। शायद उसके दिल में कभी यह खयाल ही न आया कि मैंने रेवती पर कोई एहसान किया।

यह वज़ादार, आन पर मरनेवाली औरत पति के मरने के बाद तीन साल तक ज़िन्दा रही। यह ज़माना उसने जिस तकलीफ़ से काटा उसे याद करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कई-कई दिन निराहार बीत जाते। कभी गोबर न मिलता, कभी कोई उपले चुरा ले जाता। ईश्वर की मर्ज़ी! किसी का घर भरा हुआ है, खानेवाले नहीं। कोई यों रो-रोकर जिन्दगी काटता है।

बुढ़िया ने यह सब दुख झेला मगर किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया।

८

हीरामणि की तीसवीं सालगिरह आयी। ढोल की सुहानी आवाज़ सुनायी देने लगी। एक तरफ घी की पूड़ियाँ पक रही थीं, दूसरे तरफ तेल की। घी की मोटे ब्राह्मणों के लिए, तेल की ग़रीब भूखे नीचों के लिए।

अचानक एक औरत ने रेवती से आकर कहा—ठकुराइन जाने कैसी हुई जाती हैं। तुम्हें बुला रही हैं।

रेवती ने दिल में कहा—आज तो खैरियत से काटना, कहीं बुढ़िया मर न रही हो।

यह सोचकर वह बुढ़िया के पास न गयी। हीरामणि ने जब देखा, अम्माँ नहीं जाना चाहतीं तो खुद चला। ठकुराइन पर उसे कुछ दिनों से दया आने लगी थी। मगर रेवती मकान के दरवाज़े तक उसे मना करने आयी। यह रहमदिल, नेक-मिज़ाज, शरीफ़ रेवती थी।

हीरामणि ठकुराइन के मकान पर पहुँचा तो वहाँ बिल्कुल सन्नाटा छाया हुआ था। बूढ़ी औरत का चेहरा पीला था और जान निकलने की हालत उस पर छायी हुई थी। हीरामणि ने जोर से कहा—ठकुराइन, मैं हूँ, हीरामणि।

ठकुराइन ने आँखें खोलीं और इशारे से उसे अपना सिर नज़दीक लाने को कहा। फिर रुक-रुककर बोली—मेरे सिरहाने पिटारी में ठाकुर की हड्डियाँ रखी हुई हैं, मेरे सुहाग का सेंदुर भी वहीं है। यह दोनों प्रयागराज भेज देना।

यह कहकर उसने आंखें बन्द कर लीं। हीरामणि ने पिटारी खोली तो दोनों चीजें हिफ़ाज़त के साथ रक्खी हुई थीं। एक पोटली में दस रुपये भी रक्खे हुए मिले। यह शायद जानेवाले का सफ़रख़र्च था!

रात को ठकुराइन के कष्टों का हमेशा के लिए अन्त हो गया।

उसी रात को रेवती ने सपना देखा—सावन का मेला है, घटाएं छाई हुई हैं, मैं कीरत सागर के किनारे खड़ी हूँ। इतने में हीरामणि पानी में फिसल पड़ा। मैं छाती पीट-पीटकर रोने लगी। अचानक एक बूढ़ा आदमी पानी में कूदा और हीरामणि को निकाल लाया। रेवती उसके पाँव पर गिर पड़ी और बोली—आप कौन हैं?

उसने जवाब दिया—मैं श्रीपुर में रहता हूँ, मेरा नाम तखत सिंह है।

श्रीपुर अब भी हीरामणि के क़ब्जे में है, मगर अब उसकी रौनक दोबाला हो गयी है। वहाँ जाओ तो दूर से शिवाले का सुनहरा कलश दिखायी देने लगता है; जिस जगह तखत सिंह का मकान था, वहाँ यह शिवाला बना हुआ है। उसके सामने एक पक्का कुआँ और पक्की धर्मशाला है। मुसाफिर यहाँ ठहरते हैं और तखत सिंह का गुन गाते हैं। यह शिवाला और धर्मशाला दोनों उसके नाम से मशहूर हैं।

उर्दू 'प्रेमपचीसी' से

बाँका ज़मींदार

ठाकुर प्रद्युम्न सिंह एक प्रतिष्ठित वकील थे और अपने हौसले और हिम्मत के लिए सारे शहर में मशहूर। उनके दोस्त अक्सर कहा करते कि अदालत की इजलास में उनके मर्दाना कमाल ज़्यादा साफ़ तरीक़े पर ज़ाहिर हुआ करते हैं। इसी की बरकत थी कि बावजूद इसके कि उन्हें शायद ही कभी किसी मामले में सुर्ख़-रूई हासिल होती थी, उनके मुवक्किलों की भक्ति-भावना में ज़रा भर भी फ़र्क़ नहीं आता था। इन्साफ़ की कुर्सी पर बैठनेवाले बड़े लोगों की निडर आज़ादी पर किसी प्रकार का सन्देह करना पाप ही क्यों न हो, मगर शहर के जानकार लोग ऐलानिया कहते थे कि ठाकुर साहब जब किसी मामले में जिद पकड़ लेते हैं तो उनका बदला हुआ तेवर और तमतमाया हुआ चेहरा इन्साफ़ को भी अपने वश में कर लेता है। एक से ज़्यादा मौकों पर उनके जीवट और जिगरे ने वे चमत्कार कर दिखाये थे जहाँ कि इन्साफ़ और क़ानून ने जवाब दे दिया। इसके साथ ही ठाकुर साहब मर्दाना गुणों के सच्चे जौहरी थे। अगर मुवक्किल को कुश्ती में कुछ पैठ हो तो यह जरुरी नहीं था कि वह उनकी सेवाएँ प्राप्त करने के लिए रुपया-पैसा दे। इसीलिए उनके यहाँ शहर के पहलवानों और फेकैतों का हमेशा जमघट रहता था और यही वह ज़बर्दस्त प्रभावशाली और व्यावहारिक कानूनी बारीकी थी जिसकी काट करने में इन्साफ़ को भी आगा-पीछा सोचना पड़ता। वे गर्व और सच्चे गर्व की दिल से क़दर करते थे। उनके बेतकल्लुफ़ घर की ड्योढ़ियाँ बहुत ऊँची थीं। वहाँ झुकने की ज़रूरत न थी। इन्सान खूब सिर उठाकर जा सकता था। यह एक विश्वस्त कहानी है कि एक बार उन्होंने किसी मुकदमे को बावजूद बहुत विनती और आग्रह के हाथ में लेने से इनकार किया। मुवक्किल कोई अक्खड़ देहाती था। उसने जब आरज़ू-मिन्नत से काम निकलते न देखा तो हिम्मत से काम लिया। वकील साहब कुर्सी से नीचे गिर पड़े और बिफरे हुए देहाती को सीने से लगा लिया।

२

घर और धरती के बीच आदिकाल से एक आकर्षण है। धरती में साधारण

गुरुत्वाकर्षण के अलावा एक ख़ास ताक़त होती है जो हमेशा धन को अपनी तरफ़ खींचती है। सूद और तमस्सुक और व्यापार, यह दौलत की बीच की मंज़िलें हैं, ज़मीन उसकी आखिरी मंज़िल है। ठाकुर प्रद्युम्न सिह की निगाहें बहुत अर्से से एक बहुत उपजाऊ मौज़े पर लगी हुई थीं। लेकिन बैंक का एकाउण्ट कभी हौसले को कदम नहीं बढ़ाने देता था। यहाँ तक कि एक दफ़ा उसी मौज़े का ज़मींदार एक क़त्ल के मामले में पकड़ा गया। उसने सिर्फ़ रस्मो-रिवाज के माफ़िक़ एक असामी को दिन भर धूप और जेठ की जलती हुई धूप में खड़ा रखा था लेकिन अगर सूरज की गर्मी या जिस्म की कमज़ोरी या प्यास की तेज़ी उसकी जानलेवा बन जाय तो इसमें ज़मींदार की क्या ख़ता थी। यह शहर के वकीलों की ज़्यादती थी कि कोई उसकी हिमायत पर आमादा न हुआ या मुमकिन है ज़मीन्दार के हाथ की तंगी को भी उसमें कुछ दखल हो। बहरहाल, उसने चारों तरफ से ठोकरें खाकर ठाकुर साहब की शरण ली। मुकदमा निहायत कमज़ोर था। पुलिस ने अपनी पूरी ताक़त से धावा किया था और उसकी कुमक के लिए शासन और अधिकार के ताज़े से ताज़े रिसाले तैयार थे। ठाकुर साहब अनुभवी सँपेरों की तरह साँप के बिल में हाथ नहीं डालते थे लेकिन इस मौके पर उन्हें रूखी-सूखी मसलहत के मुक़ाबले में अपनी मुरादों का पल्ला झुकता हुआ नज़र आया। ज़मींदार को इत्मीनान दिलाया और वकालतनामा दाखिल कर दिया और फिर इस तरह जी-जान से मुकदमे की पैरवी की, कुछ इस तरह जान लड़ायी कि मैदान से जीत का डंका बजाते हुए निकले। जनता की ज़बान इस जीत का सेहरा उनकी क़ानूनी पैठ के सर नहीं, उनके मर्दाना गुणों के सर रखती है क्यों कि उन दिनों वकील साहब नज़ीरों और दफ़ाओं की हिम्मत-तोड़ पेचीदगियों में उलझने के बजाय दंगल की उत्साहवर्द्धक दिलचस्पियों में ज्यादा लगे रहते थे लेकिन यह बात ज़रा भी यक़ीन करने के क़ाबिल नहीं मालूम होती। ज़्यादा जानकार लोग कहते हैं कि अनार के बमगोलों और सेब और अंगूर की गोलियों ने पुलिस के इस पुरशोर हमले को तोड़कर बिखेर दिया। ग़रज़ कि मैदान हमारे ठाकुर साहब के हाथ रहा। ज़मींदार की जान बची। मौत के मुँह से निकल आया। उनके पैरों पर गिर पड़ा और बोला—ठाकुर साहब, मैं इस क़ाबिल तो नहीं कि आपकी खिदमत कर सकूँ। ईश्वर ने आपको बहुत कुछ दिया है लेकिन कृष्ण भगवान् ने ग़रीब सुदामा के सूखे चावल खुशी से क़बूल किये थे। मेरे पास बुज़ुर्गों की यादगार एक छोटा-सा वीरान मौज़ा है उसे आपकी भेंट करता हूँ। आपके लायक़ तो नहीं लेकिन मेरी खातिर से इसे क़बूल कीजिए। मैं आपका जस

कभी न भूलूँगा। वकील साहब फड़क उठे। दो-चार बार निस्पृह बैरागियों की तरह इन्कार करने के बाद इस भेंट को क़बूल कर लिया। मुँह-माँगी मुराद मिली।

३

इस मौज़े के लोग बेहद सरकश और झगड़ालू थे, जिन्हें इस बात का गर्व था कि कभी कोई ज़मींदार उन्हें बस में नहीं कर सका। लेकिन जब उन्होंने अपनी बागडोर प्रद्युम्न सिंह के हाथों में जाते देखी तो चौकड़ियाँ भूल गये, एक बद-लगाम घोड़े की तरह सवार को कनखियों से देखा, कनौतियाँ खड़ी कीं, कुछ हिन-हिनाये और तब गर्दनें झुका दीं। समझ गये कि यह जिगर का मज़बूत और आसन का पक्का शहसवार है।

असाढ़ का महीना था। किसान गहने और बर्तन बेच-बेचकर बैलों की तलाश में दर-ब-दर फिरते थे। गाँवों की बूढ़ी बनियाइन नवेली दुलहन बनी हुई थी और फ़ाका करनेवाला कुम्हार बरात का दूल्हा था। मज़दूर मौके के बादशाह बने हुए थे। टपकती हुई छतें उनकी कृपादृष्टि की राह देख रही थीं। घास से ढके हुए खेत उनके ममतापूर्ण हाथों के मुहताज। जिसे चाहते थे बसाते थे, जिसे चाहते थे उजाड़ते थे। आम और जामुन के पेड़ों पर आठों पहर निशानेबाज़ मनचले लड़कों का धावा रहता था। बूढ़े गर्दनों में झोलियाँ लटकाये पहर रात से टपके की खोज में घूमते नज़र आते थे जो बुढ़ापे के बावजूद भोजन और जाप से ज्यादा दिलचस्प और मज़ेदार काम था। नाले पुरशोर, नदियाँ अथाह, चारों तरफ हरियाली और खुशहाली। इन्हीं दिनों ठाकुर साहब मौत की तरह, जिसके आने की पहले से कोई सूचना नहीं होती, गाँव में आये। एक सजी हुई बरात थी, हाथी और घोड़े, और साज-सामान, लठैतों का एक रिसाला-सा था। गाँव ने यह तूमतड़ाक और आन-बान देखी तो रहे-सहे होश उड़ गये। घोड़े खेतों में ऐंडने लगे और गुंडे गलियों में। शाम के वक्त ठाकुर साहब ने अपने असामियों को बुलाया और बुलन्द आवाज़ में बोले—मैंने सुना है कि तुम लोग बड़े सरकश हो और मेरी सरकशी का हाल तुमको मालूम ही है। अब ईंट और पत्थर का सामना है। बोलो क्या मंजूर है ?

एक बूढ़े किसान ने बेद के पेड़ की तरह काँपते हुए जवाब दिया—सरकार, आप हमारे राजा हैं। हम आपसे ऐंठकर कहाँ जायेंगे।

ठाकुर साहब तेवर बदलकर बोले—तो तुम लोग सब के सब कल सुबह तक

तीन साल का पेशगी लगान दाखिल कर दो और खूब ध्यान देकर सुन लो कि मैं हुक्म को दुहराना नहीं जानता वर्ना मैं गाँव में हल चलवा दूँगा और घरों को खेत बना दूँगा ।

सारे गाँव में कोहराम मच गया । तीन साल का पेशगी लगान और इतनी जल्दी, जुटाना असम्भव था। रात इसी हैस-बैस में कटी। अभी तक आरज़ू-मिन्नत के बिजली जैसे असर की उम्मीद बाकी थी। सुबह बड़ी इन्तज़ार के बाद आयी तो प्रलय बनकर आयी। एक तरफ तो ज़ोर-ज़बर्दस्ती और अन्याय-अत्याचार का बाज़ार गर्म था, दूसरी तरफ रोती हुई आँखों, सर्द आहों और चीख-पुकार का, जिन्हें सुननेवाला कोई न था। ग़रीब किसान अपनी-अपनी पोटलियाँ लादे, बेकस अन्दाज़ से ताकते, आँखों में याचना भरे बीवी-बच्चों को साथ लिये रोते-बिलखते किसी अज्ञात देश को चले जाते थे। शाम हुई तो गाँव उजड़ गया था।

४

यह खबर बहुत जल्द चारों तरफ फैल गयी। लोगों को ठाकुर साहब के इन्सान होने पर सन्देह होने लगा। गाँव वीरान पड़ा हुआ था। कौन उसे आबाद करे। किसके बच्चे उसकी गलियों में खेलें। किसकी औरतें कुओं पर पानी भरें! राह चलते हुए मुसाफिर तबाही का यह दृश्य आँखों से देखते और अफसोस करते। नहीं मालूम उन बिराने देश में पड़े हुए ग़रीबों पर क्या गुज़री। आह, जो मेहनत की कमाई खाते थे और सर उठाकर चलते थे, अब दूसरों की गुलामी कर रहे हैं।

इस तरह एक पूरा साल गुज़र गया। तब गाँव के नसीब जागे। ज़मीन उपजाऊ थी। मकान मौजूद। धीरे-धीरे जुल्म की यह दास्तान फीकी पड़ गयी। मनचले किसानों की लोभ-दृष्टि उस पर पड़ने लगी। बला से ज़मींदार ज़ालिम है, बेरहम है, सख्तियाँ करता है, हम उसे मना लेंगे। तीन साल की पेशगी लगान का क्या ज़िक्र वह जैसे खुश होगा, खुश करेंगे। उसकी गालियों को दुआ समझेंगे, उसके जूते अपने सर आँखों पर रक्खेंगे। वह राजा हैं, हम उनके चाकर हैं। ज़िन्दगी की कशमकश और लड़ाई में आत्मसम्मान को निबाहना कैसा मुश्किल काम है! दूसरा असाढ़ आया तो वह गाँव फिर बाग़ीचा बना हुआ था। बच्चे फिर अपने दरवाज़ों पर घरौंदे बनाने लगे, मर्दों के बुलन्द आवाज़ के गाने खेतों में सुनायी दिये व औरतों के सुहाने गीत चक्कियों पर। ज़िन्दगी के मोहक दृश्य दिखायी देने लगे।

साल भर और गुज़रा। जब रबी की दूसरी फसल आयी तो सुनहरी बालों

को खेतों में लहराते देखकर किसानों के दिल लहराने लगते थे। साल भर की परती ज़मीन ने सोना उगल दिया था। औरतें खुश थीं कि अब की नये-नये गहने बनवायेंगे, मर्द खुश थे कि अच्छे-अच्छे बैल मोल लेंगे और दारोग़ा जी की खुशी का तो अन्त ही न था। ठाकुर साहब ने यह खुशखबरी सुनी और देहात की सैर को चले। वही शानशौकत, वही लठैतों का रिसाला, वही गुंडों की फौज ! गाँव-वालों ने उनके आदर-सत्कार की तैयारियाँ करनी शुरू कीं। मोटे-ताज़े बकरों का एक पूरा गल्ला चौपाल के दरवाज़े पर बाँधा। लकड़ी के अम्बार लगा दिये, दूध के हौज़ भर दिये। ठाकुर साहब गाँव की मेड़ पर पहुँचे तो पूरे एक सौ आदमी उनकी अगवानी के लिए हाथ बाँधे खड़े थे। लेकिन पहली चीज़ जिसकी फरमाइश हुई वह लेमनेड और बर्फ़ था। असामियों के हाथों के तोते उड़ गये। यह पानी की बोतल इस वक्त वहाँ अमृत के दामों बिक सकती थी। मगर बेचारे देहाती अमीरों के चोंचले क्या जानें। मुजरिमों की तरह सिर झुकाये भौंचक खड़े थे। चेहरे पर झेंप और शर्म थी। दिलों में धड़कन और भय। ईश्वर ! बात बिगड़ गयी है, अब तुम्हीं सम्हालो।

बर्फ़ की ठण्डक न मिली तो ठाकुर साहब की प्यास की आग और भी तेज़ हुई, गुस्सा भड़क उठा, कड़ककर बोले—मैं शैतान नहीं हूं कि बकरों के खून से प्यास बुझाऊँ, मुझे ठंडा बर्फ चाहिए और यह प्यास तुम्हारे और तुम्हारी औरतों के आँसुओं से ही बुझेगी। एहसानफ़रामोश, नीच, मैंने तुम्हें ज़मीन दी, मकान दिये और हैसियत दी और इसके बदले में तुम ये दे रहे हो कि मैं खड़ा पानी को तरसता हूँ ! तुम इस क़ाबिल नहीं हो कि तुम्हारे साथ कोई रियायत की जाय। कल शाम तक मैं तुममें से किसी आदमी की सूरत इस गाँव में न देखूँ वर्ना प्रलय हो जायगा। तुम जानते हो कि मुझे अपना हुक्म दुहराने की आदत नहीं है। रात तुम्हारी है, जो कुछ ले जा सको, ले जाओ। लेकिन शाम को मैं किसी की मनहूस सूरत न देखूँ। यह रोना और चीखना फिजूल है, मेरा दिल पत्थर का है और कलेजा लोहे का, आँसुओं से नहीं पसीजता।

और ऐसा ही हुआ। दूसरी रात को सारे गाँव में कोई दिया जलानेवाला तक न रहा। फूलता-फलता हुआ गाँव भूत का डेरा बन गया।

५

बहुत दिनों तक यह घटना आस-पास के मनचले क़िस्सागोयों के लिए दिल-

चस्पियों का ख़ज़ाना बनी रही। एक साहब ने उस पर अपनी क़लम भी चलायी। बेचारे ठाकुर साहब ऐसे बदनाम हुए कि घर से निकलना मुश्किल हो गया। बहुत कोशिश की कि गाँव आबाद हो जाय लेकिन किसकी जान भारी थी कि इस अंधेर नगरी में क़दम रखता जहाँ मोटापे की सज़ा फाँसी थी। कुछ मज़दूर-पेशा लोग क़िस्मत का जुआ खेलने आये मगर कुछ महीनों से ज़्यादा न जम सके। उजड़ा हुआ गाँव खोया हुआ एतबार है जो बहुत मुश्किल से जमता है। आखिर जब कोई बस न चला तो ठाकुर साहब ने मजबूर होकर आराज़ी माफ करने का आम ऐलान कर दिया लेकिन इस रियायत ने रही-सही साख भी खो दी। इस तरह तीन साल गुज़र जाने के बाद एक रोज़ वहाँ बंजारों का क़ाफ़िला आया। शाम हो गयी थी और पूरब तरफ से अँधेरे की लहर बढ़ती चली आती थी। बंजारों ने देखा तो सारा गाँव वीरान पड़ा हुआ है, जहाँ आदमियों के घरों में गिद्ध और गीदड़ रहते थे। इस तिलिस्म का भेद समझ में न आया। मकान मौजूद हैं, ज़मीन उपजाऊ है, हरियाली से लहराते हुए खेत हैं और इन्सान का नाम नहीं! कोई और गाँव पास न था। वहीं पड़ाव डाल दिया। जब सुबह हुई, बैलों के गलों की घंटियों ने फिर अपना रजत-संगीत अलापना शुरू किया और क़ाफ़िला गाँव से कुछ दूर निकल गया तो एक चरवाहे ने ज़ोर-ज़बर्दस्ती की यह लम्बी कहानी उन्हें सुनायी। दुनिया भर में घूमते फिरने ने उन्हें मुश्किलों का आदी बना दिया था। आपस में कुछ मशविरा किया और फ़ैसला हो गया। ठाकुर साहब की ड्योढ़ी पर जा पहुँचे और नज़राने दाखिल कर दिये। गाँव फिर आबाद हुआ।

यह बंजारे बला के चीमड़, लोहे की-सी हिम्मत और इरादे के लोग थे जिनके आते ही गाँव में लक्ष्मी का राज हो गया। फिर घरों में से धुएँ के बादल उठे, कोल्हाड़ों ने फिर धुएँ और भाप की चादरें पहनीं, तुलसी के चबूतरे पर फिर से चिराग़ जले। रात को रंगीन-तबीयत नौजवानों की अलापें सुनायी देने लगीं। चरागाहों में फिर मवेशियों के गल्ले दिखायी दिये और किसी पेड़ के नीचे बैठे हुए चरवाहे की बाँसुरी की मद्धिम और रसीली आवाज़ दर्द और असर में डूबी हुई इस प्राकृतिक दृश्य में जादू का आकर्षण पैदा करने लगी।

भादों का महीना था। कपास के फूलों की सुर्ख़ और सफेद चिकनाई, तिल की ऊदी बहार और सन का शोख पीलापन अपने रूप का जलवा दिखाता था। किसानों की मड़ैया और छप्परों पर भी फल-फूल की रंगीनी दिखायी देती थी। उस पर पानी की हलकी-हलकी फुहारें प्रकृति के सौन्दर्य के लिए सिंगार करनेवाली

का काम दे रही थीं। जिस तरह साधुओं के दिल सत्य की ज्योति से भरे होते हैं, उसी तरह सागर और तालाब साफ़-शफ़्फ़ाफ़ पानी से भरे थे। शायद राजा इन्द्र कैलाश की तरावट भरी ऊँचाइयों से उतरकर अब मैदानों में आनेवाले थे। इसीलिए प्रकृति ने सौन्दर्य और सिद्धियों और आशाओं के भी भाण्डार खोल दिये थे। वकील साहब को भी सैर की तमन्ना ने गुदगुदाया। हमेशा की तरह अपने रईसाना ठाट-बाट के साथ गाँव में आ पहुँचे। देखा तो संतोष और निश्चिन्तता के वरदान चारों तरफ स्पष्ट थे।

६

गाँववालों ने उनके शुभागमन का समाचार सुना, सलाम को हाज़िर हुए। वकील साहब ने उन्हें अच्छे-अच्छे कपड़ पहने, स्वाभिमान के साथ क़दम मिलाते हुए देखा। उनसे बहुत मुस्कराकर मिले। फ़स्ल का हालचाल पूछा। बूढ़े हरदास ने एक ऐसे लहजे में जिससे पूरी ज़िम्मेदारी और चौधरापे की शान टपकती थी, जवाब दिया—हुज़ूर के क़दमों की बरकत से सब चैन है। किसी तरह की तकलीफ़ नहीं। आपकी दी हुई नेमत खाते हैं और आपका जस गाते हैं। हमारे राजा और सरकार जो कुछ हैं, आप हैं और आपके लिए जान तक हाज़िर है।

ठाकुर साहब ने तेवर बदलकर कहा—मैं अपनी खुशामद सुनने का आदी नहीं हूँ।

बूढ़े हरदास के माथे पर बल पड़े, अभिमान को चोट लगी। बोला—मुझे भी खुशामद करने की आदत नहीं है।

ठाकुर साहब ने ऐंठकर जवाब दिया—तुम्हें रईसों से बात करने की तमीज़ नहीं। ताक़त की तरह तुम्हारी अक़्ल भी बुढ़ापे की भेंट चढ़ गयी।

हरदास ने अपने साथियों की तरफ देखा। गुस्से की गर्मी से सब की आँख फैली हुई और धीरज की सर्दी से माथे सिकुड़े हुए थे। बोला—हम आपकी रैयत हैं लेकिन हमको अपनी आबरू प्यारी है और चाहे अपने ज़मीन्दार को अपना सिर दे दें आबरू नहीं दे सकते।

हरदास के कई मनचले साथियों ने बुलन्द आवाज़ में ताईद की—आबरू जान के पीछे है।

ठाकुर साहब के गुस्से की आग भड़क उठी और चेहरा लाल हो गया, और ज़ोर से बोले—तुम लोग ज़बान सम्हालकर बातें करो वर्ना जिस तरह गले में झोलियाँ लटकाये आये थे उसी तरह निकाल दिये जाओगे। मैं प्रद्युम्न सिंह हूँ जिसने तुम

जैसे कितने ही हेकड़ों को इसी जगह कुचलवा डाला है। यह कहकर उन्होंने अपने रिसाले के सरदार अर्जुन सिंह को बुलाकर कहा—ठाकुर, अब इन चींटियों के पर निकल आये हैं, कल शाम तक इन लोगों से मेरा गाँव साफ हो जाय।

हरदास खड़ा हो गया। गुस्सा अब चिनगारी बनकर आँखों से निकल रहा था। बोला—हमने इस गाँव को छोड़ने के लिए नहीं बसाया है। जब तक ज़ियेंगे इसी गाँव में रहेंगे, यहीं पैदा होंगे और यहीं मरेंगे। आप बड़े आदमी हैं और बड़ों की समझ भी बड़ी होती है। हम लोग अक्खड़ गँवार हैं। नाहक ग़रीबों की जान के पीछे न पड़िए। खून-खराबा हो जायगा। लेकिन आपको यही मंजूर है तो हमारी तरफ से आपके सिपाहियों को चुनौती है, जब चाहे दिल के अरमान निकाल लें।

इतना कहकर ठाकुर साहब को सलाम किया और चल दिया। उसके साथी भी गर्व के साथ अकड़ते हुए चले। अर्जुन सिंह ने उनके तेवर देखे। समझ गया कि यह लोहे के चने हैं लेकिन शोहदों का सरदार था, कुछ अपने नाम की लाज थी। दूसरे दिन शाम के वक्त जब रात और दिन में मुठभेड़ हो रही थी, इन दोनों जमातों का सामना हुआ। फिर वह धौल-धप्पा हुआ कि ज़मीन थर्रा गयी। ज़बानों ने मुँह के अन्दर वह मार्के दिखाये कि सूरज डर के मारे पच्छिम में जा छिपा। तब लाठियों ने सिर उठाया लेकिन इसके पहले कि वह डाक्टर साहब की दुआ और शुक्रिये की मुस्तहक़ हों अर्जुन सिंह ने समझदारी से काम लिया। ताहम उनके चन्द आदमियों के लिए गुड़ और हल्दी पीने का सामान हो चुका था।

वकील साहब ने अपनी फौज की यह बुरी हालत देखी, किसी के कपड़े फटे हुए, किसी के जिस्म पर गर्द जमी हुई, कोई हाँफते-हाँफते बेदम (खून बहुत कम नज़र आया क्योंकि यह एक अनमोल चीज़ है और इसे डंडों की मार से बचा लिया गया) तो उन्होंने अर्जुन सिंह की पीठ ठोंकी और उसकी बहादुरी और जाँबाज़ी की खूब तारीफ़ की। रात को उनके सामने लड्डू और इमिरतियों की ऐसी वर्षा हुई कि यह सब गर्द-गुबार धुल गया। सुबह को इस रिसाले ने ठंडे-ठंडे घर की राह ली और क़सम खा गये कि अब भूलकर भी इस गाँव का रुख न करेंगे।

तब ठाकुर साहब ने गाँव के आदमियों को चौपाल में तलब किया। उनके इशारे की देर थी। सब लोग इकट्ठे हो गये। अख्तियार और हुकूमत अगर घमण्ड की मसनद से उतर आये तो दुश्मनों को भी दोस्त बना सकती है। जब सब आदमी आ गये तो ठाकुर साहब एक-एक करके उनसे बग़लगीर हुए और बोले—मैं ईश्वर का बहुत ऋणी हूँ कि मुझे इस गाँव के लिए जिन आदमियों की तलाश

थी, वह लोग मिल गये। आपको मालूम है कि यह गाँव कई बार उजड़ा और कई बार बसा। उसका कारण यही था कि वे लोग मेरी कसौटी पर पूरे न उतरते थे। मैं उनका दुश्मन नहीं था लेकिन मेरी दिली आरजू यह थी कि इस गाँव में वे लोग आबाद हों जो जुल्म का मर्दों की तरह सामना करें, जो अपने अधिकारों और रिआयतों की मर्दों की तरह हिफ़ाजत करें, जो हुकूमत के गुलाम न हों, जो रोब और अख्तियार की तेज़ निगाह देखकर बच्चों की तरह डर से सहम न जायँ। मुझे इत्मीनान है कि बहुत नुकसान और शर्मिन्दगी और बदनामी के बाद मेरी तमन्नाएँ पूरी हो गयीं। मुझे इत्मीनान है कि आप उल्टी हवाओं और ऊँची-ऊँची उठनेवाली लहरों का मुक़ाबला कामयाबी से करेंगे। मैं आज इस गाँव से अपना हाथ खींचता हूँ। आज से यह आपकी मिल्कियत है। आपही इसके ज़मीन्दार और मालिक हैं। ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि आप फूलें-फलें और सरसब्ज़ हों।

इन शब्दों ने दिलों पर जादू का काम किया। लोग स्वामिभक्ति के आवेश से मस्त हो-होकर ठाकुर साहब के पैरों से लिपट गये और कहने लगे—हम आपके क़दमों से जीते-जी जुदा न होंगे। आपका-सा क़द्रदान और रिआया-परवर बुजुर्ग हम कहाँ पायेंगे। वीरों की भक्ति और सहानुभूति, वफादारी और एहसान का एक बड़ा दर्दनाक और असर पैदा करनेवाला दृश्य आँखों के सामने पेश हो गया। लेकिन ठाकुर साहब अपने उदार निश्चय पर दृढ़ रहे और गो पचास साल से ज़्यादा गुज़र गये हैं लेकिन उन्हीं बंजारों के वारिस अभी तक मौज़ा साहबगंज के माफीदार हैं। औरतें अभी तक ठाकुर प्रद्युम्न सिंह की पूजा और मन्नतें करती हैं और गो अब इस मौज़े के कई नौजवान दौलत और हुकूमत की बुलन्दी पर पहुँच गये हैं लेकिन बूढ़े और अक्खड़ हरदास के नाम पर अब भी गर्व करते हैं। और भादों सुदी एकादशी के दिन अब भी उसी मुबारक फतेह की यादगार में जशन मनाये जाते हैं।

—ज़माना, अक्तूबर १९१३

अनाथ लड़की

सेठ पुरुषोत्तमदास पूना की सरस्वती पाठशाला का मुआयना करने के बाद बाहर निकले तो एक लड़की ने दौड़कर उनका दामन पकड़ लिया। सेठ जी रुक गये और मुहब्बत से उसकी तरफ देखकर पूछा—तुम्हारा क्या नाम है?

लड़की ने जवाब दिया—रोहिणी।

सेठ जी ने उसे गोद में उठा लिया और बोले—तुम्हें कुछ इनाम मिला?

लड़की ने उनकी तरफ बच्चों जैसी गम्भीरता से देखकर कहा—तुम चले जाते हो, मुझे रोना आता है, मुझे भी साथ लेते चलो।

सेठ जी ने हँसकर कहा—मुझे बड़ी दूर जाना है, तुम कैसे चलोगी?

रोहिणी ने प्यार से उनकी गर्दन में हाथ डाल दिये और बोली—जहाँ तुम जाओगे वहीं मैं भी चलूँगी। मैं तुम्हारी बेटी हूँगी।

मदरसे के अफसर ने आगे बढ़कर कहा—इसका बाप साल भर हुआ नहीं रहा। माँ कपड़े सीती है, बड़ी मुश्किल से गुज़र होती है।

सेठ जी के स्वभाव में करुणा बहुत थी। यह सुनकर उनकी आँखें भर आयीं। उस भोली प्रार्थना में वह दर्द था जो पत्थर-से दिल को पिघला सकता है। बेकसी और यतीमी को इससे ज़्यादा दर्दनाक ढंग से ज़ाहिर करना नामुमकिन था। उन्होंने सोचा—इस नन्हें-से दिल में न जाने क्या-क्या अरमान होंगे। और लड़कियाँ अपने खिलौने दिखाकर कहती होंगी, यह मेरे बाप ने दिया है। वह अपने बाप के साथ मदरसे आती होंगी, उसके साथ मेलों में जाती होंगी और उनकी दिलचस्पियों का ज़िक्र करती होंगी। यह सब बातें सुन-सुनकर इस भोली लड़की को भी ख्वाहिश होती होगी कि मेरे बाप होता। माँ की मुहब्बत में गहराई और आत्मिकता होती है जिसे बच्चे समझ नहीं सकते। बाप की मुहब्बत में ख़ुशी और चाव होता है जिसे बच्चे खूब समझते हैं।

सेठ जी ने रोहिणी को प्यार से गले लगा लिया और बोले—अच्छा मैं तुम्हें अपनी बेटी बनाऊँगा। लेकिन ख़ूब जी लगाकर पढ़ना। अब छुट्टी का वक्त आ गया है, मेरे साथ आओ, तुम्हारे घर पहुँचा दूँ।

यह कहकर उन्होंने रोहिणी को अपनी मोटरकार में बिठा लिया। रोहिणी ने बड़े इत्मीनान और बड़े गर्व से अपनी सहेलियों की तरफ देखा। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें ख़ुशी से चमक रही थीं और चेहरा चाँदनी रात की तरह खिला हुआ था।

२

सेठ जी ने रोहिणी को बाज़ार की ख़ूब सैर करायी और कुछ उसकी पसन्द से कुछ अपनी पसन्द से बहुत-सी चीज़ें ख़रीदीं, यहाँ तक कि रोहिणी बातें करते-करते कुछ थक-सी गयी और खामोश हो गयी। उसने इतनी चीज़ें देखीं और इतनी बातें सुनीं कि उसका जी भर गया। शाम होते-होते रोहिणी के घर पहुँचे और मोटर कार से उतरकर रोहिणी को अब कुछ आराम मिला। दरवाज़ा बन्द था। उसकी माँ किसी ग्राहक के घर कपड़े देने गयी थी। रोहिणी ने अपने तोहफ़ों को उलटना-पलटना शुरू किया—खूबसूरत रबड़ के खिलौने, चीनी की गुड़ियाँ जरा दबाने से चूँ-चूँ करने लगतीं और रोहिणी यह प्यारा संगीत सुनकर फूली न समाती थी। रेशमी कपड़े और रंग-बिरंगी साड़ियों के कई बण्डल थे लेकिन मखमली बूटे की गुलकारियों ने उसे ख़ूब लुभाया था। उसे उन चीजों के पाने की जितनी खुशी थी, उससे ज़्यादा उन्हें अपनी सहेलियों को दिखाने की बेचैनी थी। सुन्दरी के जूते अच्छे सही लेकिन उनमें ऐसे फूल कहाँ हैं। ऐसी गुड़ियाँ उसने कभी देखी भी न होंगी। इन ख़यालों से उसके दिल में उमंग भर आयी और वह अपनी मोहिनी आवाज़ में एक गीत गाने लगी। सेठ जी दरवाज़े पर खड़े इस पवित्र दृश्य का हार्दिक आनन्द उठा रहे थे। इतने में रोहिणी की माँ रुक्मिणी कपड़ों की पोटली लिये हुए आती दिखायी दी। रोहिणी ने खुशी से पागल होकर एक छलाँग भरी और उसके पैरों से लिपट गयी। रुक्मिणी का चेहरा पीला था, आँखों में हसरत और बेकसी छिपी हुई थी, गुप्त चिंता का सजीव चित्र मालूम होती थी, जिसके लिए ज़िन्दगी में कोई सहारा नहीं।

मगर रोहिणी को जब उसने गोद में उठाकर प्यार से चूमा तो ज़रा देर के लिए उसकी आँखों में उम्मीद और ज़िन्दगी की झलक दिखायी दी। मुरझाया हुआ फूल खिल गया। बोली—आज तू इतनी देर तक कहाँ रही, मैं तुझे ढूँढ़ने पाठशाला गयी थी।

रोहिणी ने हुमककर कहा—मैं मोटर कार पर बैठकर बाज़ार गयी थी। वहाँ से बहुत अच्छी-अच्छी चीज़ें लायी हूँ। वह देखो कौन खड़ा है?

माँ ने सेठ जी की तरफ ताका और लजाकर सिर झुका लिया।

बरामदे में पहुँचते ही रोहिणी माँ की गोद से उतरकर सेठ जी के पास गयी और अपनी माँ को यक़ीन दिलाने के लिए भोलेपन से बोली—क्यों, तुम मेरे बाप हो न?

सेठ जी ने उसे प्यार करके कहा—हाँ, तुम मेरी प्यारी बेटी हो।

रोहिणी ने उनके मुँह की तरफ़ याचना-भरी आँखों से देखकर कहा—अब तुम रोज़ यहीं रहा करोगे?

सेठ जी ने उसके बाल सुलझाकर जवाब दिया—मैं यहाँ रहूँगा तो काम कौन करेगा? मैं कभी-कभी तुम्हें देखने आया करूँगा, लेकिन वहाँ से तुम्हारे लिए अच्छी-अच्छी चीजें भेजूँगा।

रोहिणी कुछ उदास-सी हो गयी। इतने में उसकी माँ ने मकान का दरवाज़ा खोला और बड़ी फुर्ती से मैले बिछावन और फटे हुए कपड़े समेटकर कोने में डाल दिये कि कहीं सेठ जी की निगाह उन पर न पड़ जाय। यह स्वाभिमान स्त्रियों की खास अपनी चीज़ है।

रुक्मिणी अब इस सोच में पड़ी थी कि मैं इनकी क्या ख़ातिर-तवाज़ो करूँ। उसने सेठ जी का नाम सुना था, उसका पति हमेशा उनकी बड़ाई किया करता था। वह उनकी दया और उदारता की चर्चाएँ अनेकों बार सुन चुकी थी। वह उन्हें अपने मन का देवता समझा करती थी, उसे क्या उम्मीद थी कि कभी उसका घर भी उनके क़दमों से रोशन होगा। लेकिन आज जब वह शुभ दिन संयोग से आया तो वह इस काबिल भी नहीं कि उन्हें बैठने के लिए एक मोढ़ा दे सके। घर में पान और इलायची भी नहीं। वह अपने आँसुओं को किसी तरह न रोक सकी।

आख़िर जब अँधेरा हो गया और पास के ठाकुरद्वारे से घण्टों और नगाड़ों की आवाजें आने लगीं तो उन्होंने ज़रा ऊँची आवाज़ में कहा—बाई जी, अब मैं जाता हूँ। मुझे अभी यहाँ बहुत काम करना है। मेरी रोहिणी को कोई तकलीफ न हो। मुझे जब मौका मिलेगा, उसे देखने आऊँगा। उसके पालने-पोसने का काम मेरा है और मैं उसे बहुत खुशी से पूरा करूँगा। उसके लिए अब तुम कोई फिक्र मत करो। मैंने उसका वजीफा बाँध दिया है और यह उसकी पहली क़िस्त है।

यह कहकर उन्होंने अपना ख़ूबसूरत बटुआ निकाला और रुक्मिणी के सामने रख दिया। ग़रीब औरत की आँखों से आँसू जारी थे। उसका जी बरबस चाहता

था कि उनके पैरों को पकड़कर खूब रोये। आज बहुत दिनों के बाद एक सच्चे हम-दर्द की आवाज़ उसके कान में आयी थी।

जब सेठ जी चले तो उसने दोनों हाथों से प्रणाम किया। उसके हृदय की गहराइयों से प्रार्थना निकली—आपने एक बेबस पर दया की है, ईश्वर आपको इसका बदला दे।

दूसरे दिन रोहिणी पाठशाला गयी तो उसकी बाँकी सज-धज आँखों में खुबी जाती थी। उस्तानियों ने उसे बारी-बारी प्यार किया और उसकी सहेलियाँ उसकी एक-एक चीज़ को आश्चर्य से देखती और ललचाती थीं। अच्छे कपड़ों से कुछ स्वाभिमान का अनुभव होता है। आज रोहिणी वह ग़रीब लड़की न रही जो दूसरों की तरफ विवश नेत्रों से देखा करती थी। आज उसकी एक-एक क्रिया से शैशवोचित गर्व और चंचलता टपकती थी और उसकी ज़बान एक दम के लिए भी न रुकती थी। कभी मोटर की तेज़ी का ज़िक्र था, कभी बाज़ार की दिलचस्पियों का बयान, कभी अपनी गुड़ियों के कुशल-मंगल की चर्चा थी और कभी अपने बाप की मुहब्बत की दास्तान। दिल था कि उमंगों से भरा हुआ था।

एक महीने के बाद सेठ पुरुषोत्तमदास ने रोहिणी के लिए फिर तोहफ़े और रुपये रवाना किये। बेचारी विधवा को उनकी कृपा से जीविका की चिन्ता से छुट्टी मिली। वह भी रोहिणी के साथ पाठशाला आती और दोनों माँ-बेटियाँ एक ही दरजे में साथ-साथ पढ़तीं, लेकिन रोहिणी का नम्बर हमेशा माँ से अव्वल रहा। सेठ जी जब पूना की तरफ से निकलते तो रोहिणी को देखने ज़रूर आते और उनका आगमन उसकी प्रसन्नता और मनोरंजन के लिए महीनों का सामान इकट्ठा कर देता।

इसी तरह कई साल गुज़र गये और रोहिणी ने जवानी के सुहाने हरे-भरे मैदान में पैर रक्खा, जब कि बचपन की भोली-भाली अदाओं में एक खास मतलब और इरादों का दखल हो जाता है।

रोहिणी अब आन्तरिक और बाह्य सौन्दर्य में अपनी पाठशाला की नाक थी। हाव-भाव में आकर्षक गम्भीरता, बातों में गीत का-सा खिचाव और गीत का-सा आत्मिक रस था। कपड़ों में रंगीन सादगी, आँखों में लाज-संकोच, विचारों में पवित्रता। जवानी थी मगर घमण्ड और बनावट और चंचलता से मुक्त। उसमें एक एकाग्रता थी जो ऊँचे इरादों से पैदा होती है। स्त्रियोचित उत्कर्ष की मंजिलें वह धीरे-धीरे तय करती चली जाती थी।

३

सेठ जी के बड़े बेटे नरोत्तमदास कई साल तक अमेरिका और जर्मनी की यूनिवर्सिटियों की ख़ाक छानने के बाद इंजीनियरिंग विभाग में कमाल हासिल करके वापस आये थे। अमेरिका के सबसे प्रतिष्ठित कालेज में उन्होंने सम्मान का पद प्राप्त किया था। अमेरिका के अखबार एक हिन्दोस्तानी नौजवान की इस शानदार कामयाबी पर चकित थे। उन्हीं का स्वागत करने के लिए बम्बई में एक बड़ा जलसा किया गया था। इस उत्सव में शरीक होने के लिए लोग दूर-दूर से आये थे। सरस्वती पाठशाला को भी निमन्त्रण मिला और रोहिणी को सेठानी जी ने विशेषरूप से आमन्त्रित किया। पाठशाला में हफ्तों तैयारियाँ हुईं। रोहिणी को एक दम के लिए भी चैन न था। यह पहला मौका था कि उसने अपने लिए बहुत अच्छे-अच्छे कपड़े बनवाये। रंगों के चुनाव में वह मिठास थी, काट-छाँट में वह फबन जिससे उसकी सुन्दरता चमक उठी। सेठानी कौशल्या देवी उसे लेने के लिए रेलवे स्टेशन पर मौजूद थीं। रोहिणी गाड़ी से उतरते ही उनके पैरों की तरफ झुकी लेकिन उन्होंने उसे छाती से लगा लिया और इस तरह प्यार किया कि जैसे वह उनकी बेटी है। वह उसे बार-बार देखती थीं और आँखों से गर्व और प्रेम टपका पड़ता था।

इस जलसे के लिए ठीक समुन्दर के किनारे एक हरे-भरे सुहाने मैदान में एक लम्बा-चौड़ा शामियाना लगाया गया था। एक तरफ आदमियों का समुद्र उमड़ा हुआ था दूसरी तरफ समुद्र की लहरें उछल रही थीं, गोया वह भी इस ख़ुशी में शरीक थीं।

जब उपस्थित लोगों ने रोहिणी बाई के आने की खबर सुनी तो हज़ारों आदमी उसे देखने के लिए खड़े हो गये। यही तो वह लड़की है जिसने अबकी शास्त्री की परीक्षा पास की है। ज़रा उसके दर्शन करने चाहिए। अब भी इस देश की स्त्रियों में ऐसे रतन मौजूद हैं। भोले-भाले देशप्रेमियों में इस तरह की बातें होने लगीं। शहर की कई प्रतिष्ठित महिलाओं ने आकर रोहिणी को गले लगाया और आपस में उसके सौन्दर्य और उसके कपड़ों की चर्चा होने लगी।

आख़िर मिस्टर पुरुषोत्तम दास तशरीफ़ लाये। हालाँकि वह बड़ा शिष्ट और गम्भीर उत्सव था लेकिन उस वक्त दर्शन की उत्कण्ठा पागलपन की हद तक जा पहुँची थी। एक भगदड़-सी मच गयी। कुर्सियों की कतारें गड़बड़ हो गयीं। कोई कुर्सी पर खड़ा हुआ, कोई उसके हत्थों पर। कुछ मनचले लोगों ने शामियाने की

रस्सियाँ पकड़ीं और उन पर जा लटके। कई मिनट तक यही तूफ़ान मचा रहा। कहीं कुर्सियाँ टूटीं, कहीं कुर्सियाँ उलटीं, कोई किसी के ऊपर गिरा, कोई नीचे। ज़्यादा तेज़ लोगों में धौल-धप्पा होने लगा।

तब बीन की सुहानी आवाज़ें आने लगीं। रोहिणी ने अपनी मण्डली के साथ देशप्रेम में डूबा हुआ गीत शुरू किया। सारे उपस्थित लोग बिलकुल शान्त थे और उस समय वह सुरीला राग, उसकी कोमलता और स्वच्छता, उसकी प्रभावशाली मधुरता, उसकी उत्साहभरी वाणी दिलों पर वह नशा-सा पैदा कर रही थी जिससे प्रेम की लहरें उठती हैं, जो दिल से बुराइयों को मिटाता है और जिससे ज़िन्दगी की हमेशा याद रहनेवाली यादगारें पैदा हो जाती हैं। गीत बन्द होने पर तारीफ की एक आवाज़ न आयी। वही तानें कानों में अब तक गूँज रही थीं।

गाने के बाद विभिन्न संस्थाओं की तरफ से अभिनन्दन पेश हुए और तब नरोत्तमदास लोगों को धन्यवाद देने के लिए खड़े हुए। लेकिन उनके भाषण से लोगों को थोड़ी निराशा हुई। यों दोस्तों की मण्डली में उनकी वक्तृता के आवेग और प्रवाह की कोई सीमा न थी लेकिन सार्वजनिक सभा के सामने खड़े होते ही शब्द और विचार दोनों ही उनसे बेवफ़ाई कर जाते थे। उन्होंने बड़ी-बड़ी मुश्किल से धन्यवाद के कुछ शब्द कहे और तब अपनी योग्यता की लज्जित स्वीकृति के साथ अपनी जगह पर आ बैठे। कितने ही लोग उनकी योग्यता पर ज्ञानियों की तरह सिर हिलाने लगे।

अब जलसा खत्म होने का वक्त आया। वह रेशमी हार जो सरस्वती पाठशाला की ओर से भेजा गया था, मेज़ पर रखा हुआ था। उसे हीरो के गले में कौन डाले? प्रेसिडेण्ट ने महिलाओं की पंक्ति की ओर नज़र दौड़ायी। चुननेवाली आँख रोहिणी पर पड़ी और ठहर गयी। उसकी छाती धड़कने लगी। लेकिन उत्सव के सभापति के आदेश का पालन आवश्यक था। वह सर झुकाये हुए मेज़ के पास आयी और काँपते हुए हाथों से हार को उठा लिया। एक क्षण के लिए दोनों की आँखें मिलीं और रोहिणी ने नरोत्तमदास के गले में हार डाल दिया।

दूसरे दिन सरस्वती पाठशाला के मेहमान बिदा हुए लेकिन कौशल्या देवी ने रोहिणी को न जाने दिया। बोली—अभी तुम्हें देखने से जी नहीं भरा, तुम्हें यहाँ एक हफ्ता रहना होगा। आखिर मैं भी तो तुम्हारी माँ हूँ। एक माँ से इतना प्यार और दूसरी माँ से इतना अलगाव!

रोहिणी कुछ जवाब न दे सकी।

यह सारा हफ्ता कौशल्या देवी ने उसकी बिदाई की तैयारियों में ख़र्च किया। सातवें दिन उसे बिदा करने के लिए स्टेशन तक आयीं। चलते वक्त उससे गले मिलीं और बहुत कोशिश करने पर भी आँसुओं को न रोक सकीं। नरोत्तमदास भी आये थे। उनका चेहरा उदास था। कौशल्या ने उनकी तरफ़ सहानुभूतिपूर्ण आँखों से देखकर कहा—मुझे यह तो खयाल ही न रहा, रोहिणी क्या यहाँ से पूना तक अकेली जायगी? क्या हर्ज है, तुम्हीं चले जाओ, शाम की गाड़ी से लौट आना।

नरोत्तमदास के चेहरे पर ख़ुशी की लहर दौड़ गयी, जो इन शब्दों में न छिप सकी—अच्छा, मैं ही चला जाऊँगा। वह इस फ़िक्र में थे कि देखें बिदाई की बात-चीत का मौका भी मिलता है या नहीं। अब वह ख़ूब जी भर कर अपना दर्दे दिल सुनायेंगे और मुमकिन हुआ तो उस लाज-संकोच को, जो उदासीनता के परदे में छिपी हुई है, मिटा देंगे।

४

रुक्मिणी को अब रोहिणी की शादी की फ़िक्र पैदा हुई। पड़ोस की औरतों में इसकी चर्चा होने लगी थी। लड़की इतनी सयानी हो गयी है, अब क्या बुढ़ापे में ब्याह होगा? कई जगह से बात आयी, उनमें कुछ बड़े प्रतिष्ठित घराने थे। लेकिन जब रुक्मिणी उन पैग़ामों को सेठ जी के पास भेजती तो वे यही जवाब देते कि मैं ख़ुद फ़िक्र में हूँ। रुक्मिणी को उनकी यह टाल-मटोल बुरी मालूम होती थी।

रोहिणी को बम्बई से लौटे महीना भर हो चुका था कि एक दिन वह पाठशाला से लौटी तो उसे अपनी अम्माँ की चारपाई पर एक ख़त पड़ा हुआ मिला। रोहिणी पढ़ने लगी, लिखा था—बहन, जब से मैंने तुम्हारी लड़की को बम्बई में देखा है, मैं उस पर रीझ गयी हूँ। अब उसके बग़ैर मुझे चैन नहीं है। क्या मेरा ऐसा भाग्य होगा कि वह मेरी बहू बन सके? मैं ग़रीब हूँ लेकिन मैंने सेठ जी को राज़ी कर लिया है। तुम भी मेरी यह विनती कबूल करो। मैं तुम्हारी लड़की को चाहे फूलों की सेज पर न सुला सकूँ, लेकिन इस घर का एक-एक आदमी उसे आँखों की पुतली बनाकर रखेगा। अब रहा लड़का। माँ के मुँह से लड़के का बखान कुछ अच्छा नहीं मालूम होता। लेकिन यह कह सकती हूँ कि परमात्मा ने यह जोड़ी अपने हाथों बनायी है। सूरत में, स्वभाव में, विद्या में, हर दृष्टि से वह रोहिणी के योग्य है। तुम जैसे चाहे अपना इत्मीनान कर सकती हो। जवाब जल्द देना और ज़्यादा क्या लिखूं। नीचे थोड़े से शब्दों में सेठ जी ने उस पैग़ाम की सिफ़ारिश की थी।

रोहिणी गालों पर हाथ रखकर सोचने लगी। नरोत्तमदास की तस्वीर

उसकी आँखों के सामने आ खड़ी हुई। उनकी वह प्रेम की बातें, जिनका सिलसिला बम्बई से पूना तक नहीं टूटा था, कानों में गूँजने लगीं। उसने एक ठण्डी साँस ली और उदास होकर चारपाई पर लेट गयी।

५

सरस्वती पाठशाला में एक बार फिर सजावट और सफाई के दृश्य दिखाई दे रहे हैं। आज रोहिणी की शादी का शुभ दिन है। शाम का वक्त, वसन्त का सुहाना मौसम, पाठशाला के दरो-दीवार मुस्करा रहे हैं और हरा-भरा बागीचा फूला नहीं समाता।

चन्द्रमा अपनी बारात लेकर पूरब की तरफ से निकला। उसी वक्त मंगलाचरण का सुहाना राग उस रुपहली चाँदनी और हल्के-हल्के हवा के झोंकों में लहरें मारने लगा। दूल्हा आया, उसे देखते ही लोग हैरत में आ गये। यह नरोत्तमदास थे।

दूल्हा मण्डप के नीचे गया। रोहिणी की माँ अपने को रोक न सकी, वह उसी वक्त जाकर सेठ जी के पैरों पर गिर पड़ी। रोहिणी की आँखों से प्रेम और आनन्द के आँसू बहने लगे।

मण्डप के नीचे हवन-कुण्ड बना हुआ था। हवन शुरू हुआ, खुशबू की लपटें हवा में उठीं और सारा मैदान महक गया। लोगों के दिलो-दिमाग़ में ताज़गी की उमंग पैदा हुई।

फिर संस्कार की बारी आयी। दूल्हा और दुल्हन ने आपस में हमदर्दी, ज़िम्मेदारी और वफ़ादारी के पवित्र शब्द अपनी ज़बानों से कहे। विवाह की वह मुबारक ज़ंजीर गले में पड़ी जिसमें वज़न है, सख़्ती है, पाबन्दियाँ हैं लेकिन वज़न के साथ सुख और पाबन्दियों के साथ विश्वास है। दोनों दिलों में उस वक्त एक नयी, बलवान, आत्मिक शक्ति की अनुभूति हो रही थी।

जब शादी की रस्में खत्म हो गयीं तो नाच-गाने की मजलिस का दौर आया। मोहक गीत गूँजने लगे। सेठ जी थककर चूर हो गये थे। ज़रा दम लेने के लिए बागीचे में जाकर एक बेंच पर बैठ गये। ठण्डी-ठण्डी हवा आ रही थी। एक नशा-सा पैदा करनेवाली शान्ति चारों तरफ छायी हुई थी। उसी वक्त रोहिणी उनके पास आयी और उनके पैरों से लिपट गयी। सेठ जी ने उसे उठाकर गले से लगा लिया और हँसकर बोले—क्यों, अब तो तुम मेरी अपनी बेटी हो गयीं?

—ज़माना, जून १९१४

कर्मों का फल

मुझे हमेशा आदमियों के परखने की सनक रही है और अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि यह अध्ययन जितना मनोरंजक, शिक्षा-प्रद और उद्‌घाटनों से भरा हुआ है, उतना शायद और कोई अध्ययन न होगा। लेकिन अपने दोस्त लाला साईंदयाल से बहुत अर्से तक दोस्ती और बेतकल्लुफी के सम्बन्ध रहने पर भी मुझे उनकी थाह न मिली। मुझे ऐसे दुर्बल शरीर में ज्ञानियों की-सी शान्ति और संतोष देखकर आश्चर्य होता था जो एक नाजुक पौधे की तरह मुसीबतों के झोंकों में भी अचल और अटल रहता था। यों वह बहुत ही मामूली दरजे का आदमी था जिसमें मानव कमज़ोरियों की कमी न थी। वह वादे बहुत करता था लेकिन उन्हें पूरा करने की ज़रूरत नहीं समझता था। वह मिथ्याभाषी न हो लेकिन सच्चा भी न था। बेमुरौवत न हो लेकिन उसकी मुरौवत छिपी रहती थी। उसे अपने कर्तव्य पर पाबन्द रखने के लिए दबाव और निगरानी की ज़रूरत थी, किफ़ायतशारी के उसूलों से बेखबर, मेहनत से जी चुरानेवाला, उसूलों का कमज़ोर, एक ढीला-ढाला मामूली आदमी था। लेकिन जब कोई मुसीबत सिर पर आ पड़ती तो उसके दिल में साहस और दृढ़ता की वह ज़बर्दस्त ताक़त पैदा हो जाती थी जिसे शहीदों का गुण कह सकते हैं। उसके पास न दौलत थी न धार्मिक विश्वास, जो ईश्वर पर भरोसा करने और उसकी इच्छाओं के आगे सिर झुका देने का स्रोत है। एक छोटी-सी कपड़े की दुकान के सिवाय कोई जीविका न थी। ऐसी हालतों में उसकी हिम्मत और दृढ़ता का सोता कहाँ छिपा हुआ है, वहाँ तक मेरी अन्वेषण-दृष्टि नहीं पहुँचती थी।

२

बाप के मरते ही मुसीबतों ने उस पर छापा मारा। कुछ थोड़ा-सा क़र्ज़ विरासत में मिला जिसमें बराबर बढ़ते रहने की आश्चर्यजनक शक्ति छिपी हुई थी। बेचारे ने अभी बरसी से छुटकारा नहीं पाया था कि महाजन ने नालिश की और अदालत के तिलस्मी अहाते में पहुँचते ही यह छोटी-सी हस्ती इस तरह फूली जिस तरह मशक फूलती है। डिग्री हुई। जो कुछ-जमा-जथा थी, बर्तन-भाँड़े, हाँड़ी-तवा, उसके

गहरे पेट में समा गये। मकान भी न बचा। बेचारे मुसीबतों के मारे साईंदयाल का अब कहीं ठिकाना न था। कौड़ी-कौड़ी को मुहताज, न कहीं घर, न बार। कई-कई दिन फ़ाक़े से गुज़र जाते। अपनी तो खैर उन्हें ज़रा भी फ़िक्र न थी लेकिन बीवी थी, दो-तीन बच्चे थे, उनके लिए तो कोई-न-कोई फ़िक्र करनी ही पड़ती थी। कुनबे का साथ और यह बेसरोसामानी, बड़ा दर्दनाक दृश्य था। शहर से बाहर एक पेड़ की छाँह में यह आदमी अपनी मुसीबत के दिन काट रहा था। सारे दिन बाज़ारों की खाक छानता। आह, मैंने एक बार उसे रेलवे स्टेशन पर देखा। उसके सिर पर एक भारी बोझ था। उसका नाजुक, सुख-सुविधा में पला हुआ शरीर, पसीना-पसीना हो रहा था। पैर मुश्किल से उठते थे। दम फूल रहा था लेकिन चेहरे से मर्दाना हिम्मत और मजबूत इरादे की रोशनी टपकती थी। चेहरे से पूर्ण संतोष झलक रहा था। उसके चेहरे पर ऐसा इत्मीनान था कि जैसे यही उसका बाप-दादों का पेशा है। मैं हैरत से उसका मुँह ताकता रह गया। दुख में हमदर्दी दिखलाने की हिम्मत न हुई। कई महीने तक यही कैफ़ियत रही। आखिरकार उसकी हिम्मत और सहनशक्ति उसे इस कठिन दुर्गम घाटी से बाहर निकाल लायी।

३

थोड़े ही दिनों के बाद मुसीबतों ने फिर उस पर हमला किया। ईश्वर ऐसा दिन दुश्मन को भी न दिखलाये। मैं एक महीने के लिए बम्बई चला गया था, वहाँ से लौटकर उससे मिलने गया। आह, वह दृश्य याद करके आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं और दिल डर से काँप उठता है। सुबह का वक्त था। मैंने दरवाज़े पर आवाज़ दी और हमेशा की तरह बेतकल्लुफ अन्दर चला गया, मगर वहाँ साईं-दयाल का वह हँसमुख चेहरा, जिस पर मर्दाना हिम्मत की ताजगी झलकती थी, नजर न आया। मैं एक महीने के बाद उसके घर जाऊँ और वह आँखों से रोते लेकिन होंठों से हँसते दौड़कर मेरे गले से लिपट न जाय! ज़रूर कोई आफ़त है। उसकी बीवी सिर झुकाये आयी और मुझे उसके कमरे में ले गयी। मेरा दिल बैठ गया। साईंदयाल एक चारपाई पर मैले-कुचैले कपड़े लपेटे, आँखें बन्द किये, पड़ा दर्द से कराह रहा था। जिस्म और बिछौने पर मक्खियों के गुच्छे के गुच्छे बैठे हुए थे। आहट पाते ही उसने मेरी तरफ देखा। मेरे जिगर के टुकड़े हो गये। हड्डियों का ढाँचा रह गया था। दुर्बलता की इससे ज़्यादा सच्ची और करुण तस्वीर नहीं हो सकती। उसकी बीवी ने मेरी तरफ निराशाभरी आँखों से देखा। मेरी आँखों

में भी आँसू भर आये। उस सिमटे हुए ढाँचे में बीमारी को भी मुश्किल से जगह मिलती होगी, ज़िन्दगी का क्या ज़िक्र! आखिर मैंने धीरे से पुकारा। आवाज़ सुनते ही वह बड़ी-बड़ी आँखें खुल गयीं लेकिन उनमें पीड़ा और शोक के आँसू न थे, संतोष और ईश्वर पर भरोसे की रोशनी थी। और वह पीला चेहरा ! आह वह गम्भीर संतोष का मौन चित्र, वह संतोषमय संकल्प की सजीव स्मृति। उसके पीलेपन में मर्दाना हिम्मत की लाली झलकती थी। मैं उसकी सूरत देखकर घबरा गया। क्या यह बुझते हुए चिराग़ की आखिरी झलक तो नहीं है?

मेरी सहमी हुई सूरत देखकर वह मुस्कराया और बहुत धीमी आवाज़ में बोला —तुम ऐसे उदास क्यों हो, यह सब मेरे कर्मों का फल है।

४

मगर कुछ अजब बदकिस्मत आदमी था। मुसीबतों को उससे कुछ खास मुहब्बत थी। किसे उम्मीद थी कि वह उस प्राणघातक रोग से मुक्ति पायेगा। डाक्टरों ने भी जवाब दे दिया था। मौत के मुँह से निकल आया। अगर भविष्य का ज़रा भी ज्ञान होता तो सबसे पहले मैं उसे ज़हर दे देता। आह, उस शोकपूर्ण घटना को याद करके कलेजा मुँह को आता है। धिक्कार है इस ज़िन्दगी पर कि बाप अपनी आँखों से अपने इकलौते बेटे का शोक देखे !

कैसा हँसमुख, कैसा खूबसूरत, होनहार लड़का था, कैसा सुशील, कैसा मधुर-भाषी, ज़ालिम मौत ने उसे छाँट लिया। प्लेग की दुहाई मची हुई थी। शाम को गिल्टी निकली और सुबह को—कैसी मनहूस, अशुभ सुबह थी—वह ज़िन्दगी सबेरे के चिराग़ की तरह बुझ गयी। मैं उस वक्त उस बच्चे के पास बैठा हुआ था और साईंदयाल दीवार का सहारा लिये हुए खामोश आसमान की तरफ देखता था। मेरी और उसकी आँखों के सामने ज़ालिम और बेरहम मौत ने उस बच्चे को हमारी गोद से छीन लिया। मैं रोते हुए साईंदयाल के गले से लिपट गया। सारे घर में कुहराम मचा हुआ था। बेचारी माँ पछाड़ें खा रही थी, बहनें दौड़-दौड़कर भाई की लाश से लिपटती थीं। और ज़रा देर के लिए ईर्ष्या ने भी समवेदना के आगे सिर झुका दिया था—मुहल्ले की औरतों को आँसू बहाने के लिए दिल पर ज़ोर डालने की ज़रूरत न थी।

जब मेरे आँसू थमे तो मैंने साईंदयाल की तरफ देखा। आँखों में तो आँसू भरे हुए थे—आह, संतोष का आँखों पर कोई बस नहीं लेकिन चेहरे पर मर्दाना दृढ़ता

और समर्पण का रंग स्पष्ट था। इस दुख की बाढ़ और तूफान में भी शान्ति की नैया उसके दिल को डूबने से बचाये हुए थी।

इस दृश्य ने मुझे चकित नहीं स्तम्भित कर दिया। सम्भावनाओं की सीमाएँ कितनी ही व्यापक हों, ऐसी हृदय-द्रावक स्थिति में होश-हवास और इत्मीनान को क़ायम रखना उन सीमाओं से परे है। लेकिन इस दृष्टि से साईंदयाल मानव नहीं, अति-मानव था। मैंने रोते हुए कहा—भाई साहब, अब संतोष की परीक्षा का अवसर है। उसने दृढ़ता से उत्तर दिया—हाँ, यह कर्मों का फल है।

मैं एक बार फिर भौंचक होकर उसका मुँह तकने लगा।

५

लेकिन साईंदयाल का यह तपस्वियों जैसा धैर्य और ईश्वरेच्छा पर भरोसा अपनी आँखों से देखने पर भी मेरे दिल में संदेह बाक़ी थे। मुमकिन है, जब तक चोट ताज़ी है सब्र का बाँध क़ायम रहे। लेकिन उसकी बुनियादें हिल गयी हैं, उसमें दरारें पड़ गई हैं। वह अब ज़्यादा देर तक दुख और शोक की लहरों का मुक़ाबला नहीं कर सकता।

क्या संसार की कोई दुर्घटना इतनी हृदयद्रावक, इतनी निर्मम, इतनी कठोर हो सकती है। संतोष और दृढ़ता और धैर्य और ईश्वर पर भरोसा, यह सब उस आँधी के सामने घास-फूस से ज़्यादा नहीं। धार्मिक विश्वास तो क्या, अध्यात्म तक उसके सामने सिर झुका देता है। उसके झोंके आस्था और निष्ठा की जड़ें हिला देते हैं।

लेकिन मेरा अनुमान ग़लत निकला। साईंदयाल ने धीरज को हाथ से न जाने दिया। वह बदस्तूर ज़िन्दगी के कामों में लग गया। दोस्तों की मुलाकातें और नदी के किनारे की सैर और तफ़रीह और मेलों की चहल-पहल, इन दिलचस्पियों में उसके दिल को खींचने की ताक़त अब भी बाक़ी थी। मैं उसकी एक-एक क्रिया को, एक-एक बात को ग़ौर से देखता और पढ़ता। मैंने दोस्ती के नियम-क़ायदों को भुलाकर उसे उस हालत में देखा जहाँ उसके विचारों के सिवा और कोई न था। लेकिन उस हालत में भी उसके चेहरे पर वही पुरुषोचित धैर्य था और शिकवे-शिकायत का एक शब्द भी उसकी ज़बान पर नहीं आया।

६

इसी बीच मेरी छोटी लड़की चन्द्रमुखी निमोनिया की भेंट चढ़ गयी। दिन के

धंधे से फुरसत पाकर जब मैं घर पर आता और उसे प्यार से गोद में उठा लेता तो मेरे हृदय को जो आनन्द और आत्मिक शक्ति मिलती थी, उसे शब्दों में नहीं व्यक्त कर सकता। उसकी अदाएँ सिर्फ दिल को लुभानेवाली नहीं, ग़म को भुलानेवाली हैं। जिस वक्त वह हुमककर मेरी गोद में आती तो मुझे तीनों लोक की संपत्ति मिल जाती थी। उसकी शरारतें कितनी मनमोहक थीं। अब हुक्के में मज़ा नहीं रहा, कोई चिलम को गिरानेवाला नहीं! खाने में मज़ा नहीं आता, कोई थाली के पास बैठा हुआ उस पर हमला करनेवाला नहीं! मैं उसकी लाश को गोद में लिये बिलख-बिलखकर रो रहा था। यही जी चाहता था कि अपनी ज़िन्दगी का खातमा कर दूँ। यकायक मैंने साईंदयाल को आते देखा। मैंने फौरन आँसू पोंछ डाले और उस नन्हीं-सी जान को ज़मीन पर लिटाकर बाहर निकल आया। उस धैर्य और संतोष के देवता ने मेरी तरफ समवेदना की आँखों से देखा और मेरे गले से लिपटकर रोने लगा। मैंने कभी उसे इस तरह चीखें मारकर रोते नहीं देखा। रोते-रोते उसकी हिचकियाँ बँध गयीं, बेचैनी से बेसुध और बेहाल हो गया। यह वही आदमी है जिसका इकलौता बेटा मरा और माथे पर बल नहीं आया। यह कायापलट क्यों ?

७

इस शोकपूर्ण घटना के कई दिन बाद जब कि दुखी दिल सम्हलने लगा था, एक रोज़ हम दोनों नदी की सैर को गये। शाम का वक्त था। नदी कहीं सुनहरी, कहीं नीली-सी, कहीं काली, किसी थके हुए मुसाफिर की तरह धीरे-धीरे बह रही थी। हम दूर जाकर एक टीले पर बैठ गये लेकिन बातचीत करने को जी न चाहता था। नदी के मौन प्रवाह ने हमको भी अपने विचारों में डुबो दिया। नदी की लहरें विचारों की लहरों को पैदा कर देती हैं। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि प्यारी चन्द्रमुखी लहरों की गोद में बैठी मुस्करा रही है। मैं चौंक पड़ा और अपने आँसुओं को छिपाने के लिए नदी में मुँह धोने लगा। साईंदयाल ने कहा—भाई साहब, दिल को मज़बूत करो। इस तरह कुढ़ोगे तो ज़रूर बीमार हो जाओगे।

मैंने जवाब दिया—ईश्वर ने जितना संयम तुम्हें दिया है, उसमें से थोड़ा सा मुझे भी दे दो, मेरे दिल में इतनी ताकत कहाँ।

साईंदयाल मुस्कराकर मेरी तरफ ताकने लगा।

मैंने उसी सिलसिले में कहा—किताबों में तो दृढ़ता और संतोष की बहुत-सी कहानियाँ पढ़ी हैं मगर सच मानो कि तुम जैसा दृढ़, कठिनाइयों में सीधा खड़ा रहने-

वाला आदमी आज तक मेरी नज़र से नहीं गुज़रा। तुम जानते हो कि मुझे मानव स्वभाव के अध्ययन का हमेशा से शौक है लेकिन मेरे अनुभव में तुम अपनी तरह के अकेले आदमी हो। मैं यह न मानूँगा कि तुम्हारे दिल में दर्द और घुलावट नहीं है। उसे मैं अपनी आँखों देख चुका हूँ। फिर इस ज्ञानियों जैसे संतोष और शान्ति का रहस्य तुमने कहाँ छिपा रक्खा है? तुम्हें इस समय यह रहस्य मुझसे कहना पड़ेगा।

साईंदयाल कुछ सोच-विचार में पड़ गया और ज़मीन की तरफ ताकते हुए बोला—यह कोई रहस्य नहीं, मेरे कर्मों का फल है।

यह वाक्य मैंने चौथी बार उसकी ज़बान से सुना और बोला—जिन कर्मों का फल ऐसा शक्तिदायक है, उन कर्मों की मुझे भी कुछ दीक्षा दो, मैं ऐसे फलों से क्यों वंचित रहूँ।

साईंदयाल ने व्यथापूर्ण स्वर में कहा—ईश्वर न करे कि तुम ऐसा कर्म करो और तुम्हारी ज़िन्दगी पर उसका काला दाग़ लगे। मैंने जो कुछ किया है, वह मुझे ऐसा लज्जाजनक और ऐसा घृणित मालूम होता है कि उसकी मुझे जो कुछ सज़ा मिले, मैं उसे खुशी के साथ झेलने को तैयार हूँ। आह! मैंने एक ऐसे पवित्र खानदान को, जहाँ मेरा विश्वास और मेरी प्रतिष्ठा थी, अपनी वासनाओं की गन्दगी में लिथेड़ा है, एक ऐसे पवित्र हृदय को जिसमें मुहब्बत का दर्द था, जो सौन्दर्यबाटिका की एक नयी-नयी खिली हुई कली थी, जिसमें सरलता थी और सच्चाई थी, उस पवित्र हृदय में मैंने पाप और विश्वासघात का बीज हमेशा के लिए बो दिया। यह पाप है जो मुझसे हुआ है और उसका पल्ला उन मुसीबतों से बहुत भारी है जो मेरे ऊपर अब तक पड़ी हैं या आगे चलकर पड़ेंगी। कोई सज़ा, कोई दुख, कोई क्षति उसका प्रायश्चित नहीं कर सकती।

मैंने सपने में भी न सोचा था कि साईंदयाल अपने विश्वासों में इतना दृढ़ है। पाप हर आदमी से होते हैं, हमारा मानव जीवन पापों की एक लम्बी सूची है, वह कौन-सा दामन है जिस पर यह काले दाग़ न हों। लेकिन कितने ऐसे आदमी हैं जो अपने कर्मों की सज़ाओं को इस तरह उदारतापूर्वक मुस्कराते हुए झेलने के लिए तैयार हों। हम आग में कूदते हैं लेकिन जलने के लिए तैयार नहीं होते।

मैं साईंदयाल को हमेशा इज़्ज़त की निगाह से देखता हूँ, इन बातों को सुनकर मेरी नज़रों में उसकी इज़्ज़त तिगुनी हो गयी। एक मामूली दुनियादार आदमी के सीने में एक फ़क़ीर का दिल छिपा हुआ था जिसमें ज्ञान की ज्योति चमकती थी। मैंने उसकी तरफ श्रद्धापूर्ण आँखों से देखा और उसके गले से लिपटकर बोला—

साईंदयाल, अब तक मैं तुम्हें एक दृढ़ स्वभाव का आदमी समझता था लेकिन आज मालूम हुआ कि तुम उन पवित्र आत्माओं में हो, जिनका अस्तित्व संसार के लिए वरदान है। तुम ईश्वर के सच्चे भक्त हो, और मैं तुम्हारे पैरों पर सिर झुकाता हूँ।

—उर्दू 'प्रेम पचीसी' से

●

अमृत

मेरी उठती जवानी थी जब मेरा दिल दर्द के मज़े से परिचित हुआ। कुछ दिनों तक शायरी का अभ्यास करता रहा और धीरे-धीरे इस शौक ने तल्लीनता का रूप ले लिया। सारे सांसारिक संबंधों से मुँह मोड़कर अपनी शायरी की दुनिया में आ बैठा और तीन ही साल की मश्क़ ने मेरी कल्पना के जौहर खोल दिये। कभी-कभी मेरी शायरी उस्तादों के मशहूर कलाम से टक्कर खा जाती थी। मेरे क़लम ने किसी उस्ताद के सामने सर नहीं झुकाया। मेरी कल्पना एक अपने आप बढ़नेवाले पौधे की तरह छन्द और पिंगल की क़ैदों से आज़ाद बढ़ती रही और मेरे कलाम का ढंग बिलकुल निराला था। मैंने अपनी शायरी को फ़ारस से बाहर निकालकर योरोप तक पहुँचा दिया। यह मेरा अपना रंग था। इस मैदान में न मेरा कोई प्रतिद्वन्द्वी था, न बराबरी करनेवाला। बावजूद इस शायरों-जैसी तल्लीनता के मुझे मुशायरों की वाह-वाह और सुभानअल्लाह से नफरत थी। हाँ, काव्य-रसिकों से बिना अपना नाम बताये हुए अक्सर अपनी शायरी की अच्छाइयों और बुराइयों पर बहस किया करता। गो मुझे शायरी का दावा न था मगर धीरे-धीरे मेरी शोहरत होने लगी और जब मेरी मसनवी 'दुनियाए हुस्न' प्रकाशित हुई तो साहित्य की दुनिया में हलचल-सी मच गयी। पुराने शायरों ने काव्य-मर्मज्ञों की प्रशंसा-कृपणता में पोथे के पोथे रँग दिये हैं मगर मेरा अनुभव इसके बिलकुल विपरीत था। मुझे कभी-कभी यह खयाल सताया करता कि मेरे कद्रदानों की यह उदारता दूसरे कवियों की लेखनी की दरिद्रता का प्रमाण है। यह खयाल हौसला तोड़नेवाला था। बहरहाल, जो कुछ हुआ 'दुनियाए हुस्न' ने मुझे शायरी का बादशाह बना दिया। मेरा नाम हरेक ज़बान पर था। मेरी चर्चा हर एक अखबार में थी। शोहरत अपने साथ दौलत भी लायी। मुझे दिन-रात शेरो-शायरी के अलावा और कोई काम न था। अक्सर बैठे-बैठे रातें गुज़र जातीं और जब कोई चुभता हुआ शेर क़लम से निकल जाता तो मैं खुशी के मारे उछल पड़ता। मैं अब तक शादी-ब्याह की कैदों से आज़ाद था या यों कहिए कि मैं उसके उन मज़ों से अपरिचित था जिनमें रंज की तल्ख़ी भी है और खुशी की नमकीनी भी। अक्सर पच्छिमी साहित्य-

कारों की तरह मेरा भी खयाल था कि साहित्य के उन्माद और सौन्दर्य के उन्माद में पुराना बैर है। मुझे अपनी ज़बान से कहते हुए शर्मिन्दा होना पड़ता है कि मुझे अपनी तबीयत पर भरोसा न था। जब कभी मेरी आँखों में कोई मोहिनी सूरत खुब जाती तो मेरे दिल-दिमाग़ पर एक पागलपन-सा छा जाता। हफ्तों तक अपने को भूला हुआ-सा रहता। लिखने की तरफ़ तबीयत किसी तरह न झुकती। ऐसे कमज़ोर दिल में सिर्फ एक इश्क की जगह थी। इसी डर से मैं अपनी रंगीन तबीयत के खिलाफ आचरण शुद्ध रखने पर मजबूर था। कमल की एक पंखुड़ी, श्यामा के एक गीत, लहलहाते हुए एक मैदान में मेरे लिए जादू का-सा आकर्षण था मगर किसी औरत के दिलफ़रेब हुस्न को मैं चित्रकार या मूर्तिकार की बेलौस आँखों से नहीं देख सकता था। सुन्दर स्त्री मेरे लिए एक रंगीन, क़ातिल नागिन थी जिसे देखकर आँखें खुश होती हैं मगर दिल डर से सिमट जाता है।

खैर, 'दुनियाए हुस्न' को प्रकाशित हुए दो साल गुज़र चुके थे। मेरी ख्याति बरसात की उमड़ी हुई नदी की तरह बढ़ती चली जाती थी। ऐसा मालूम होता था कि जैसे मैंने साहित्य की दुनिया पर कोई वशीकरण कर दिया है। इस दौरान में मैंने फुटकर शेर तो बहुत कहे मगर दावतों और अभिनन्दनपत्रों की भीड़ ने मार्मिक भावों को उभरने न दिया। प्रदर्शन और ख्याति एक राजनीतिज्ञ के लिए कोड़े का काम दे सकते हैं, मगर शायर की तबीयत अकेले शान्ति से एक कोने में बैठकर ही अपना जौहर दिखलाती है। चुनांचे मैं इन रोज़ ब रोज़ बढ़ती हुई बेहूदा बातों से गला छुड़ाकर भागा और पहाड़ के एक कोने में जा छिपा। 'नैरंग' ने वहीं जन्म लिया।

२

'नैरंग' के शुरू करते ही मुझे एक आश्चर्यजनक और दिल तोड़नेवाला अनुभव हुआ। ईश्वर जाने क्यों मेरी अक्ल और मेरे चिन्तन पर एक पर्दा पड़ गया। घण्टों तबीयत पर ज़ोर डालता मगर एक शेर भी ऐसा न निकलता कि दिल फड़क उठे। सूझते भी तो दरिद्र, पिटे हुए विषय, जिनसे मेरी आत्मा भागती थी। मैं अक्सर झुँझलाकर उठ बैठता, काग़ज़ फाड़ डालता और बड़ी बेदिली की हालत में सोचने लगता कि क्या मेरी काव्यशक्ति का अन्त हो गया, क्या मैंने वह खजाना जो प्रकृति ने मुझे सारी उम्र के लिए दिया था, इतनी जल्दी मिटा दिया। कहाँ वह हालत थी कि विषयों की बहुतायत और नाजुक खयालों की रवानी क़लम को दम नहीं लेने देती थी। कल्पना का पंछी उड़ता तो आसमान का तारा बन जाता था

और कहाँ अब यह पस्ती! यह करुण दरिद्रता! मगर इसका कारण क्या है? यह किस क़सूर की सज़ा है। कारण और कार्य का दूसरा नाम दुनिया है। जब तक हमको क्यों का जवाब न मिले, दिल को किसी तरह सब्र नहीं होता, यहाँ तक कि मौत को भी इस क्यों का जवाब देना पड़ता है। आखिर मैंने एक डाक्टर से सलाह ली। उसने आम डाक्टरों की तरह आबहवा बदलने की सलाह दी। मेरी अक्ल में भी यह बात आयी कि मुमकिन है नैनीताल की ठंडी आबहवा से शायरी की आग ठंडी पड़ गयी हो। छः महीने तक लगातार घूमता-फिरता रहा। अनेक आकर्षक दृश्य देखे, मगर उनसे आत्मा पर वह शायराना कैफियत न छाती थी कि प्याला छलक पड़े और खामोश कल्पना खुद ब खुद चहकने लगे। मुझे अपना खोया हुआ लाल न मिला। अब मैं ज़िन्दगी से तंग था। ज़िन्दगी अब मुझे सूखे रेगिस्तान जैसी मालूम होती जहाँ कोई जान नहीं, ताज़गी नहीं, दिलचस्पी नहीं। हरदम दिल पर एक मायूसी-सी छायी रहती और दिल खोया-खोया रहता। दिल में यह सवाल पैदा होता कि क्या वह चार दिन की चाँदनी खत्म हो गयी और अंधेरा पाख आ गया। आदमी की संगत से बेज़ार, हमजिन्स की सूरत से नफरत, मैं एक गुमनाम कोने में पड़ा हुआ ज़िन्दगी के दिन पूरे कर रहा था। पेड़ों की चोटियों पर बैठनेवाली, मीठे राग गानेवाली चिड़िया क्या पिंजरे में ज़िन्दा रह सकती है? मुमकिन है कि वह दाना खाये, पानी पिये मगर उसकी इस ज़िन्दगी और मौत में कोई फर्क नहीं है।

आखिर जब मुझे अपनी शायरी के लौटने की कोई उम्मीद न रही, तो मेरे दिल में यह इरादा पक्का हो गया कि अब मेरे लिए शायरी की दुनिया से मर जाना ही बेहतर होगा। मुर्दा तो हूँ ही, इस हालत में अपने को ज़िन्दा समझना बेवकूफी है। आखिर मैंने एक रोज़ कुछ दैनिक पत्रों को अपने मरने की ख़बर दे दी। उसके छपते ही मुल्क में कोहराम मच गया, एक तहलका पड़ गया। उस वक्त मुझे अपनी लोकप्रियता का कुछ अंदाज़ा हुआ। यह आम पुकार थी, कि शायरी की दुनिया की किश्ती मझधार में डूब गयी। शायरी की महफिल उखड़ गयी। पत्र-पत्रिकाओं में मेरे जीवन-चरित प्रकाशित हुए जिनको पढ़कर मुझे उनके एडीटरों की आविष्कार-बुद्धि का क़ायल होना पड़ा। न तो मैं किसी रईस का बेटा था और न मैंने रईसी की मसनद छोड़कर फकीरी अख्तियार की थी। उनकी कल्पना वास्तविकता पर छा गयी थी। मेरे मित्रों में एक साहब ने, जिन्हें मुझसे आत्मीयता का दावा था, मुझे पीने-पिलाने का प्रेमी बना दिया था। वह जब कभी मुझसे मिलते, उन्हें मेरी आँखें

नशे से लाल नज़र आतीं। अगरचे इसी लेख में आगे चलकर उन्होंने मेरी इस बुरी आदत की बहुत उदारहृदयता से सफाई दी थी क्योंकि रूखा-सूखा आदमी ऐसी मस्ती के शेर नहीं कह सकता था। ताहम हैरत है कि उन्हें यह सरीहन ग़लत बात कहने की हिम्मत कैसे हुई?

खैर, इन ग़लत-बयानियों की तो मुझे परवाह न थी। अलबत्ता यह बड़ी फिक्र थी, फिक्र नहीं एक प्रबल जिज्ञासा थी, कि मेरी शायरी पर लोगों की ज़बान से क्या फतवा निकलता है। हमारी जिन्दगी के कारनामे की सच्ची दाद मरने के बाद ही मिलती है क्योंकि उस वक्त वह खुशामद और बुराइयों से पाक-साफ होती है। मरनेवाले की खुशी या रंज की कौन परवाह करता है। इसीलिए मेरी कविता पर जितनी आलोचनाएँ निकली हैं उनको मैंने बहुत ही ठंडे दिल से पढ़ना शुरू किया। मगर कविता को समझनेवाली दृष्टि की व्यापकता और उसके मर्म को समझनेवाली रुचि का चारों तरफ अकाल-सा मालूम होता था। अधिकांश जौहरियों ने एक-एक शेर को लेकर उनसे बहस की थी, और इसमें शक नहीं कि वे पाठक की हैसियत से उस शेर के पहलुओं को खूब समझते थे। मगर आलोचक का कहीं पता न था। नजर की गहराई ग़ायब थी। समग्र कविता पर निगाह डालनेवाला, कवि के गहरे भावों तक पहुँचनेवाला कोई आलोचक न दिखायी दिया।

३

एक रोज़ मैं प्रेतों की दुनिया से निकलकर घूमता हुआ अजमेर की पब्लिक लाइब्रेरी में जा पहुँचा। दोपहर का वक्त था। मैंने मेज़ पर झुककर देखा कि कोई नयी रचना हाथ आ जाये तो दिल बहलाऊँ। यकायक मेरी निगाह एक सुन्दर पत्र की ओर गयी जिसका नाम था 'कलामे अख़्तर'। जैसे भोला बच्चा खिलौने की तरफ लपकता है उसी तरह झपटकर मैंने उस किताब को उठा लिया। उसकी लेखिका मिस आयशा आरिफ़ थीं। दिलचस्पी और भी ज़्यादा हुई। मैं इत्मीनान से बैठकर उस किताब को पढ़ने लगा। एक ही पन्ना पढ़ने के बाद दिलचस्पी ने बेताबी की सूरत अख्तियार की। फिर तो मैं बेसुधी की दुनिया में पहुँच गया। मेरे सामने गोया सूक्ष्म अर्थों की एक नदी लहरें मार रही थी। कल्पना की उठान, रुचि की स्वच्छता, भाषा की नर्मी, काव्य-दृष्टि की व्यापकता, किस-किस की तारीफ करूँ। उसकी एक-एक कल्पना ऐसी थी कि हृदय धन्य-धन्य कह उठता। मैं एक पैराग्राफ पढ़ता, फिर विचार की ताज़गी से प्रभावित होकर एक लम्बी साँस लेता

और तब सोचने लगता। इस किताब को सरसरी तौर पर पढ़ना असम्भव था। यह औरत थी या सुरुचि की देवी। उसके इशारों से मेरा कलाम बहुत कम बचा था मगर जहाँ उसने मुझे दाद दी थी वहाँ सच्चाई के मोती बरसा दिये थे। उसके एतराज़ों में हमदर्दी और प्रशंसा में भक्ति थी। शायर के कलाम को दोषों की दृष्टि से नहीं, खूबियों की दृष्टि से देखना चाहिए। उसने क्या नहीं किया, यह ठीक कसौटी नहीं। उसने क्या किया, यह ठीक कसौटी है। बस यही जी चाहता था कि लेखिका के हाथ और क़लम चूम लूँ। 'सफ़ीर' भोपाल के दफ़्तर से यह पत्रिका प्रकाशित हुई थी। मेरा पक्का इरादा हो गया, तीसरे दिन शाम के वक्त मैं मिस आयशा के खूबसूरत बँगले के सामने हरी-हरी घास पर टहल रहा था। मैं नौकरानी के साथ एक कमरे में दाखिल हुआ। उसकी सजावट बहुत सादी थी। पहली चीज़ जिस पर मेरी निगाह पड़ी वह मेरी तस्वीर थी जो दीवार से लटक रही थी। सामने एक आइना रक्खा हुआ था। मैंने खुदा जाने क्यों उसमें अपनी सूरत देखी। मेरा चेहरा पीला और कुम्हलाया हुआ था, बाल उलझे हुए, कपड़ों पर गर्द की एक मोटी तह जमी हुई, परेशानी की ज़िन्दा तस्वीर खड़ी थी।

उस वक्त मुझे अपनी बुरी शक्ल पर सख्त शर्मिन्दगी हुई। मैं सुन्दर न सही मगर इस वक्त तो सचमुच चेहरे पर फटकार बरस रही थी। अपने लिबास के ठीक होने का यकीन हमें खुशी देता है। अपने फूहड़पन का जिस्म पर इतना असर नहीं होता जितना दिल पर। हम बुज़दिल और बेहौसला हो जाते हैं।

मुझे मुश्किल से पाँच मिनट गुज़रे होंगे कि मिस आयशा तशरीफ लायीं। साँवला रंग था, चेहरा एक गम्भीर घुलावट से चमक रहा था। बड़ी-बड़ी नरगिसी आँखों से सदाचार की, संस्कृति की रोशनी झलकती थी। क़द मझोले से कुछ कम। अंग-प्रत्यंग छरहरे, सुथरे, ऐसी हल्की-फुल्की कि जैसे प्रकृति ने उसे इस भौतिक संसार के लिए नहीं, किसी काल्पनिक संसार के लिए सिरजा है। कोई चित्रकार कला की उससे अच्छी तस्वीर नहीं खींच सकता था।

मिस आयशा ने मेरी तरफ दबी निगाहों से देखा मगर देखते-देखते उसकी गर्दन झुक गयी और उसके गालों पर लाज की एक हल्की सी परछाईं नाचती हुई मालूम हुई। ज़मीन से उठकर उसकी आँखें मेरी तस्वीर की तरफ गयीं और फिर सामने पर्दे की तरफ जा पहुँचीं। शायद उसकी आड़ में छिपना चाहती थीं।

मिस आयशा ने मेरी तरफ दबी निगाहों से देखकर पूछा—आप स्वर्गीय अख्तर के दोस्तों में हैं?

मैंने सर नीचा किये हुए जवाब दिया—मैं ही बदनसीब अख्तर हूँ।

आयशा एक बेखुदी के आलम में कुर्सी पर से उठ खड़ी हुई और मेरी तरफ हैरत से देखकर बोली—'दुनियाए हुस्न' के लिखनेवाले?

अन्धविश्वास के सिवा और किसने इस दुनिया से चले जानेवाले को देखा है। आयशा ने मेरी तरफ कई बार शक से भरी हुई निगाहों से देखा। उनमें अब शर्म और हया की जगह के बजाय हैरत समायी हुई थी। मेरे क़ब्र से निकलकर भागने का तो उसे यकीन आ ही नहीं सकता था, शायद वह मुझे दीवाना समझ रही थी। उसने दिल में फैसला किया कि यह आदमी मरहूम शायर का कोई क़रीबी अज़ीज़ है। शकल जिस तरह मिल रही थी वह दोनों के एक खानदान के होने का सबूत थी। मुमकिन है कि भाई हो। इस अचानक सदमे से पागल हो गया है। शायद उसने मेरी किताब देखी होगी और हाल पूछने के लिए चला आया। अचानक उसे ख़याल गुज़रा कि किसी ने अखबारों को मेरे मरने की झूठी खबर दे दी हो और मुझे उस खबर को काटने का मौका न मिला हो। इस ख़याल से उसकी उलझन दूर हुई, बोली—अखबारों में आपके बारे में एक निहायत मनहूस खबर छप गयी थी? मैंने जवाब दिया—वह खबर सही थी।

अगर पहले आयशा को मेरे दीवानेपन में कुछ शक था तो वह दूर हो गया। आखिर मैंने थोड़े लफ़्ज़ों में अपनी दास्तान सुनायी और जब उसको यकीन हो गया कि 'दुनियाए हुस्न' का लिखनेवाला अख्तर अपने इन्सानी चोले में है तो उसके चेहरे पर खुशी की एक हल्की सुर्खी दिखायी दी और यह हल्का रंग बहुत जल्द खुददारी और रूप-गर्व के शोख रंग से मिलकर कुछ का कुछ हो गया। ग़ालिबन वह शर्मिन्दा थी कि क्यों उसने अपनी क़द्रदानी को हद से बाहर जाने दिया। कुछ देर की शर्मीली खामोशी के बाद उसने कहा—मुझे अफसोस है कि आपको ऐसी मनहूस खबर निकालने की ज़रूरत हुई।

मैंने जोश में भरकर जवाब दिया—आपके क़लम की ज़बान से दाद पाने की कोई सूरत न थी। इस तनक़ीद के लिए मै ऐसी-ऐसी कई मौतें मर सकता था।

मेरे इस बेधड़क अन्दाज़ ने आयशा की ज़बान को भी शिष्टाचार और संकोच की क़ैद से आज़ाद किया, मुस्कराकर बोली—मुझे बनावट पसन्द नहीं है। डाक्टरों ने कुछ बतलाया नहीं? उसकी इस मुस्कराहट ने मुझे दिल्लगी करने पर आमादा किया, बोला—अब मसीह के सिवा इस मर्ज़ का इलाज और किसी के हाथ से नहीं हो सकता।

आयशा इशारा समझ गई, हँसकर बोली—मसीह चौथे आसमान पर रहते हैं।

मेरी हिम्मत ने अब और क़दम बढ़ाये—रूहों की दुनिया से चौथा आसमान बहुत दूर नहीं है।

आयशा के खिले हुए चेहरे से संजीदगी और अजनबियत का हल्का रंग उड़ गया। ताहम, मेरे इन बेधड़क इशारों को हद से बढ़ते देखकर उसे मेरी ज़बान पर रोक लगाने के लिए किसी क़दर खुददारी बरतना पड़ी। जब मैं कोई घंटे भर के बाद उस कमरे से निकला तो बजाय इसके कि वह मेरी तरफ अपनी अंग्रेज़ी तहज़ीब के मुताबिक हाथ बढ़ाये उसने चोरी-चोरी मेरी तरफ देखा। फैला हुआ पानी जब सिमटकर किसी जगह से निकलता है तो उसका बहाव बहुत तेज़ और ताक़त कई गुना ज़्यादा हो जाती है। आयशा की उन निगाहों में अस्मत की तासीर थी। उनमें दिल मुस्कराता था और जज़्बा नाचता था। आह उनमें मेरे लिए दावत का एक पुरजोश पैग़ाम भरा हुआ था। जब मैं मुस्लिम होटल में पहुँचकर इन वाक़यात पर ग़ौर करने लगा तो मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि गो मैं ऊपर से देखने पर यहाँ अब तक अपरिचित था लेकिन भीतरी तौर पर शायद मैं उसके दिल के कोने तक पहुँच चुका था।

४

जब मैं खाना खाकर पलँग पर लेटा तो बावजूद दो दिन रात-रात भर जागने के नींद आँखों से कोसों दूर थी। जज़्बात की कशमकश में नींद कहाँ। आयशा की सूरत, उसकी खातिरदारियाँ और उसकी वह छिपी-छिपी निगाह दिल में एहसासों का तूफान-सा बरपा कर रही थी। उस आखिरी निगाह ने दिल में तमन्नाओं की धूम-धूम मचा दी। वह आरजुएँ जो, बहुत अरसा हुआ, मर मिटी थीं फिर जाग उठीं और आरजुओं के साथ कल्पना ने भी मुँदी हुई आँखें खोल दीं।

दिल में जज़्बात और कैफ़ियात का एक नया बेचैन करनेवाला जोश महसूस हुआ। यही आरजुएँ, यही बेचैनियाँ और यही शोरिशें कल्पना के दीपक के लिए तेल हैं। जज़्बात की हरारत ने कल्पना को गरमाया। मैं क़लम लेकर बैठ गया और एक ऐसी नज़्म लिखी जिसे मैं अपनी सबसे शानदार दौलत समझता हूँ।

मैं एक होटल में रह रहा था, मगर किसी न किसी हीले से दिन में कम से कम एक बार ज़रूर उसके दर्शन का आनन्द उठाता। गो आयशा ने कभी मेरे यहाँ तक आने की तकलीफ नहीं की तो भी मुझे यह यकीन करने के लिए शहादतों की

ज़रूरत न थी कि वहाँ किसी क़दर सरगर्मी से मेरा इन्तजार किया जाता था। मेरे क़दमों की पहचानी हुई आहट पाते ही उसका चेहरा कमल की तरह खिल जाता था और आँखों से कामना की किरणें निकलने लगती थीं।

यहाँ छः महीने गुज़र गये। इस ज़माने को मेरी ज़िन्दगी की बहार समझना चाहिए। मुझे वह दिन भी याद है जब मैं आरज़ुओं और हसरतों के ग़म से आज़ाद था। मगर दरिया की शान्तिपूर्ण रवानी में थिरकती हुई लहरों की बहार कहाँ। अब अगर मुहब्बत का दर्द था तो उसका प्राणदायी मज़ा भी था। अगर आरज़ुओं की घुलावट थी तो उनकी उमंग भी थी। आह, मेरी यह प्यासी आँखें उस रूप के स्रोत से किसी तरह तृप्त न होतीं। जब मैं अपनी नशे में डूबी हुई आँखों से उसे देखता तो मुझे एक आत्मिक तरावट-सी महसूस होती। मैं उसके दीदार के नशे से बेसुध सा हो जाता और मेरी रचना-शक्ति का तो कुछ हद-हिसाब न था। ऐसा मालूम होता था कि जैसे दिल में मीठे भावों का सोता खुल गया था। अपनी कवित्व शक्ति पर खुद अचम्भा होता था। क़लम हाथ में ली और रचना का सोता-सा बह निकला। 'नैरंग' में ऊँची कल्पनाएँ न हों, बड़ी गूढ़ बातें न हों, मगर उसका एक-एक शेर प्रवाह और रस, गर्मी और घुलावट की दाद दे रहा है। यह उस दीपक का वर-दान है, जो अब मेरे दिल में जल गया था और रोशनी दे रहा था। यह उस फूल की महक थी जो मेरे दिल में खिला हुआ था। मुहब्बत रूह की खूराक है। यह वह अमृत की बूँद है जो मरे हुए भावों को ज़िन्दा कर देती है। मुहब्बत आत्मिक वरदान है। यह ज़िन्दगी की सबसे पाक, सबसे ऊँची, सबसे मुबारक बरकत है। यही अक्सीर थी जिसकी अनजाने ही मुझे तलाश थी। वह रात कभी न भूलेगी जब आयशा दुल्हन बनी हुई मेरे घर में आयी। 'नैरंग' उसी मुबारक ज़िन्दगी की यादगार है। 'दुनियाए हुस्न' एक कली थी, 'नैरंग' खिला हुआ फूल है और उस कली को खिलाने-वाली कौन-सी चीज़ है? वही जिसकी मुझे अनजाने ही तलाश थी और जिसे मैं अब पा गया था।

—उर्दू 'प्रेम पचीसी' से

अपनी करनी

१

आह, अभागा मैं! मेरे कर्मों के फल ने आज यह दिन दिखाये कि अपमान भी मेरे ऊपर हँसता है। और यह सब मैंने अपने हाथों किया। शैतान के सिर इलज़ाम क्यों दूँ, किस्मत को खरी-खोटी क्यों सुनाऊँ, होनी को क्यों रोऊँ। जो कुछ किया मैंने जानते और बूझते हुए किया। अभी एक साल गुज़रा जब मैं भाग्यशाली था, प्रतिष्ठित था और समृद्धि मेरी चेरी थी। दुनिया की नेमतें मेरे सामने हाथ बाँधे खड़ी थीं लेकिन आज बदनामी और कंगाली और शर्मिन्दगी मेरी दुर्दशा पर आँसू बहाती हैं। मैं ऊँचे खानदान का, बहुत पढ़ा-लिखा आदमी था, फारसी का मुल्ला, संस्कृत का पण्डित, अंग्रेज़ी का ग्रेजुएट। अपने मुँह मियाँ मिट्ठू क्या बनूँ लेकिन रूप भी मुझको मिला था, इतना कि दूसरे मुझसे ईर्ष्या कर सकते थे। ग़रज़ एक इन्सान को खुशी के साथ ज़िन्दगी बसर करने के लिए जितनी अच्छी चीज़ों की ज़रूरत हो सकती है वह सब मुझे हासिल थीं। सेहत का यह हाल कि मुझे कभी सरदर्द की भी शिकायत नहीं हुई। फ़िटन की सैर, दरिया की दिलफ़रेबियाँ, पहाड़ के सुन्दर दृश्य——उन खुशियों का ज़िक्र ही तकलीफ़देह है। क्या मज़े की ज़िन्दगी थी!

आह, यहाँ तक तो अपना दर्देदिल सुना सकता हूँ लेकिन इसके आगे फिर होंठों पर खामोशी की मुहर लगी हुई है। एक सती-साध्वी, पतिप्राणा स्त्री और दो गुलाब के फूल-से बच्चे इन्सान के लिए जिन खुशियों, आरज़ुओं, हौसलों और दिलफ़रेबियों का खज़ाना हो सकते हैं वह सब मुझे प्राप्त था। मैं इस योग्य नहीं कि उस पवित्र स्त्री का नाम ज़बान पर लाऊँ। मैं इस योग्य नहीं कि अपने को उन लड़कों का बाप कह सकूँ। मगर नसीब का कुछ ऐसा खेल था कि मैंने उन बिहिश्ती नेमतों की कद्र न की। जिस औरत ने मेरे हुक्म और अपनी इच्छा में कभी कोई भेद नहीं किया, जो मेरी सारी बुराइयों के बावजूद कभी शिकायत का एक हर्फ़ ज़बान पर नहीं लायी, जिसका गुस्सा कभी आँखों से आगे नहीं बढ़ने पाया-गुस्सा क्या था कुआर की बरखा थी, दो-चार हलकी-हलकी बूँदें पड़ीं और फि

आसमान साफ़ हो गया – अपनी दीवानगी के नशे में मैंने उस देवी की क़द्र न की। मैंने उसे जलाया, रुलाया, तड़पाया। मैंने उसके साथ दग़ा की। आह! जब मैं दो-दो बजे रात को घर लौटता था तो मुझे कैसे कैसे बहाने सूझते थे, नित नये हीले गढ़ता था, शायद विद्यार्थी जीवन में जब बैण्ड के मज़े मदरसे जाने की इजाज़त न देते थे, उस वक्त भी बुद्धि इतनी प्रखर न थी। और क्या उस क्षमा की देवी को मेरी बातों पर यक़ीन आता था? वह भोली थी मगर ऐसी नादान न थी। मेरी खुमारभरी आँखें और मेरे उथले भाव और मेरे झूठे प्रेम-प्रदर्शन का रहस्य क्या उससे छिपा रह सकता था? लेकिन उसकी रग-रग में शराफ़त भरी हुई थी, कोई कमीना खयाल उसकी ज़बान पर नहीं आ सकता था। वह उन बातों का ज़िक्र करके या अपने सन्देहों को खुले आम दिखलाकर हमारे पवित्र सम्बन्ध में खिंचाव या बदमज़गी पैदा करना बहुत अनुचित समझती थी। मुझे उसके विचार, उसके माथे पर लिखे मालूम होते थे। उन बदमज़गियों के मुक़ाबिले में उसे जलना और रोना ज्यादा पसन्द था, शायद वह समझती थी कि मेरा नशा खुद-ब-खुद उतर जायगा। काश, इस शराफ़त के बदले उसके स्वभाव में कुछ ओछापन और अनुदारता भी होती। काश, वह अपने अधिकारों को अपने हाथ में रखना जानती। काश, वह इतनी सीधी न होती। काश, वह अपने मन के भावों को छिपाने में इतनी कुशल न होती। काश, वह इतनी मक्कार न होती। लेकिन मेरी मक्कारी और उसकी मक्कारी में कितना अंतर था, मेरी मक्कारी हरामकारी थी, उसकी मक्कारी आत्मबलिदान।

एक रोज़ मैं अपने काम से फुरसत पाकर शाम के वक्त मनोरंजन के लिए आनन्दवाटिका में जा पहुँचा और संगमरमर के हौज पर बैठकर मछलियों का तमाशा देखने लगा। एकाएक निगाह ऊपर उठी तो मैंने एक औरत को बेले की झाड़ियों में फूल चुनते देखा। उसके कपड़े मैले थे और जवानी की ताज़गी और गर्व को छोड़कर उसके चेहरे में कोई खास बात न थी। उसने मेरी तरफ आँखें उठायीं और फिर अपने फूल चुनने में लग गयी, गोया उसने कुछ देखा ही नहीं। उसके इस अंदाज़ ने, चाहे वह उसकी सरलता ही क्यों न रही हो, मेरी वासना को और भी उद्दीप्त कर दिया। मेरे लिए यह एक नयी बात थी कि कोई औरत इस तरह देखे कि जैसे उसने नहीं देखा। मैं उठा और धीरे-धीरे, कभी ज़मीन और कभी आसमान की तरफ़ ताकते हुए बेले की झाड़ियों के पास जाकर खुद भी फूल चुनने लगा। इस ढिठाई का नतीजा यह हुआ कि वह मालिन की लड़की वहाँ से तेज़ी से साथ बाग़ के दूसरे हिस्से में चली गई।

उस दिन से मालूम नहीं वह कौन-सा आकर्षण था जो मुझे रोज़ शाम के वक्त आनन्दवाटिका की तरफ़ खींच ले जाता। उसे मुहब्बत हरगिज नहीं कह सकते। अगर मुझे उस वक्त भगवान न करे, उस लड़की के बारे में कोई शोक-समाचार मिलता तो शायद मेरी आँखों से आँसू भी न निकलते, जोगिया धारण करने की तो चर्चा ही व्यर्थ है। मैं रोज़ जाता और नये-नये रूप धरकर जाता लेकिन जिस प्रकृति ने मुझे अच्छा रूप-रंग दिया था उसी ने मुझे वाचालता से वंचित भी कर रखा था। मैं रोज़ जाता और रोज़ लौट आता, प्रेम की मंज़िल में एक कदम भी आगे न बढ़ पाता था। हाँ, इतना अलबत्ता हो गया कि उसे वह पहली-सी झिझक न रही।

आखिर इस शान्तिपूर्ण नीति को सफल न होते देखकर मैंने एक नयी युक्ति सोची। एक रोज़ मैं अपने साथ अपने शैतान बुलडाग टामी को भी साथ लेता गया। जब शाम हो गयी और वह मेरे धैर्य का नाश करनेवाली फूलों से आँचल भर कर अपने घर की ओर चली तो मैंने अपने बुलडाग को धीरे से इशारा कर दिया। बुलडाग उसकी तरफ बाज़ की तरह झपटा, फूलमती ने एक चीख मारी, दो-चार क़दम दौड़ी और ज़मीन पर गिर पड़ी। अब मैं छड़ी हिलाता, बुलडाग की तरफ़ गुस्सेभरी आँखों से देखता और हांय हांय चिल्लाता हुआ दौड़ा और उसे ज़ोर से दो-तीन डंडे लगाये। फिर मैंने बिखरे हुए फूलों को समेटा, सहमी हुई औरत का हाथ पकड़कर उसे बिठा दिया और बहुत लज्जित और दुखी भाव से बोला—यह कितना बड़ा बदमाश है, अब इसे अपने साथ कभी न लाऊँगा। तुम्हें इसने काट तो नहीं लिया?

फूलमती ने चादर से सर को ढाँकते हुए कहा—तुम न आ जाते तो वह मुझे नोच डालता। मेरे तो जैसे मन-मन भर के पैर हो गये थे। मेरा कलेजा तो अभी तक धड़क रहा है।

यह तीर लक्ष्य पर बैठा, खामोशी की मुहर टूट गयी, बातचीत का सिलसिला क़ायम हुआ। बाँध में एक दरार हो जाने की देर थी, फिर तो मन की उमंगों ने खुद-ब-खुद काम करना शुरू किया। मैंने जैसे-जैसे जाल फैलाये, जैसे-जैसे स्वाँग रचे, वह रंगीन तबीयत के लोग खूब जानते हैं। और यह सब क्यों? मुहब्बत से नहीं, सिर्फ ज़रा देर दिल को खुश करने के लिए, सिर्फ उसके भरे-पुरे शरीर और भोलेपन पर रीझकर। यों मैं बहुत नीच प्रकृति का आदमी नहीं हूँ। रूप-रंग में फूलमती का इन्दु से मुक़ाबला न था। वह सुन्दरता के साँचे में ढली हुई थी। कवियों ने सौन्दर्य की जो कसौटियाँ बनायी हैं वह सब वहाँ दिखायी देती थीं लेकिन

पता नहीं क्यों मैंने फूलमती की घुसी हुई आंखों और फूले हुए गालों और मोटे-मोटे होंठों की तरफ़ अपने दिल का ज़्यादा खिंचाव देखा। आना-जाना बढ़ा और महीना भर भी गुज़रने न पाया था कि मैं उसकी मुहब्बत के जाल में पूरी तरह फंस गया। मुझे अब घर की सादा ज़िन्दगी में कोई आनन्द न आता था। लेकिन दिल ज्यों-ज्यों घर से उचटता जाता था त्यों-त्यों मैं पत्नी के प्रति प्रेम का प्रदर्शन और भी अधिक करता था। मैं उसकी फ़रमाइशों का इन्तज़ार करता रहता और कभी उसका दिल दुखानेवाली कोई बात मेरी ज़बान पर न आती। शायद मैं अपनी आन्तरिक उदासीनता को शिष्टाचार के पर्दे में छिपाना चाहता था।

धीरे-धीरे दिल की यह कैफ़ियत भी बदल गयी और बीवी की तरफ़ से उदासीनता दिखायी देने लगी। घर में कपड़े नहीं हैं लेकिन मुझसे इतना न होता कि पूछ लूं। सच यह है कि मुझे अब उसकी खातिरदारी करते हुए एक डर-सा मालूम होता था कि कहीं उसकी ख़ामोशी की दीवार टूट न जाय और उसके मन के भाव ज़बान पर न आ जायं। यहां तक कि मैंने गिरस्ती की ज़रूरतों की तरफ से भी आंखें बन्द कर लीं। अब मेरा दिल और जान और रुपया-पैसा सब फूलमती के लिए था। मैं खुद कभी सुनार की दुकान पर न गया था लेकिन आजकल कोई मुझे पहर रात गये एक मशहूर सुनार के मकान पर बैठा हुआ देख सकता था। बज़ाज़ की दुकान में भी मुझे रुचि हो गयी।

२

एक रोज़ शाम के वक्त रोज़ की तरह मैं आनन्दवाटिका में सैर कर रहा था और फूलमती सोलहो सिंगार किये, मेरी सुनहरी-रुपहली भेंटों से लदी हुई, एक रेशमी साड़ी पहने बाग़ की क्यारियों में फूल तोड़ रही थी, बल्कि यों कहो कि अपनी चुटकियों में मेरे दिल को मसल रही थी। उसकी छोटी-छोटी आंखें उस वक़्त हुस्न के नशे से फैल गयी थीं और उनमें शोख़ी और मुस्कुराहट की झलक नज़र आती थी।

अचानक महाराजा साहब भी अपने कुछ दोस्तों के साथ मोटर पर सवार आ पहुंचे। मैं उन्हें देखते ही अगवानी के लिए दौड़ा और आदाब बजा लाया। बेचारी फूलमती महाराजा साहब को पहचानती थी लेकिन उसे एक घने कुंज के अलावा और कोई छिपने की जगह न मिल सकी। महाराजा साहब चले तो हौज़ की तरफ़ लेकिन मेरा दुर्भाग्य उन्हें उसी क्यारी पर ले चला जिधर फूलमती छिपी हुई थर-थर कांप रही थी।

महाराजा साहब ने उसकी तरफ़ आश्चर्य से देखा और बोले—यह कौन औरत है? सब लोग मेरी ओर प्रश्नभरी आंखों से देखने लगे और मुझे भी उस वक्त यही ठीक मालूम हुआ कि इसका जवाब मैं ही दूं वर्ना फूलमती न जाने क्या आफ़त ढा दे। लापरवाही के अंदाज़ से बोला—इसी बाग़ के माली की लड़की है, यहां फूल तोड़ने आयी होगी।

फूलमती लज्जा और भय के मारे ज़मीन में धंसी जाती थी। महाराजा साहब ने उसे सर से पांव तक ग़ौर से देखा और तब संदेहशील भाव से मेरी तरफ़ देखकर बोले—यह माली की लड़की है?

मैं इसका क्या जवाब देता। इसी बीच कम्बख़्त दुर्जन माली भी अपनी फटी हुई पाग संभालता, हाथ में कुदाल लिये दौड़ता हुआ आया और सर को घुटनों से मिलाकर महाराज को प्रणाम किया। महाराज ने ज़रा तेज़ लहजें में पूछा—यह तेरी लड़की है?

माली के होश उड़ गये, कांपता हुआ बोला—हुज़ूर।

महाराज—तेरी तनख़्वाह क्या है?

दुर्जन—हुज़ूर, पांच रुपये।

महाराज—यह लड़की कुंआरी है या ब्याही?

दुर्जन—हुज़ूर, अभी कुंआरी है।

महाराज ने गुस्से में कहा—या तो तू चोरी करता है या डाका मारता है वर्ना यह कभी नहीं हो सकता कि तेरी लड़की अमीरज़ादी बनकर रह सके। मुझे इसी वक़्त इसका जवाब देना होगा वर्ना मैं तुझे पुलिस के सुपुर्द कर दूंगा। ऐसे चाल-चलन के आदमी को मैं अपने यहां नहीं रख सकता।

माली की तो घिग्घी बंध गयी और मेरी यह हालत थी कि काटो तो बदन में लहू नहीं। दुनिया अंधेरी मालूम होती थी। मैं समझ गया कि आज मेरी शामत सर पर सवार है। वह मुझे जड़ से उखाड़कर दम लेगी। महाराजा साहब ने माली को ज़ोर से डांटकर पूछा—तू ख़ामोश क्यों है, बोलता क्यों नहीं?

दुर्जन फूट-फूटकर रोने लगा। जब ज़रा आवाज़ सुधरी तो बोला—हुज़ूर, बाप-दादे से सरकार का नमक खाता हूं, अब मेरे बुढ़ापे पर दया कीजिए, यह सब मेरे फूटे नसीबों का फेर है धर्मावतार। इस छोकरी ने मेरी नाक कटा दी, कुल का नाम मिटा दिया। अब मैं कहीं मुंह दिखाने लायक नहीं हूं, इसको सब तरह से समझा-बुझाकर हार गये हुज़ूर, लेकिन मेरी बात सुनती ही नहीं तो क्या करूं।

हुजूर माई-बाप हैं, आपसे क्या पर्दा करूं, उसे अब अमीरों के साथ रहना अच्छा लगता है और आजकल के रईसों और अमीरों को क्या कहूं, दीनबन्धु सब जानते हैं।

महाराजा साहब ने ज़रा देर ग़ौर करके पूछा—क्या उसका किसी सरकारी नौकर से सम्बन्ध है ?

दुर्जन ने सर झुकाकर कहा—हुज़ूर।

महाराजा साहब—वह कौन आदमी है, तुम्हें उसे बतलाना होगा।

दुर्जन—महाराज जब पूछेंगे बता दूंगा, सांच को आंच क्या।

मैंने तो समझा था कि शायद इसी वक़्त सारा पर्दा फाश हुआ जाता है लेकिन महाराजा साहब ने अपने दरबार के किसी मुलाज़िम की इज्ज़त को इस तरह मिट्टी में मिलाना ठीक नहीं समझा। वे वहां से टहलते हुए मोटर पर बैठकर महल की तरफ चले।

३

इस मनहूस वाक़ये के एक हफ्ते बाद एक रोज़ मैं दरबार से लौटा तो मुझे अपने घर में से एक बूढ़ी औरत बाहर निकलती हुई दिखायी दी। उसे देखकर मैं ठिठका। उसके चेहरे पर वह बनावटी भोलापन था जो कुटनियों के चेहरे की खास बात है। मैंने उसे डांटकर पूछा—तू कौन है, यहां क्यों आई है ?

बुढ़िया ने दोनों हाथ उठाकर मेरी बलाएं लीं और बोली—बेटा नाराज़ न हो ग़रीब भिखारी हूं, मालकिन का सुहाग भरपूर रहे, उसे जैसा सुनती थी वैसा ही पाया। यह कहकर उसने जल्दी से क़दम उठाए और बाहर चली गई। मेरे गुस्से का पारा चढ़ा, मैंने घर में जाकर पूछा—यह कौन औरत आयी थी ?

मेरी बीवी ने सर झुकाये हुए धीरे से जवाब दिया—क्या जानूं, कोई भिखारिन थी।

मैंने कहा—भिखारिनों की सूरत ऐसी नहीं हुआ करती, यह तो मुझे कुटनी-सी नज़र आती है। साफ़-साफ़ बताओ उसके यहां आने का क्या मतलब था ?

लेकिन बजाय इसके कि इन संदेहभरी बातों को सुनकर मेरी बीवी गर्व से सिर उठाये और मेरी तरफ उपेक्षा भरी आंखों से देखकर अपनी साफ़दिली का सुबूत दे, उसने सर झुकाये हुए जवाब दिया—मैं उसके पेट में थोड़े ही बैठी थी। भीख मांगने आयी थी, भीख दे दी, किसी के दिल का हाल कोई क्या जाने !

उसके लहजे और अंदाज से पता चलता था कि वह जितना ज़बान से कहती है उससे बहुत ज़्यादा उसके दिल में है। झूठा आरोप लगाने की कला में वह अभी

बिलकुल कच्ची थी वना तिरिया चरित्तर की थाह किसे मिलती है। मैं देख रहा था कि उसके हाथ-पांव थरथरा रहे हैं। मैंने झपटकर उसका हाथ पकड़ा और उसके सर को ऊपर उठाकर बड़े गम्भीर क्रोध से बोला—इन्दु, तुम जानती हो कि मुझे तुम्हारा कितना एतबार है लेकिन अगर तुमने इसी वक़्त सारी घटना सच सच न बतला दी तो मैं नहीं कह सकता कि इसका नतीजा क्या होगा। तुम्हारा ढंग बतलाता है कि कुछ-न-कुछ दाल में काला ज़रूर है। यह खूब समझ रखो कि मैं अपनी इज्ज़त को तुम्हारी और अपनी जानों से ज़्यादा अज़ीज़ समझता हूँ। मेरे लिए यह डूब मरने की जगह है कि मैं अपनी बीवी से इस तरह की बातें करूं, उसकी ओर से मेरे दिल में संदेह पैदा हो। मुझे अब ज़्यादा सब्र की गुंजाइश नहीं है। बोलो क्या बात है?

इन्दुमती मेरे पैरों पर गिर पड़ी और रोकर बोली—मेरा कुसूर माफ़ कर दो।

मैंने गरजकर कहा—वह कौन सा कुसूर है?

इन्दुमती ने संभलकर जवाब दिया—तुम अपने दिल में इस वक़्त जो खयाल कर रहे हो उसे एक पल के लिए भी वहां न रहने दो, वर्ना समझ लो कि आज ही इस जिन्दगी का खात्मा है। मुझे नहीं मालूम था कि तुम मेरी तरफ़ से ऐसे खयाल रखते हो। मेरा परमात्मा जानता है कि तुमने मेरे ऊपर जो ज़ुल्म किये हैं उन्हें मैंने किस तरह झेला है और अब भी सब कुछ झेलने के लिए तैयार हूं। मेरा सर तुम्हारे पैरों पर है, जिस तरह रखोगे, रहूंगी। लेकिन आज मुझे मालूम हुआ कि तुम जैसे खुद हो वैसा ही दूसरों को समझते हो। मुझसे भूल अवश्य हुई है लेकिन उस भूल की यह सज़ा नहीं कि तुम मुझपर ऐसे संदेह करो। मैंने उस औरत की बातों में आकर अपने घर का सारा कच्चा चिट्ठा बयान कर दिया। मैं समझती थी कि मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए लेकिन कुछ तो उस औरत की हमदर्दी और कुछ मेरे अन्दर सुलगती हुई आग ने मुझसे यह भूल करवाई और इसके लिए तुम जो सज़ा दो वह मेरे सर आंखों पर।

मेरा गुस्सा ज़रा धीमा हुआ। बोला—तुमने उससे क्या कहा?

इन्दुमती ने जवाब दिया—घर का जो कुछ हाल है, तुम्हारी बेवफ़ाई, तुम्हारी लापरवाही, तुम्हारा घर की ज़रूरतों की फ़िक्र न रखना। अपनी बेवकूफ़ी को क्या कहूं, मैंने उससे यहां तक कह दिया कि इधर तीन महीने से उन्होंने घर के लिए कुछ खर्च भी नहीं दिया और इसकी चोट मेरे गहनों पर पड़ी। तुम्हें शायद मालूम

नहीं कि इन तीन महीनों में मेरे साढ़े चार सौ रुपये के ज़ेवर बिक गये। न मालूम क्यों मैं उससे यह सब कुछ कह गयी। जब इन्सान का दिल जलता है तो ज़बान तक उसकी आंच आ ही जाती है। मगर मुझसे जो कुछ ख़ता हुई उससे कई गुनी सख़्त सज़ा तुमने मुझे दी है, मेरा बयान लेने का भी सब्र न हुआ। खैर, तुम्हारे दिल की कैफ़ियत मुझे मालूम हो गई, तुम्हारा दिल मेरी तरफ़ से साफ़ नहीं है, तुम्हें मुझपर विश्वास नहीं रहा वर्ना एक भिखारिन औरत के घर से निकलने पर तुम्हें ऐसे शुबहे क्यों होते।

मैं सर पर हाथ रखकर बैठ गया। मालूम हो गया कि तबाही के सामान पूरे हुए जाते हैं।

४

दूसरे दिन मैं ज्यों ही दफ्तर पहुंचा चोबदार ने आकर कहा—महाराजा साहब ने आपको याद किया है।

मैं तो अपनी किस्मत का फैसला पहले से ही किये बैठा था। मैं खूब समझ गया था कि वह बुढ़िया खुफ़िया पुलिस की कोई मुख़बिर है जो मेरे घरेलू मामलों की जांच के लिए तैनात हुई होगी। कल उसकी रिपोर्ट आयी होगी और आज मेरी तलबी है। ख़ौफ़ से सहमा हुआ लेकिन दिल को किसी तरह संभाले हुए कि जो कुछ सर पर पड़ेगी देखा जायगा, अभी से क्यों जान दूं, मैं महाराजा की ख़िदमत में पहुंचा। वह इस वक़्त अपने पूजा के कमरे में अकेले बैठे हुए थे, काग़ज़ों का एक ढेर इधर-उधर फैला हुआ था और वह खुद किसी ख़याल में डूबे हुए थे। मुझे देखते ही वह मेरी तरफ़ मुख़ातिब हुए, उनके चेहरे पर नाराज़गी के लक्षण दिखायी दिये, बोले—कुंअर श्याम सिंह, मुझे बहुत अफ़सोस है कि तुम्हारी बाबत मुझे जो बातें मालूम हुई हैं वह मुझे इस बात के लिए मजबूर करती हैं कि तुम्हारे साथ सख़्ती का बर्ताव किया जाय। तुम मेरे पुराने वसीक़ादार हो और तुम्हें यह गौरव कई पीढ़ियों से प्राप्त है। तुम्हारे बुजुर्गों ने हमारे खानदान की जान लगाकर सेवाएं की हैं और उन्हीं के सिले में यह वसीक़ा दिया गया था लेकिन तुमने अपनी हरकतों से अपने को इस कृपा के योग्य नहीं रक्खा। तुम्हें इसलिए वसीक़ा मिलता था कि तुम अपने ख़ानदान की परवरिश करो, अपने लड़कों को इस योग्य बनाओ कि वह राज्य की कुछ खिदमत कर सकें, उन्हें शारीरिक और नैतिक शिक्षा दो ताकि तुम्हारी ज़ात से रियासत की भलाई हो, न कि इसलिए कि तुम इस रुपये को बेहूदा ऐशपरस्ती और हरामकारी में ख़र्च करो। मुझे इस बात से बहुत ही तकलीफ़ होती है कि तुमने

अब अपने बाल-बच्चों की परवरिश की ज़िम्मेदारी से भी अपने को मुक्त समझ लिया है। अगर तुम्हारा यही ढंग रहा तो यक़ीनन् वसीक़ादारों का एक पुराना ख़ानदान मिट जायगा। इसलिए आज से हमने तुम्हारा नाम वसीक़ादारों की फ़ेहरिस्त से ख़ारिज कर दिया और तुम्हारी जगह तुम्हारी बीवी का नाम दर्ज किया गया। वह अपने लड़कों को पालने-पोसने की ज़िम्मेदार है। तुम्हारा नाम रियासत के मालियों की फ़ेहरिस्त में लिखा जायगा, तुमने अपने को इसी के योग्य सिद्ध किया है और मुझे उम्मीद है कि यह तबादला तुम्हें नागवार न होगा। बस जाओ और मुमकिन हो तो अपने किये पर पछताओ।

५

मुझे कुछ कहने का साहस न हुआ। मैंने बहुत धैर्यपूर्वक अपने क़िस्मत का यह फ़ैसला सुना और घर की तरफ़ चला। लेकिन दो ही चार क़दम चला था कि अचानक ख़याल आया किसके घर जा रहे हो, तुम्हारा घर अब कहां है! मैं उलटे क़दम लौटा। जिस घर का मैं राजा था वहां दूसरों का आश्रित बनकर मुझसे नहीं रहा जायगा और रहा भी जाये तो मुझे रहना नहीं चाहिए। मेरा आचरण निश्चय ही अनुचित था लेकिन मेरी नैतिक संवेदना अभी इतनी भोंथी न हुई थी। मैंने पक्का इरादा कर लिया कि इसी वक़्त इस शहर से भाग जाना मुनासिब है वर्ना बात फैलते ही हमदर्दों और बुरा चेतनेवालों का एक जमघट हालचाल पूछने के लिए आ जायगा, दूसरों की सूखी हमदर्दियां सुननी पड़ेंगी जिनके पर्दे में खुशी झलकती होगी। एक बार, सिर्फ़ एक बार, मुझे फूलमती का ख़याल आया। उसके कारण यह सब दुर्गत हो रही है, उससे तो मिल ही लूं। मगर दिल ने रोका, क्या एक वैभवशाली आदमी की जो इज्जत होती थी वह अब मुझे हासिल हो सकती है? हरगिज़ नहीं। रूप की मण्डी में वफ़ा और मुहब्बत के मुक़ाबिले में रुपया-पैसा ज़्यादा क़ीमती चीज़ है। मुमकिन है इस वक़्त मुझ पर तरस खाकर या क्षणिक आवेश में आकर फूलमती मेरे साथ चलने पर आमादा हो जाय लेकिन उसे लेकर कहां जाऊंगा, पावों में बेड़ियां डालकर चलना तो और भी मुश्किल है। इस तरह सोच-विचारकर मैंने बम्बई की राह ली और अब दो साल से एक मिल में नौकर हूं, तनख़्वाह सिर्फ़ इतनी है कि ज्यों-त्यों ज़िन्दगी का सिलसिला चलता रहे लेकिन ईश्वर को धन्यवाद देता हूं और इसी को यथेष्ट समझता हूं। मैं एक बार गुप्त रूप से अपने घर गया था। फूलमती ने एक दूसरे रईस से रूप का सौदा कर लिया है,

लेकिन मेरी पत्नी ने अपने प्रबन्ध-कौशल से घर की हालत खूब संभाल ली है। मैंने अपने मकान को रात के समय लालसाभरी आंखों से देखा—दरवाज़े पर दो लालटेनें जल रही थीं और बच्चे इधर-उधर खेल रहे थे, हर तरफ़ सफ़ाई और सुथरापन दिखायी देता था। मुझे कुछ अखबारों के देखने से मालूम हुआ कि महीनों तक मेरे पते-निशान के बारे में अखबारों में इश्तहार छपते रहे। लेकिन अब यह सूरत लेकर मैं वहां क्या जाऊँगा और यह कालिख-लगा मुंह किसको दिखाऊंगा। अब तो मुझे इसी गिरी-पड़ी हालत में ज़िन्दगी के दिन काटने हैं, चाहे रोकर काटूं या हँसकर। मैं अपनी हरकतों पर अब बहुत शर्मिन्दा हूं। अफ़सोस मैंने उन नेमतों की क़द्र न की, उन्हें लात से ठोकर मारी, यह उसी की सज़ा है कि आज मुझे यह दिन देखना पड़ रहा है। मैं वह परवाना हूं जिसकी खाक भी हवा के झोंकों से न बची।

—ज़माना, सितंबर-अक्तूबर १९१४

ग़ैरत की कटार

कितनी अफ़सोसनाक, कितनी दर्दभरी बात है कि वही औरत जो कभी हमारे पहलू में बसती थी उसी के पहलू में चुभने के लिए हमारा तेज़ खंजर बेचैन हो रहा है। जिसकी आँखें हमारे लिए अमृत के छलकते हुए प्याले थीं वही आँखें हमारे दिल में आग और तूफ़ान पैदा करें! रूप उसी वक्त तक राहत और खुशी देता है जब तक उसके भीतर एक रूहानी नेमत होती है और जब तक उसके अन्दर औरत की वफ़ा की रूह हरकत कर रही हो वर्ना वह एक तकलीफ़ देनेवाली चीज़ है, ज़हर और बदबू से भरी हुई, इसी क़ाबिल कि वह हमारी निगाहों से दूर रहे और पंजे और नाखून का शिकार बने। एक ज़माना वह था कि नईमा हैदर की आरज़ुओं की देवी थी, यह समझना मुश्किल था कि कौन तलबगार है और कौन उस तलब को पूरा करने वाला। एक तरफ पूरी-पूरी दिलजोई थी, दूसरी तरफ पूरी-पूरी रज़ा। तब तक़-दीर ने पाँसा पलटा। गुलो-बुलबुल में सुबह की हवा की शरारतें शुरू हुईं। शाम का वक्त था। आसमान पर लाली छायी हुई थी। नईमा उमंग और ताज़गी और शौक से उमड़ी हुई कोठे पर आयी। शफ़क़ की तरह उसका चेहरा भी उस वक्त खिला हुआ था। ऐन उसी वक्त वहाँ का सूबेदार नासिर अपने हवा की तरह तेज़ घोड़े पर सवार उधर से निकला। ऊपर निगाह उठी तो हुस्न का करिश्मा नज़र आया कि जैसे चाँद शफ़क़ के हौज में नहाकर निकला है। तेज़ निगाह जिगर के पार हुई। कलेजा थामकर रह गया। अपने महल को लौटा, अधमरा, टूटा हुआ। मुसाहबों ने हकीम की तलाश की और तब राह-रस्म पैदा हुई। फिर इश्क़ की दुश्वार मंज़िलें तय हुईं। वफ़ा और हया ने बहुत बेरुख़ी दिखायी। मगर मुहब्बत के शिकवे और इश्क़ की कुफ्र तोड़नेवाली धमकियाँ आख़िर जीतीं। अस्मत का ख़ज़ाना लुट गया। उसके बाद वही हुआ जो हो सकता था। एक तरफ से बदगुमानी, दूसरी तरफ से बनावट और मक्कारी। मनमुटाव की नौबत आयी, फिर एक-दूसरे के दिल को चोट पहुँचाना शुरू हुआ। यहाँ तक कि दिलों में मैल पड़ गयी। एक-दूसरे के ख़ून के प्यासे हो गये। नईमा ने नासिर की मुहब्बत की गोद में पनाह ली और आज एक महीने की बेचैन इन्तज़ारी के बाद हैदर अपने जज़्बात के साथ

नंगी तलवार पहलू में छिपाये अपने जिगर के भड़कते हुए शोलों को नईमा के खून से बुझाने के लिए आया हुआ है।

२

आधी रात का वक्त था और अंधेरी रात थी। जिस तरह आसमान के हरमसरा में हुस्न के सितारे जगमगा रहे थे, उसी तरह नासिर का हरम भी हुस्न के दीपों से रौशन था। नासिर एक हफ्ते से किसी मोर्चे पर गया हुआ है। इसलिए दरबान ग़ाफ़िल हैं। उन्होंने हैदर को देखा मगर उनके मुँह सोने-चाँदी से बन्द थे। ख्वाजा-सराओं की निगाह पड़ी लेकिन वह पहले ही एहसान के बोझ से दब चुके थे। खवासों और कनीजों ने भी मतलबभरी निगाहों से उसका स्वागत किया और हैदर बदला लेने के नशे में गुनहगार नईमा के सोने के कमरे में जा पहुँचा, जहाँ की हवा संदल और गुलाब से बसी हुई थी।

कमरे में एक मोमी चिराग़ जल रहा था और उसी की भेद-भरी रोशनी में आराम और तकल्लुफ़ की सजावटें नज़र आती थीं जो सतीत्व-जैसी अनमोल चीज़ के बदले में खरीदी गयी थीं। वहीं वैभव और ऐश्वर्य की गोद में लेटी हुई नईमा सो रही थी।

हैदर ने एक बार नईमा को आँख भर देखा। वही मोहिनी सूरत थी, वही आकर्षक लावण्य और वही इच्छाओं को जगानेवाली ताज़गी। वही युवती जिसे एक बार देखकर भूलना असम्भव था।

हाँ, वही नईमा थी, वही गोरी बाँहें जो कभी उसके गले का हार बनती थीं, वही कस्तूरी में बसे हुए बाल जो कभी उसके कन्धों पर लहराते थे, वही फूल जैसे गाल जो उसकी प्रेम-भरी आँखों के सामने लाल हो जाते थे। इन्हीं गोरी-गोरी कलाइयों में उसने अभी-अभी खिली हुई कलियों के कंगन पहनाये थे और जिन्हें वह वफा के कंगन समझा था। इसी गले में उसने फूलों के हार सजाये थे और उन्हें प्रेम का हार खयाल किया था। लेकिन उसे क्या मालूम था कि फूलों के हार और कलियों के कंगन के साथ वफ़ा के कंगन और प्रेम के हार भी मुरझा जायँगे।

हाँ, यह वही गुलाब के-से होंठ हैं जो कभी उसकी मुहब्बत में फूल की तरह खिल जाते थे जिनसे मुहब्बत की सुहानी महक उड़ती थी और यह वही सीना है जिसमें कभी उसकी मुहब्बत और वफा का जलवा था, जो कभी उसके मुहब्बत का घर था।

मगर जिस फूल में दिल की महक थी, उसमें दग़ा के काँटे हैं।

३

हैदर ने तेज़ कटार पहलू से निकाली और दबे पाँव नईमा की तरफ़ आया लेकिन उसके हाथ न उठ सके। जिसके साथ उम्र भर ज़िन्दगी की सैर की उसकी गर्दन पर छुरी चलाते हुए उसका हृदय द्रवित हो गया। उसकी आँखें भीग गयीं, दिल में हसरतभरी यादगारों का एक तूफ़ान-सा आ गया। तक़दीर की क्या ख़ूबी है कि जिस प्रेम का आरम्भ ऐसा ख़ुशी से भरपूर हो उसका अन्त इतना पीड़ाजनक हो। उसके पैर थरथराने लगे। लेकिन स्वाभिमान ने ललकारा, दीवार पर लटकी हुई तस्वीरें उसकी इस कमज़ोरी पर मुस्करायीं।

मगर कमज़ोर इरादा हमेशा सवाल और दलील की आड़ लिया करता है। हैदर के दिल में खयाल पैदा हुआ, क्या इस मुहब्बत के बाग़ को उजाड़ने का इल्ज़ाम मेरे ऊपर नहीं है? जिस वक्त बदगुमानियों के अँखुए निकले, अगर मैंने तानों और धिक्कारों के बजाय मुहब्बत से काम लिया होता तो आज यह दिन न आता। मेरे ही जुल्मों ने मुहब्बत और वफ़ा की जड़ काटी। औरत कमज़ोर होती है, किसी सहारे के बग़ैर नहीं रह सकती। जिस औरत ने मुहब्बत के मज़े उठाये हों, और उल्फ़त की नाज़बरदारियाँ देखी हों वह तानों और ज़िल्लतों की आँच क्या सह सकती है? लेकिन फिर ग़ैरत ने उकसाया, कि जैसे वह धुँधला चिराग़ भी उसकी कमज़ोरियों पर हँसने लगा।

स्वाभिमान और तर्क में सवाल-जवाब हो रहा था कि अचानक नईमा ने करवट बदली और अंगड़ाई ली। हैदर ने फौरन तलवार उठायी, जान के खतरे में आगा-पीछा कहाँ। दिल ने फैसला कर लिया, तलवार अपना काम करनेवाली ही थी कि नईमा ने आँखें खोल दीं। मौत की कटार सिर पर नज़र आयी। वह घबराकर उठ बैठी। हैदर को देखा, परिस्थिति समझ में आ गयी। बोली—हैदर!

४

हैदर ने अपनी झेंप को गुस्से के पर्दे में छिपाकर कहा—हाँ, मैं हूँ हैदर!

नईमा सिर झुकाकर हसरतभरे ढंग से बोली—तुम्हारे हाथों में यह चमकती हुई तलवार देखकर मेरा कलेजा थरथरा रहा है। तुम्हीं ने मुझे नाज़बरदारियों का आदी बना दिया है। ज़रा देर के लिए इस कटार को मेरी आँखों से छिपा लो। मैं जानती हूँ कि तुम मेरे खून के प्यासे हो, लेकिन मुझे न मालूम था कि तुम इतने बेरहम और संगदिल हो। मैंने तुमसे दग़ा की है, तुम्हारी खतावार हूँ लेकिन हैदर

यक़ीन मानो, अगर मुझे चन्द आख़िरी बातें कहने का मौक़ा न मिलता तो शायद मेरी रूह को दोज़ख़ में भी यही आरज़ू रहती। मौत की सज़ा से पहले अपने घर-वालों से आख़िरी मुलाक़ात की इजाज़त होती है। क्या तुम मेरे लिए इतनी रियायत के भी रवादार न थे? माना कि अब तुम मेरे कोई नहीं हो मगर किसी वक़्त थे और तुम चाहे अपने दिल में समझते हो कि मैं सब कुछ भूल गयी लेकिन मैं मुहब्बत को इतनी भूल जानेवाली नहीं हूँ। अपने ही दिल से फ़ैसला करो। तुम मेरी बेवफ़ाइयाँ चाहे भूल जाओ लेकिन मेरी मुहब्बत की दिल तोड़नेवाली यादगारें नहीं मिटा सकते। मेरी आख़िरी बातें सुन लो और इस नापाक ज़िन्दगी का क़िस्सा पाक करो। मैं साफ़-साफ़ कहती हूँ, इस आख़िरी वक्त में क्यों डरूँ। मेरी जो कुछ दुर्गत हुई है उसके ज़िम्मेदार तुम हो। नाराज़ न हो। अगर तुम्हारा ख़याल है कि मैं यहाँ फूलों की सेज पर सोती हूँ तो वह ग़लत है। मैंने औरत की शर्म खोकर उसकी क़द्र जानी है। मैं हसीन हूँ, नाजुक हूँ, दुनिया की नेमतें मेरे लिए हाज़िर हैं, नासिर मेरी इच्छा का गुलाम है लेकिन मेरे दिल से यह ख़याल कभी दूर नहीं होता कि वह सिर्फ़ मेरे हुस्न और अदा का बंदा है। मेरी इज़्ज़त उसके दिल में कभी हो भी नहीं सकती। क्या तुम जानते हो कि यहाँ ख़वासों और दूसरी बीवियों के मतलब भरे इशारे मेरे खून और जिगर को नहीं जलाते। ओफ़्, मैंने अस्मत खोकर अस्मत की क़द्र जानी है लेकिन मैं कह चुकी हूँ और फिर कहती हूँ, कि इसके तुम ज़िम्मेदार हो।

हैदर ने पहलू बदलकर पूछा—क्योंकर?

नईमा ने उसी अन्दाज़ से जवाब दिया—तुमने मुझे बीवी बनाकर नहीं, माशूक बनाकर रक्खा। तुमने मुझे नाज़बरदारियों का आदी बनाया लेकिन फ़र्ज़ का सबक़ नहीं पढ़ाया। तुमने कभी न अपनी बातों से, न कामों से मुझे यह ख़याल करने का मौक़ा दिया कि इस मुहब्बत की बुनियाद फ़र्ज़ पर है। तुमने मुझे हमेशा हुस्न और मस्तियों के तिलिस्म में फँसा रक्खा और मुझे ख़्वाहिशों का गुलाम बना दिया। किसी किश्ती पर अगर फ़र्ज़ का मल्लाह न हो तो फिर उसे दरिया में डूब जाने के सिवा और कोई चारा नहीं। लेकिन अब बातों से क्या हासिल, अब तो तुम्हारी ग़ैरत की कटार मेरे ख़ून की प्यासी है और यह लो मेरा सिर उसके सामने झुका हुआ है। हाँ, मेरी एक आख़िरी तमन्ना है, अगर तुम्हारी इजाज़त पाऊँ तो कहूँ।

यह कहते-कहते नईमा की आँखों में आँसुओं की बाढ़ आ गयी और हैदर की ग़ैरत उसके सामने न ठहर सकी। उदास स्वर में बोला—क्या कहती हो?

नईमा ने कहा—अच्छा इजाज़त दी है तो इनकार न करना। मुझे एक बार फिर उन अच्छे दिनों की याद ताज़ा कर लेने दो जब मौत की कटार नहीं, मुहब्बत के तीर जिगर को छेदा करते थे, एक बार फिर मुझे अपनी मुहब्बत की बाँहों में ले लो। मेरी आख़िरी बिनती है एक बार फिर अपने हाथों को मेरी गर्दन का हार बना दो। भूल जाओ कि मैंने तुम्हारे साथ दग़ा की है, भूल जाओ कि यह जिस्म गन्दा और नापाक है, मुझे मुहब्बत से गले लगा लो और यह मुझे दे दो। तुम्हारे हाथों में यह अच्छी नहीं मालूम होती। तुम्हारे हाथ मेरे ऊपर न उठेंगे। देखो कि एक कमज़ोर औरत किस तरह ग़ैरत की कटार को अपने जिगर में रख लेती है।

यह कहकर नईमा ने हैदर के कमज़ोर हाथों से वह चमकती हुई तलवार छीन ली और उसके सीने से लिपट गयी। हैदर झिझका लेकिन वह सिर्फ़ ऊपरी झिझक थी। अभिमान और प्रतिशोध-भावना की दीवार टूट गयी। दोनों आलिंगन-पाश में बँध गये और दोनों की आँखें उमड़ आयीं।

नईमा के चेहरे पर एक सुहानी, प्राणदायिनी मुस्कराहट दिखायी दी और मतवाली आँखों में ख़ुशी की लाली झलकने लगी। बोली—आज कैसा मुबारक दिन है कि दिल की सब आरज़ुएँ पूरी होती जाती हैं लेकिन यह कम्बख़्त आरज़ुएँ कभी पूरी नहीं होतीं। इस सीने से लिपटकर मुहब्बत की शराब के बग़ैर नहीं रहा जाता। तुमने मुझे कितनी बार प्रेम के प्याले पिलाये हैं। उस सुराही और उस प्याले की याद नहीं भूलती। आज एक बार फिर उल्फत की शराब के दौर चलने दो। मौत की शराब से पहले उल्फ़त की शराब पिला दो। एक बार फिर मेरे हाथों से प्याला ले लो। मेरी तरफ़ उन्हीं प्यार की निगाहों से देखकर, जो कभी आँखों से न उतरती थीं, पी जाओ। मरती हूँ तो ख़ुशी से मरूँ।

नईमा ने अगर सतीत्व खोकर सतीत्व का मूल्य जाना था, तो हैदर ने भी प्रेम खोकर प्रेम का मूल्य जाना था। उस पर इस समय एक मदहोशी छायी हुई थी। लज्जा और याचना और झुका हुआ सिर, यह गुस्से और प्रतिशोध के जानी दुश्मन हैं और एक औरत के नाज़ुक हाथों में तो उनकी काट तेज़ तलवार को मात कर देती है। अंगूरी शराब के दौर चले और हैदर ने मस्त होकर प्याले पर प्याले खाली करने शुरू किये। उसके जी में बार-बार आता था कि नईमा के पैरों पर सिर रख दूँ और उस उजड़े हुए आशियाने को आबाद कर दूँ। फिर मस्ती की कैफ़ियत पैदा हुई और अपनी बातों पर और अपने कामों पर उसे अख़्तियार न रहा। वह रोया, गिड़गिड़ाया, मिन्नतें कीं यहाँ तक कि उन दग़ा के प्यालों ने उसका सिर झुका दिया।

५

हैदर कई घण्टे तक बेसुध पड़ा रहा। वह चौंका तो रात बहुत कम बाक़ी रह गयी थी। उसने उठना चाहा लेकिन उसके हाथ-पैर रेशम की डोरियों से मज़बूत बँधे हुए थे। उसने भौंचक होकर इधर-उधर देखा। नईमा उसके सामने वही तेज़ कटार लिये खड़ी थी। उसके चेहरे पर एक क़ातिलों जैसी मुस्कराहट की लाली थी। फ़र्ज़ी माशूक के ख़ूनीपन और ख़ंजरबाज़ी के तराने वह बहुत बार गा चुका था मगर इस वक़्त उसे इस नज़्ज़ारे से शायराना लुत्फ़ उठाने का जीवट न था। जान का ख़तरा, नशे के लिए तुर्शी से भी ज़्यादा क़ातिल है। घबराकर बोला—नईमा!

नईमा ने तेज लहजे में कहा—हाँ, मैं हूँ नईमा।

हैदर गुस्से से बोला—क्या फिर दग़ा का वार किया?

नईमा ने जवाब दिया—जब वह मर्द जिसे ख़ुदा ने बहादुरी और क़ूवत और हौसला दिया है, दग़ा का वार करता है तो उसे मुझसे यह सवाल करने का कोई हक़ नहीं। दग़ा और फ़रेब औरतों के हथियार हैं क्योंकि औरत कमज़ोर होती है। लेकिन तुमको मालूम हो गया होगा कि औरत के नाज़ुक हाथों में ये हथियार कैसी काट करते हैं। यह देखो यह वही आबदार शमशीर है, जिसे तुम ग़ैरत की कटार कहते थे। अब वह ग़ैरत की कटार मेरे जिगर में नहीं, तुम्हारे जिगर में चुभेगी। हैदर, इन्सान थोड़ा खोकर बहुत कुछ सीखता है। तुमने इज़्ज़त और आबरू सब कुछ खोकर भी कुछ न सीखा। तुम मर्द थे। नासिर से तुम्हारी होड़ थी। तुम्हें उसके मुक़ाबिले में अपनी तलवार के जौहर दिखाना था लेकिन तुमने निराला ढंग अख़्तियार किया और एक बेकस औरत पर दग़ा का वार करना चाहा और अब तुम उसी औरत के सामने बिना हाथ-पैर के पड़े हुए हो। तुम्हारी जान बिलकुल मेरी मुट्ठी में है। मैं एक लमहे में उसे मसल सकती हूँ और अगर मैं ऐसा करूँ तो तुम्हें मेरा शुक्रगुज़ार होना चाहिए क्योंकि एक मर्द के लिए ग़ैरत की मौत बेग़ैरती की ज़िन्दगी से अच्छी है। लेकिन मैं तुम्हारे ऊपर रहम करूँगी : मैं तुम्हारे साथ फ़ैयाज़ी का बर्ताव करूँगी क्योंकि तुम ग़ैरत की मौत पाने के हक़दार नहीं हो। जो ग़ैरत चन्द मीठी बातों और एक प्याला शराब के हाथों बिक जाय वह असली ग़ैरत नहीं है। हैदर, तुम कितने बेवकूफ़ हो, क्या तुम इतना भी नहीं समझते कि जिस औरत ने अपनी अस्मत जैसी अनमोल चीज़ देकर यह ऐश और तकल्लुफ़ पाया, वह ज़िन्दा रहकर इन नेमतों का सुख लूटना चाहती है। जब तुम सब कुछ खोकर

ज़िन्दगी से तंग नहीं हो तो मैं सब कुछ पाकर क्यों मौत की ख़्वाहिश करूँ? अब रात बहुत कम रह गयी है। यहाँ से जान लेकर भागो वर्ना मेरी सिफ़ारिश भी तुम्हें नासिर के गुस्से की आग से न बचा सकेगी। तुम्हारी यह ग़ैरत की कटार मेरे क़ब्ज़े में रहेगी और तुम्हें याद दिलाती रहेगी कि तुमने इज़्ज़त के साथ ग़ैरत भी खो दी।

—ज़माना, जुलाई १९१५

०

घमण्ड का पुतला

शाम हो गयी थी। मैं सरयू नदी के किनारे अपने कैम्प में बैठा हुआ नदी के मज़े ले रहा था कि मेरे फुटबाल ने दबे पाँव पास आकर मुझे सलाम किया कि जैसे वह मुझसे कुछ कहना चाहता है।

फुटबाल के नाम से जिस प्राणी का ज़िक्र किया गया वह मेरा अर्दली था। उसे सिर्फ़ एक नज़र देखने से यक़ीन हो जाता था कि यह नाम उसके लिए पूरी तरह उचित है। वह सिर से पैर तक आदमी की शकल में एक गेंद था। लम्बाई-चौड़ाई बराबर। उसका भारी-भरकम पेट, जिसने उस दायरे के बनाने में खास हिस्सा लिया था, एक लम्बे कमरबन्द में लिपटा रहता था, शायद इसलिए कि वह इन्तहा से आगे न बढ़ जाय। जिस वक्त वह तेज़ी से चलता था बल्कि यों कहिए कि लुढ़कता था तो साफ मालूम होता था कि कोई फुटबाल ठोकर खाकर लुढ़कत चला आता है। मैंने उसकी तरफ देखकर पूछा—क्या कहते हो ?

इस पर फुटबाल ने ऐसी रोनी सूरत बनायी कि जैसे कहीं से पिटकर आया है और बोला—हुजूर अभी तक यहाँ रसद का कोई इन्तज़ाम नहीं हुआ। ज़मीन्दार साहब कहते हैं कि मैं किसी का नौकर नहीं हूँ।

मैंने इस निगाह से देखा कि जैसे मैं और ज़्यादा नहीं सुनना चाहता। यह असम्भव था कि एक मस्जिट्रेट की शान में ज़मीन्दार से ऐसी गुस्ताखी होती। यह मेरे हाकिमाना गुस्से को भड़काने की एक बदतमीज़ कोशिश थी। मैंने पूछा—ज़मीन्दार कौन है ?

फुटबाल की बाँछें खिल गयीं, बोला—क्या कहूँ, कुँअर सज्जनसिंह। हुजूर, बड़ा ढीठ आदमी है। रात होने आयी है और अभी तक हुजूर के सलाम को भी नहीं आया। घोड़ों के सामने न घास है न दाना। लश्कर के सब आदमी भूखे बैठे हुए हैं। मिट्टी का एक बर्तन भी नहीं भेजा।

मुझे ज़मीन्दारों से रात-दिन साबक़ा रहता था मगर यह शिकायत कभी सुनने में नहीं आयी थी। इसके विपरीत वह मेरी ख़ातिर-तवाज़ो में ऐसी जाँफ़िशानी से काम लेते थे जो उनके स्वाभिमान के लिए ठीक न थी। उसमें दिल खोल-

कर आतिथ्य-सत्कार करने का भाव तनिक भी न होता था। न उसमें शिष्टाचार था, न वैभव का प्रदर्शन जो ऐब है। इसके बजाय वहाँ बेजा रसूख की फ़िक्र और स्वार्थ की हवस साफ दिखायी देती थी और इस रसूख बनाने की कीमत काव्योचित अतिशयोक्ति के साथ उन ग़रीबों से वसूल की जाती थी जिनका बेकसी के सिवा और कोई हाथ पकड़नेवाला नहीं। उनके बात करने के ढंग में वह मुलायमियत और आजिज़ी बरती जाती थी, जिसका स्वाभिमान से बैर है और अक्सर ऐसे मौक़ आते थे, जब इन खातिरदारियों से तंग होकर दिल चाहता था कि काश इन खुशामदी आदमियों की सूरत न देखनी पड़ती।

मगर आज अपने फुटबाल की ज़बान से यह कैफियत सुनकर मेरी जो हालत हुई उसने साबित कर दिया कि रोज़-रोज़ की खातिरदारियों और मीठी-मीठी बातों ने मुझ पर असर किये बिना नहीं छोड़ा था। मैं यह हुक्म देनेवाला ही था कि कुँअर सज्जनसिंह को हाज़िर करो कि एकाएक मुझे ख़याल आया इन मुफ़्तखोरे चपरासियों के कहने पर एक प्रतिष्ठित आदमी को अपमानित करना न्याय नहीं है। मैंने अर्दली से कहा—बनियों के पास जाओ, नक़द दाम देकर चीजें लाओ और याद रखो कि मेरे पास कोई शिकायत न आये।

अर्दली दिल में मुझे कोसता हुआ चला गया।

मगर मेरे आश्चर्य की कोई सीमा न रही, जब वहाँ एक हफ्ते तक रहने पर भी कुँअर साहब से मेरी भेंट न हुई। अपने आदमियों और लश्करवालों की ज़बान से कुंअर साहब की ढिठाई, घमण्ड और हेकड़ी की कहानियाँ रोज़ सुना करता। और मेरे दुनिया देखे हुए पेशकार ने ऐसे अतिथि-सत्कार-शून्य गाँव में पड़ाव डालने के लिए मुझे कई बार इशारों से समझाने-बुझाने की कोशिश की। ग़ालिबन मैं पहला आदमी था जिससे यह भूल हुई थी और अगर मैंने जिले के नक़शे के बदले लश्करवालों से अपने दौरे का प्रोग्राम बनाने में मदद ली होती तो शायद इस अप्रिय अनुभव की नौबत न आती। लेकिन कुछ अजब बात थी कि कुँअर साहब को बुरा-भला कहना मुझ पर उल्टा असर डालता था। यहाँ तक कि मुझे उस आदमी से मुकालात करने की इच्छा पैदा हुई जो सर्वशक्तिमान अफसरों से इतना ज्यादा अलग-थलग रह सकता है।

२

सुबह का वक्त था, मैं गढ़ी में गया। नीचे सरयू नदी लहरें मार रही थी। उस पार साखू का जंगल था। मीलों तक बादामी रेत, उस पर खरबूज़े और तरबूज़

की क्यारियाँ थीं। पीले-पीले फूलों से लहराती हुई। बगुलों और मुर्गाबियों के गोल-के-गोल बैठे हुए थे। सूर्य देवता ने जंगलों से सिर निकाला, लहरें जगमगायीं, पानी में तारे निकले। बड़ा सुहाना, आत्मिक उल्लास देनेवाला दृश्य था।

मैंने खबर करवायी और कुँअर साहब के दीवानखाने में दाखिल हुआ। लम्बा-चौड़ा कमरा था। फर्श बिछा हुआ था। सामने मसनद पर एक बहुत लम्बा-तड़ंगा आदमी बैठा था। सर के बाल मुड़े हुए, गले में रुद्राक्ष की एक माला, लाल लाल आँखें, ऊँचा माथा—पुरुषोचित अभिमान की इससे अच्छी तसवीर नहीं हो सकती। चेहरे से रोबदाब बरसता था।

कुंअर साहब ने मेरे सलाम को इस अन्दाज़ से लिया कि जैसे वह इसके आदी हैं। मसनद से उठकर उन्होंने बहुत बड़प्पन के ढंग से मेरी अगवानी की, खैरियत पूछी, और इस तकलीफ़ के लिए मेरा शुक्रिया अदा करने के बाद इतर और पान से मेरी तवाज़ो की। तब वह मुझे अपनी उस गढ़ी की सैर कराने चले जिसने किसी ज़माने में ज़रूर आसफुद्दौला को जिच किया होगा मगर इस वक्त बहुत टूटी-फूटी हालत में थी। यहाँ के एक-एक रोड़े पर कुंअर साहब को नाज़ था। उनके खानदानी बड़प्पन और रोबदाब का ज़िक्र उनकी ज़बान से सुनकर विश्वास न करना असम्भव था। उनका बयान करने का ढंग यक़ीन को मजबूर करता था और वे उन कहानियों के सिर्फ पासबान ही न थे बल्कि वह उनके ईमान का हिस्सा थीं और जहाँ तक उनकी शक्ति में था, उन्होंने अपनी आन निभाने में कभी कसर नहीं की।

कुंअर सज्जन सिंह खानदानी रईस थे। उनकी वंश-परम्परा यहाँ-वहाँ टूटती हुई अन्त में किसी महात्मा ऋषि से जाकर मिल जाती थी। उन्हें तपस्या और भक्ति और योग का कोई दावा न था लेकिन इसका गर्व उन्हें अवश्य था कि वे एक ऋषि की सन्तान हैं। पुरखों के जंगली कारनामे भी उनके लिए गर्व का कुछ कम कारण न थे। इतिहास में उनका कहीं जिक्र न हो मगर खानदानी भाट ने उन्हें अमर बनाने में कोई कसर नहीं रखी थी और अगर शब्दों में कुछ ताकत है तो यह गढ़ी रोहतास या कालिंजर के किलों से भी आगे बढ़ी हुई थी। कम से कम प्राचीनता और बर्बादी के वाह्य लक्षणों में तो उसकी मिसाल मुश्किल से मिल सकती थी, क्योंकि पुराने ज़माने में चाहे उसने मुहासरों और सुरंगों को हेच समझा हो लेकिन इस वक्त वह चींटियों और दीमकों के हमलों का भी सामना न कर सकती थी।

कुंअर सज्जन सिंह से मेरी भेंट बहुत संक्षिप्त थी लेकिन इस दिलचस्प आदमी ने मुझे हमेशा के लिए अपना भक्त बना लिया। बड़ा समझदार, मामले को

समझनेवाला, दूरदर्शी आदमी था। आखिर मुझे उसका बिन-पैसों का गुलाम बनना था।

३

बरसात में सरयू नदी इस ज़ोर-शोर से चढ़ी कि हज़ारों गाँव बरबाद हो गये, बड़े-बड़े तनावर दरख्त तिनकों की तरह बहते चले जाते थे। चारपाइयों पर सोते हुए बच्चे और औरतें, खूँटे पर बँधे हुए गाय और बैल उसकी गरजती हुई लहरों में समा गये। खेतों में नाव चलती थी।

शहर में उड़ती हुई खबरें पहुँचीं। सहायता के प्रस्ताव पास हुए। सैकड़ों ने सहानुभूति और शोक के अरजेण्ट तार ज़िले के बड़े साहब की सेवा में भेजे। टाउनहाल में क़ौमी हमदर्दी की पुरशोर सदाएँ उठीं और उस हंगामे में बाढ़-पीड़ितों की दर्दभरी पुकारें दब गयीं।

सरकार के कानों में फरियाद पहुँची। एक जाँच कमीशन तैनात किया गया। ज़मीन्दारों को हुक्म हुआ कि वे कमीशन के सामने अपने नुकसानों को विस्तार से बतायें और उसके सबूत दें। शिवरामपुर के महाराजा साहब को इस कमीशन का सभापति बनाया गया। ज़मीन्दारों में रेल-पेल शुरू हुई। नसीब जागे। नुकसान के तखमीने का फैसला करने में काव्य-बुद्धि से काम लेना पड़ा। सुबह से शाम तक कमीशन के सामने एक जमघट रहता। आनरेबुल महाराजा साहब को साँस लेने की फुरसत न थी। दलील और शहादत का काम बात बनाने और खुशामद से लिया जाता था। महीनों यही कैफियत रही। नदी किनारे के सभी ज़मीन्दार अपने नुकसान की फरियादें पेश कर गये, अगर कमीशन से किसी को कोई फायदा नहीं पहुँचा तो वह कुंअर सज्जन सिंह थे। उनके सारे मौज़े सरयू के किनारे पर थे और सब तबाह हो गये थे, गढ़ी की दीवारें भी उसके हमलों से न बच सकी थीं, मगर उनकी ज़बान ने खुशामद करना सीखा ही न था और यहाँ उसके बग़ैर रसाई मुश्किल थी। चुनाँचे वह कमीशन के सामने न आ सके। मियाद खतम होने पर कमीशन ने रिपोर्ट पेश की, बाढ़ में डूबे हुए इलाकों में लगान की आम माफी हो गयी। रिपोर्ट के मुताबिक सिर्फ सज्जन सिंह वह भाग्यशाली ज़मीन्दार थे, जिनका कोई नुकसान नहीं हुआ था। कुंअर साहब ने रिपोर्ट सुनी, मगर माथे पर बल न आया। उनके असामी गढ़ी के सहन में जमा थे, यह हुक्म सुना तो रोने-धोने लगे। तब कुंअर साहब उठे और बुलन्द आवाज़ में बोले—मेरे इलाके में भी माफी है। एक कौड़ी लगान न लिया जाय। मैंने यह वाक़या सुना और खुद ब खुद मेरी आँखों से

आँसू टपक पड़े। बेशक यह वह आदमी है, जो हुकूमत और अख्तियार के तूफान में जड़ से उखड़ जाय मगर झुकेगा नहीं।

४

वह दिन भी याद रहेगा जब अयोध्या में हमारे जादू-सा करनेवाले कवि शंकर को राष्ट्र की ओर से बधाई देने के लिए शानदार जलसा हुआ। हमारा गौरव, हमारा जोशीला शंकर योरोप और अमरीका पर अपने काव्य का जादू करके वापस आया था। अपने कमालों पर घमण्ड करनेवाले योरोप ने उसकी पूजा की थी। उसकी भावनाओं ने ब्राउनिंग और शेली के प्रेमियों को भी अपनी वफ़ा का पाबन्द न रहने दिया। उसकी जीवन-सुधा से योरोप के प्यासे जी उठे। सारे सभ्य संसार ने उसकी कल्पना की उड़ान के आगे सिर झुका दिये। उसने भारत को योरोप की निगाहों में अगर ज़्यादा नहीं तो यूनान और रोम के पहलू में बिठा दिया था।

जब तक वह योरोप में रहा, दैनिक अखबारों के पन्ने उसकी चर्चा से भरे रहते थे। युनिवर्सिटियों और विद्वानों की सभाओं ने उस पर उपाधियों की मूसलाधार वर्षा कर दी थी। सम्मान का वह पदक जो योरोपवालों का प्यारा सपना और ज़िन्दा आरज़ू है, वह पदक हमारे प्यारे ज़िन्दादिल शंकर के सीने पर शोभा दे रहा था और उसकी वापसी के बाद आज उन्हीं राष्ट्रीय भावनाओं के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के लिए हिन्दोस्तान के दिल और दिमाग़ अयोध्या में जमा थे।

इसी अयोध्या की गोद में श्री रामचन्द्र खेलते थे और यहीं उन्होंने वाल्मीकि की जादूभरी लेखनी की प्रशंसा की थी। उसी अयोध्या में हम अपने मीठे कवि शंकर पर अपनी मुहब्बत के फूल चढ़ाने आये थे।

इस राष्ट्रीय कर्तव्य में सरकारी हुक्काम भी बड़ी उदारतापूर्वक हमारे साथ सम्मिलित थे। शंकर ने शिमला और दार्जिलिंग के फरिश्तों को भी अयोध्या में खींच लिया था। अयोध्या को बहुत इन्तज़ार के बाद यह दिन देखना नसीब हुआ।

जिस वक्त शंकर ने उस विराट पण्डाल में पैर रखा, हमारे हृदय राष्ट्रीय गौरव और नशे से मतवाले हो गये। ऐसा महसूस होता था कि हम उस वक्त किसी अधिक पवित्र, अधिक प्रकाशवान दुनिया के बसनेवाले हैं। एक क्षण के लिए—अफसोस है कि सिर्फ एक क्षण के लिए—अपनी गिरावट और बर्बादी का खयाल हमारे दिलों से दूर हो गया। जय-जय की आवाज़ों ने हमें इस तरह मस्त कर दिया जैसे महुअर नाग को मस्त कर देता है।

एड्रेस पढ़ने का गौरव मुझको प्राप्त हुआ था। सारे पण्डाल में खामोशी छायी हुई थी। जिस वक्त मेरी ज़बान से यह शब्द निकले—ऐ राष्ट्र के नेता! ऐ हमारे आत्मिक गुरु! हम सच्ची मुहब्बत से तुम्हें बधाई देते हैं और सच्ची श्रद्धा से तुम्हारे पैरों पर सिर झुकाते हैं...यकायक मेरी निगाह उठी और मैंने एक हृष्ट-पुष्ट हैकल आदमी को ताल्लुकेदारों की कतार से उठकर बाहर जाते देखा। यह कुंअर सज्जन सिंह थे।

मुझे कुंअर साहब की यह बेमौक़ा हरकत, जिसे अशिष्टता समझने में कोई बाधा नहीं है, बुरी मालूम हुई। हज़ारों आँखें उनकी तरफ हैरत से उठीं।

जलसे के खत्म होते ही मैंने पहला काम जो किया वह कुंअर साहब से इस चीज़ के बारे में जवाब तलब करना था।

मैंने पूछा—क्यों साहब, आपके पास इस बेमौका हरकत का क्या जवाब है?

सज्जन सिंह ने गम्भीरता से जवाब दिया—आप सुनना चाहे तो जवाब दूँ।

"शौक से फरमाइये।"

"अच्छा तो सुनिये। मैं शंकर की कविता का प्रेमी हूँ, शंकर की इज़्ज़त करता हूँ, शंकर पर गर्व करता हूँ, शंकर को अपने और अपनी क़ौम के ऊपर एहसान करने-वाला समझता हूँ, मगर उसके साथ ही उन्हें अपना आध्यात्मिक गुरु मानने या उनके चरणों में सिर झुकाने के लिए तैयार नहीं हूँ।"

मैं आश्चर्य से उसका मुँह तकता रह गया। यह आदमी नहीं, घमण्ड का पुतला है। देखें यह सर कभी झुकता है या नहीं।

५

पूरनमासी का पूरा चाँद सरयू के सुनहरे फर्श पर नाचता था और लहरें खुशी से गले मिल-मिलकर गाती थीं। फागुन का महीना था, पेड़ों में कोंपलें निकली थीं और कोयल कूकने लगी थी।

मैं अपना दौरा खतम करके सदर लौटता था। रास्ते में कुंअर सज्जन सिंह से मिलने का चाव मुझे उनके घर तक ले गया, जहाँ अब मैं बड़ी बेतकल्लुफी से जाता-आता था।

मैं शाम के वक्त नदी की सैर को चला। वह प्राणदायिनी हवा, वह उड़ती हुई लहरें, वह गहरी निस्तब्धता—सारा दृश्य एक आकर्षक सुहाना सपना था।

चाँद के चमकते हुए गीत से जिस तरह लहरें झूम रही थीं, उसी तरह मीठी चिन्ताओं से दिल उमड़ा आता था।

मुझे ऊँचे कगार पर एक पेड़ के नीचे कुछ रोशनी दिखायी दी। मैं ऊपर चढ़ा। वहाँ बरगद की घनी छाया में एक धूनी जल रही थी। उसके सामने एक साधू पैर फैलाये बरगद की एक मोटी जटा के सहारे लेटे हुए थे। उनका चमकता हुआ चेहरा आग की चमक को लजाता था। नीले तालाब में कमल खिला हुआ था।

उनके पैरों के पास एक दूसरा आदमी बैठा हुआ था। उसकी पीठ मेरी तरफ थी। वह उस साधू के पैरों पर अपना सिर रखे हुए था, पैरों को चूमता था और आँखों से लगाता था। साधू अपने दोनों हाथ उसके सिर पर रखे हुए थे कि जैसे वासना धैर्य और संतोष के आँचल में आश्रय ढूंढ़ रही हो। भोला लड़का माँ-बाप की गोद में आ बैठा था।

एकाएक वह झुका हुआ सर उठा और मेरी निगाह उसके चेहरे पर पड़ी। मुझे सकता-सा हो गया। यह कुंअर सज्जन सिंह थे। वह सर जो झुकना न जानता था, इस वक्त ज़मीन चूम रहा था।

वह माथा जो एक ऊँचे मंसबदार के सामने न झुका, जो एक प्रतापी वैभवशाली महाराजा के सामने न झुका, जो एक बड़े देशप्रेमी कवि और दार्शनिक के सामने न झुका, इस वक्त एक साधू के क़दमों पर गिरा हुआ था। घमण्ड, वैराग्य के सामने सिर झुकाये खड़ा था।

मेरे दिल में इस दृश्य से भक्ति का एक आवेग पैदा हुआ। आँखों के सामने से एक परदा-सा हटा और कुंअर सज्जन सिंह का आत्मिक स्तर दिखायी दिया। मैं कुंअर साहब की तरफ चला। उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर अपने पास बिठाना चाहा लेकिन मैं उनके पैरों से लिपट गया और बोला—मेरे दोस्त, मैं आज तक तुम्हारी आत्मा के बड़प्पन से बिलकुल बेखबर था। आज तुमने मेरे हृदय पर उसको अंकित कर दिया कि वैभव और प्रताप, कमाल और शोहरत यह सब घटिया चीज़ें हैं, भौतिक चीजें हैं। वासनाओं में लिपटे हुए लोग इस योग्य नहीं कि हम उनके सामने भक्ति से सिर झुकायें, वैराग्य और परमात्मा से दिल लगाना ही वे महान् गुण हैं जिनकी ड्योढ़ी पर बड़े-बड़े वैभवशाली और प्रतापी लोगों के सिर भी झुक जाते हैं। यही वह ताक़त है जो वैभव और प्रताप को, घमण्ड की शराब के मतवालों को और जड़ाऊ मुकुट को अपने पैरों पर गिरा सकती है। ऐ तपस्या के एकान्त में बैठने-

वाली आत्माओ ! तुम धन्य हो कि घमण्ड के पुतले भी तुम्हारे पैरों की धूल को माथे पर चढ़ाते हैं।

कुंअर सज्जन सिंह ने मुझे छाती से लगाकर कहा—मिस्टर वागले, आज आपने मुझे सच्चे गर्व का रूप दिखा दिया और मैं कह सकता हूँ कि सच्चा गर्व सच्ची प्रार्थना से कम नहीं। विश्वास मानिये मुझे इस वक्त ऐसा मालूम होता है कि गर्व में भी आत्मिकता को पाया जा सकता है। आज मेरे सिर में गर्व का जो नशा है, वह कभी नहीं था।

—ज़माना, अगस्त १९१६

विजय

शहज़ादा मसरूर की शादी मलका मख़मूर से हुई और दोनों आराम से ज़िन्दगी बसर करने लगे। मसरूर ढोर चराता, खेत जोतता, मख़मूर खाना पकाती और चरखा चलाती। दोनों तालाब के किनारे बैठे हुए मछलियों का तैरना देखते; लहरों से खेलते, बाग़ीचे में जाकर चिड़ियों के चहचहे सुनते और फूलों के हार बनाते। न कोई फ़िक्र थी, न कोई चिन्ता।

लेकिन बहुत दिन न गुज़रने पाये थे कि उनके जीवन में एक परिवर्तन आया। दरबार के सदस्यों में बुलहवस खाँ नाम का एक फ़सादी आदमी था। शाह मसरूर ने उसे नज़रबन्द कर रक्खा था। वह धीरे-धीरे मलका मख़मूर के मिज़ाज में इतना दाख़िल हो गया कि मलका उसके मशविरे के बग़ैर कोई काम न करती। उसने मलका के लिए एक हवाई जहाज़ बनाया जो महज़ इशारे से चलता था। एक सेकेण्ड में हज़ारों मील रोज़ जाता और देखते-देखते ऊपर की दुनिया की खबर लाता। मलका उस जहाज़ पर बैठकर योरोप और अमरीका की सैर करती। बुलहवस उससे कहता, साम्राज्य को फैलाना बादशाहों का पहला कर्तव्य है। इस लम्बी-चौड़ी दुनिया पर क़ब्ज़ा कीजिए, व्यापार के साधन बढ़ाइये, छिपी हुई दौलत निकालिये, फौजें खड़ी कीजिए, उनके लिए अस्त्र-शस्त्र जुटाइए। दुनिया हौसलामन्दों के लिए है। उन्हीं के कारनामे, उन्हीं की जीतें याद की जाती हैं। मलका उसकी बातों को खूब कान लगाकर सुनती। उसके दिल में हौसले का जोश उमड़ने लगता। यहाँ तक कि अपना सरल सन्तोषी जीवन उसे रूखा-फीका मालूम होने लगा।

मगर शाह मसरूर संतोष का पुतला था। उसकी ज़िन्दगी के वह मुबारक लमहे होते थे जब वह एकांत के कुंजमें चुपचाप बैठकर जीवन और उसके कारणों पर विचार करता और उसकी विराटता और आश्चर्यों को देखकर श्रद्धा के भाव से चीख उठता—आह ! मेरी हस्ती कितनी नाचीज़ है ! उसे मलका के मंसूबों और हौसलों से ज़रा भी दिलचस्पी न थी। नतीजा यह हुआ कि आपस के प्यार और सच्चाई की जगह संदेह पैदा हो गये। दरबारियों में गिरोह बनने लगे। जीवन का संतोष विदा हो गया। मसरूर को इन सब परेशानियों के लिए, जो उसकी सभ्यता के

रास्ते में बाधक होती थीं, धीरज न था। वह एक दिन उठा और सल्तनत मलका के सिपुर्द करके एक पहाड़ी इलाके में जा छिपा। सारा दरबार नयी उमंगों से मतवाला हो रहा था। किसी ने बादशाह को रोकने की कोशिश न की। महीनों, वर्षों हो गये, किसी को उनकी खबर न मिली।

२

मलका मख़मूर ने एक बड़ी फ़ौज खड़ी की और बुलहवस खाँ को चढ़ाइयों पर रवाना किया। उसने इलाके पर इलाके और मुल्क पर मुल्क जीतने शुरू किये। सोने-चाँदी और हीरे-जवाहरात के अम्बार हवाई जहाज़ों पर लदकर राजधानी को आने लगे।

लेकिन आश्चर्य की बात यह थी कि इन रोज़-ब-रोज़ बढ़ती हुई तरक्कियों से मुल्क के अन्दरूनी मामलों में उपद्रव खड़े होने लगे। वह सूबे जो अब तक हुक्म के ताबेदार थे, बग़ावत के झण्डे खड़े करने लगे। कर्ण सिंह बुन्देला एक फौज लेकर चढ़ आया। मगर अजब फौज थी, न कोई हरबे-हथियार, न तोपें, सिपाहियों के हाथों में बन्दूक और तीर-तुपुक के बजाय बरबत-तम्बूरे और सारंगियाँ, बेले, सितार, और ताऊस़ थे। तोपों की घनगरज सदाओं के बदले तबले और मृदंग की कुमक थी। बमगोलों की जगह जलतरंग आँर्गन और आर्केस्ट्रा था। मलका मख़मूर ने समझा, आन की आन में इस फौज को तितर-बितर करती हूँ। लेकिन ज्योंही उसकी फ़ौज कर्ण सिंह के मुकाबिले में रवाना हुई, लुभादने, आत्मा को शान्ति पहुँचानेवाले स्वरों की वह बाढ़ आयी, मीठे और सुहाने गानों की वह बौछार हुई कि मलका की सेना पत्थर की मूरतों की तरह आत्मविस्मृत होकर खड़ी रह गयी। एक क्षण में सिपाहियों की आँखें नशे में डूबने लगीं और वह तालियाँ बजा-बजाकर नाचने लगे, सर हिला-हिलाकर उछलने लगे, फिर सबके सब बेजान लाश की तरह गिर पड़े। और सिर्फ सिपाही नहीं, राजधानी में भी जिसके कानों में यह आवाज़ें गयीं वह बेहोश हो गया। सारे शहर में कोई ज़िन्दा आदमी नज़र न आता था। ऐसा मालूम होता था कि पत्थर की मूरतों का तिलस्म है। मलका अपने जहाज़ पर बैठी यह करिश्मा देख रही थी। उसने जहाज़ नीचे उतारा कि देखूँ क्या माजरा है? पर उन आवाज़ों के कान में पहुँचते ही उसकी भी वही दशा हो गयी। वह हवाई जहाज़ पर नाचने लगी और बेहोश होकर गिर पड़ी। जब कर्ण सिंह शाही महल के करीब जा पहुँचा और गाने बन्द हो गये तो मलका की आँखें खुलीं जैसे किसी का नशा टूट जाये।

उसने कहा—मैं वही गाने सुनूँगी, वही राग, वही अलाप, वह लुभानेवाले गीत। हाय वह आवाज़ें कहाँ गयीं। कुछ परवाह नहीं, मेरा राज जाये, पाट जाये, मैं वही राग सुनूँगी।

सिपाहियों का नशा भी टूटा। उन्होंने उसके स्वर में स्वर मिलाकर कहा—हम वही गीत सुनेंगे, वही प्यारे-प्यारे मोहक राग। बला से हम गिरफ्तार होंगे, गुलामी की बेड़ियाँ पहनेंगे, आज़ादी से हाथ धोयेंगे पर वही राग, वही तराने, वही तानें, वही धुनें।

३

सूबेदार लोचनदास को जब कर्ण सिंह की विजय का हाल मालूम हुआ तो उसने भी विद्रोह करने की ठानी। अपनी फौज लेकर राजधानी पर चढ़ दौड़ा। मलका ने अबकी जान-तोड़ मुकाबला करने की ठानी। सिपाहियों को खूब ललकारा और उन्हें लोचनदास के मुकाबले में खड़ा किया मगर वाह री हमलावर फौज! न कहीं सवार, न कहीं प्यादे, न तोप, न बन्दूक, न हरबे, न हथियार, सिपाहियों की जगह सुन्दर नर्तकियों के ग़ोल थे और थियेटर के ऐक्टर। सवारों की जगह भाँड़ों और बहुरूपियों के ग़ोल। मोर्चों की जगह तीतरों और बटेरों के जोड़ छूटे हुए थे तो बन्दूक की जगह सर्कस और बाइसकोप के खेमे पड़े थे। कहीं हीरे-जवाहरात अपनी आब-ताब दिखा रहे थे, कहीं तरह-तरह के चरिन्दों-परिन्दों की नुमाइश खुली हुई थी। मैदान के एक हिस्से में धरती की अजीब-अजीब चीजें, झरने और बर्फिस्तानी चोटियाँ और बर्फ के पहाड़, पेरिस का बाज़ार, लन्दन का एक्स्चेंज या सटन की मंडियाँ, अफ्रीका के जंगल, सहारा के रेगिस्तान, जापान की गुलकारियाँ, चीन के दरियाई शहर, दक्षिण अमरीका के आदमखोर, क़ाफ़ की परियाँ, लैपलैण्ड के सुमूरपोश इन्सान और ऐसे सैकड़ों विचित्र और आकर्षक दृश्य चलते-फिरते दिखायी पड़ते थे। मलका की फौज यह नज़ारा देखते ही बेसुध होकर उसकी तरफ दौड़ी। किसी को सर-पैर का खयाल न रहा। लोगों ने बन्दूकें फेंक दी, तलवारें और किरचें उतार फेंकी और बेतहाशा इन दृश्यों के चारों तरफ जमा हो गये। कोई नाचनेवालियों की मीठी अदाओं और नाज़ुक चलन पर दिल दे बैठा, कोई थियेटर के तमाशों पर रीझा। कुछ लोग तीतरों और बटेरों के जोड़ देखने लगे और सब के सब चित्र-लिखित से मन्त्रमुग्ध खड़े रह गये। मलका अपने हवाई जहाज़ पर बैठी कभी थियेटर की तरफ जाती कभी सर्कस की तरफ दौड़ती, यहाँ तक कि वह भी बेहोश हो गयी।

लोचनदास जब विजय करता हुआ शाही महल में दाखिल हो गया तो मलका की आँखें खुलीं। उसने कहा—हाय, वह तमाशे कहाँ गये, वह सुन्दर-सुन्दर दृश्य, वह लुभावने दृश्य कहाँ ग़ायब हो गये! मेरा राज जाये, पाट जाये लेकिन मैं यह सैर ज़रूर देखूँगी। मुझे आज मालूम हुआ है कि ज़िन्दगी में क्या-क्या मज़े हैं!

सिपाही भी जागे। उन्होंने एक-स्वर से कहा—हम वही सैर और तमाशे देखेंगे, हमें लड़ाई-भिड़ाई से कुछ मतलब नहीं, हमको आज़ादी की परवाह नहीं, हम गुलाम होकर रहेंगे, पैरों में बेड़ियाँ पहनेंगे पर इन दिलफरेबियों के बगैर नहीं रह सकेंगे।

४

मलका मख़मूर को अपनी सल्तनत का यह हाल देखकर बहुत दुख होता। वह सोचती, क्या इसी तरह सारा देश मेरे हाथ से निकल जायगा? अगर शाह मसरूर ने यों किनारा न कर लिया होता तो सल्तनत की यह हालत कभी न होती। क्या उन्हें यह कैफियतें मालूम न होंगी। यहाँ से दम-दम की खबरें उनके पास जाती हैं, मगर ज़रा भी जुम्बिश नहीं करते। कितने बेरहम हैं। खैर जो कुछ सर पर आयेगी सह लूँगी पर उनकी मिन्नत न करूँगी।

लेकिन जब वह उन आकर्षक गानों को सुनती और दृश्यों को देखती तो यह दुखदायी विचार भूल जाते, उसे अपनी ज़िन्दगी बहुत आनन्द की मालूम होती।

बुलहवस खाँ ने लिखा—मैं दुश्मनों से घिर गया हूँ, नफ़रत अली और कीन ख़ाँ और ज्वाला सिंह ने चारों तरफ से हमला शुरू कर दिया है। जब तक और कुमक न आये, मैं मजबूर हूँ। पर मलका की फौज यह सैर और गाने छोड़कर जाने पर राज़ी न होती थी।

इतने में दो सूबेदारों ने फिर बग़ावत की। मिर्ज़ा शमीम और रसराज सिंह दोनों एक होकर राजधानी पर चढ़े। मलका की फौज में अब न लज्जा थी न वीरता, गाने-बजाने और सैर-तमाशे ने उन्हें आरामतलब बना दिया था। बड़ी-बड़ी मुश्किलों से सज-सजाकर मैदान में निकले। दुश्मन की फौज इन्तज़ार करती खड़ी थी लेकिन न किसी के पास तलवार थी न बन्दूक, सिपाहियों के हाथों में फूलों के खुशनुमा गुलदस्ते थे, किसी के हाथ में इतर की शीशियाँ, किसी के हाथ में गुलाब के फ़ौवारे, कहीं लवेण्डर की बोतलें, कहीं मुश्क वगैरह की बहार—सारा मैदान अत्तार की दूकान बना हुआ था। दूसरी तरफ रसराज की सेना थी। उन सिपाहियों के हाथों में सोने के तश्त थे, ज़रबफ्त के खानपोशों से ढके हुए, किसी में बर्फी और

मलाई थी, किसी में कोरमे और कबाब, किसी में खुबानी और अंगूर, कहीं कश्मीर की नेमतें सजी हुई थीं, कहीं इटली की चटनियों की बहार थी और कहीं पुर्तगाल और फ्रांस की शराबें शीशियों में महक रही थीं।

मलका की फौज यह संजीवनी सुगन्ध सूँघते ही मतवाली हो गयी। लोगों ने हथियार फेंक दिये और इन स्वादिष्ट पदार्थों की ओर दौड़े, कोई हलुए पर गिरा, कोई मलाई पर टूटा, किसी ने कोरमे और कबाब पर हाथ बढ़ाये, कोई खुबानी और अंगूर चखने लगा, कोई कश्मीरी मुरब्बों पर लपका, सारी फौज भिखमंगों की तरह हाथ फैलाये यह नेमतें माँगती थी और बेहद चाव से खाती थी। एक-एक कौर के लिए, एक चमचा फीरीनी के लिए, शराब के एक प्याले के लिए खुशामदें करते थे, नाकें रगड़ते थे, सिजदे करते थे। यहाँ तक कि सारी फौज पर एक नशा छा गया, बेदम होकर गिर पड़ी। मलका भी इटली के मुरब्बों के सामने दामन फैला-फैलाकर मिन्नतें करती थी और कहती थी कि सिर्फ एक लुकमा और एक प्याला दो और मेरा राज लो, पाट लो, मेरा सब कुछ ले लो लेकिन मुझे जी भरकर खा-पी लेने दो। यहाँ तक कि वह भी बेहोश होकर गिर पड़ी।

५

मलका की हालत अब बेहद दर्दनाक थी। उसकी सल्तनत का एक छोटा-सा हिस्सा दुश्मनों के हाथ से बचा हुआ था। उसे एक दम के लिए भी इस गुलामी से नजात न मिलती। कभी कर्ण सिंह के दरबार में हाज़िर होती, कभी मिर्जा शमीम की खुशामद करती, इसके बगैर उसे चैन न आता। हाँ, जब कभी इस मुसाहिबी और ज़िल्लत से उसकी तबीयत थक जाती तो वह अकेले बैठकर घंटों रोती और चाहती कि जाकर शाह मसरूर को मना लाऊँ। उसे यकीन था कि उनके आते ही बागी काफूर हो जायेंगे पर एक ही क्षण में उसकी तबीयत बदल जाती। उसे अब किसी हालत पर चैन न आता था।

अभी तक बुलहवस खाँ की स्वामिभक्ति में फर्क न आया था। लेकिन जब उसने सल्तनत की यह कमज़ोरी देखी तो वह भी बग़ावत कर बैठा। उसकी आज़माई हुई फौज के मुकाबले में मलका की फौज क्या ठहरती, पहले ही हमले में कदम उखड़ गये। मलका खुद गिरफ्तार हो गयी। बुलहवस खाँ ने उसे एक तिलस्माती कैद-खाने में बन्द कर दिया। सेवक से स्वामी बन बैठा।

यह कैदखाना इतना लम्बा-चौड़ा था कि कोई कैदी कितना ही भागने की कोशिश

करे, उसकी चहारदीवारी से बाहर नहीं निकल सकता था। वहाँ सन्तरी और पहरेदार न थे लेकिन वहाँ की हवा में एक खिंचाव था। मलका के पैरों में न बेड़ियाँ थीं न हाथों में हथकड़ियाँ लेकिन शरीर का अंग-प्रत्यंग तारों से बँधा हुआ था। वह अपनी इच्छा से हिल भी न सकती थी। वह अब दिन के दिन बैठी हुई ज़मीन पर मिट्टी के घरौंदे बनाया करती और समझती यह महल है। तरह-तरह के स्वांग भरती और समझती दुनिया मुझे देखकर लट्टू हुई जाती है। पत्थर के टुकड़ों से अपना शरीर गूँध लेती और समझती कि अब हूरें भी मेरे सामने मात हैं। वह दरख्तों से पूछती, मैं कितनी ख़ूबसूरत हूँ? शाखों पर बैठी हुई चिड़ियों से पूछती, हीरे-जवाहरात का ऐसा गुलूबन्द तुमने देखा है? मिट्टी के ठीकरों का अम्बार लगाती और आसमान से पूछती, इतनी दौलत तुमने देखी है?

मालूम नहीं, इस हालत में कितने दिन गुज़र गये। मिर्ज़ा शमीम, लोचनदास वगैरह हरदम उसे घेरे रहते थे। शायद वह उससे डरते थे। ऐसा न हो, यह शाह मसरूर को कोई संदेशा भेज दे। क़ैद में भी उस पर भरोसा न था। यहाँ तक कि मलका की तबीयत इस क़ैद से बेज़ार हो गयी, वह निकल भागने की तदबीरें सोचने लगी।

इसी हालत में एक दिन मलका बैठी सोच रही थी, मैं क्या थी क्या हो गयी? जो मेरे इशारों के गुलाम थे वह अब मेरे मालिक हैं, मुझे जिस कल चाहते हैं बिठाते हैं जहाँ चाहते हैं घुमाते हैं। अफसोस मैंने शाह मसरूर का कहना न माना, यह उसी की सज़ा है। काश एक बार मुझे किसी तरह इस क़ैद से छुटकारा मिल जाता तो मैं चलकर उनके पैरों पर सिर रख देती और कहती, लौंडी की खता माफ कीजिए। मैं खून के आँसू रोती और उन्हें मना लाती और फिर कभी उनके हुक्म से इनकार न करती। मैंने इस नमकहराम बुलहवस ख़ाँ की बातों में पड़कर उन्हें निर्वासित कर दिया, मेरी अक़्ल कहाँ चली गयी थी।

यह सोचते-सोचते मलका रोने लगी कि यकायक उसने देखा, सामने एक खिले हुए मुखड़ेवाला, गम्भीर पुरुष सादा कपड़े पहने खड़ा है। मलका ने आश्चर्यचकित होकर पूछा—आप कौन हैं? यहाँ मैंने आपको कभी नहीं देखा।

पुरुष—हाँ, इस कैदखाने में मैं बहुत कम आता हूँ। मेरा काम है कि जब कैदियों की तबीयत यहाँ से बेज़ार हो तो उन्हें यहाँ से निकलने में मदद दूँ।

मलका—आपका नाम?

पुरुष—संतोख सिंह।

मलका—आप मुझे इस कैद से छुटकारा दिला सकते हैं?

संतोख—हाँ, मेरा तो काम ही यह है, लेकिन मेरी हिदायतों पर चलना पड़ेगा।

मलका—मैं आपके हुक्म से जौ भर भी इधर-उधर न करूँगी। खुदा के लिए मुझे यहाँ से जल्द से जल्द ले चलिए, मैं मरते दम तक आपकी शुक्रगुज़ार रहूँगी।

संतोख—आप कहाँ चलना चाहती हैं?

मलका—मैं शाह मसरूर के पास जाना चाहती हूँ। आपको मालूम है वह आजकल कहाँ हैं?

संतोख—हाँ, मालूम है, मैं उनका नौकर हूँ। उन्हीं की तरफ से मैं इस काम पर तैनात हूँ?

मलका—तो खुदा के वास्ते मुझे जल्द ले चलिए, मुझे अब यहाँ एक घड़ी रहना जी पर भारी हो रहा है।

संतोख—अच्छा तो यह रेशमी कपड़े और यह जवाहरात और सोने के ज़ेवर उतारकर फेंक दो। बुलहवस ने इन्हीं जंजीरों से तुम्हें जकड़ दिया है। मोटे से मोटा कपड़ा जो मिल सके पहन लो। इन मिट्टी के घरौंदों को गिरा दो। इतर और गुलाब की शीशियाँ, साबुन की बट्टियाँ, और यह पाउडर के डब्बे सब फेंक दो।

मलका ने शीशियाँ और पाउडर के टिन तड़ाक-तड़ाक पटक दिये, सोने के जेवरों को उतारकर फेंक दिया कि इतने में बुलहवस खाँ धाड़ें मारकर रोता हुआ आकर खड़ा हुआ और हाथ बाँधकर कहने लगा—दोनों जहानों की मलका, मैं आपका नाचीज़ गुलाम हूँ, आप मुझसे नाराज़ हैं?

मलका ने बदला लेने के अपने जोश में मिट्टी के घरौंदों को पैरों से ठुकरा दिया। ठीकरों के अम्बार को ठोकरें मारकर बिखेर दिया। बुलहवस के शरीर का एक-एक अंग कट-कटकर गिरने लगा। वह बेदम होकर ज़मीन पर गिर पड़ा और दम के दम में जहन्नुम रसीद हुआ। संतोख सिंह ने मलका से कहा—देखा तुमने? इस दुश्मन को तुम कितना डरावना समझती थीं, आन की आन में खाक में मिल गया।

मलका—काश मुझे यह हिकमत मालूम होती तो मैं कभी की आजाद हो जाती। लेकिन अभी और भी तो कितने ही दुश्मन हैं।

संतोख—उनको मारना इससे भी आसान है। चलो कर्णसिंह के पास, ज्यों ही

वह अपना सुर अलापने लगे और मीठी-मीठी बातें करने लगे, कानों पर हाथ रख लो, देखो, अदृश्य के पर्दे से फिर क्या चीज़ सामने आती है।

मलका कर्ण सिंह के दरबार में पहुँची। उसे देखते ही चारों तरफ से ध्रुपद और तिल्लाने के वार होने लगे। पियानो बजने लगे। मलका ने दोनों कान बन्द कर लिये। कर्ण सिंह के दरबार में आग का शोला उठने लगा। सारे दरबारी जलने लगे। कर्ण सिंह दौड़ा हुआ आया और बड़े विनयपूर्वक मलका के पैरों पर गिरकर बोला—हुजूर, अपने इस हमेशा के गुलाम पर रहम करें। कानों पर से हाथ हटा लें, वर्ना इस ग़रीब की जान पर बन जायगी। अब कभी हुजूर की शान में यह गुस्ताख़ी न होगी।

मलका ने कहा—अच्छा, जा तेरी जाँ-बख्शी की। अब कभी बग़ावत न करना वर्ना जान से हाथ धोयेगा।

कर्ण सिंह ने संतोख सिंह की तरफ प्रलय की आंखों से देखकर सिर्फ इतना कहा—'ज़ालिम, तुझे मौत भी नहीं आयी' और बेतहाशा गिरता-पड़ता भागा। संतोख सिंह ने मलका से कहा—देखा तुमने, इनको मारना कितना आसान था? अब चलो लोचनदास के पास। ज्योंही वह अपने करिश्मे दिखाने लगे, दोनों आँखें बन्द कर लेना।

मलका लोचनदास के दरबार में पहुँची। उसे देखते ही लोचन ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना शुरू किया। ड्रामे होने लगे, नर्तकों ने थिरकना शुरू किया। लालो-ज़मुर्रद की कश्तियाँ सामने आने लगीं लेकिन मलका ने दोनों आँखें बन्द कर लीं।

आन की आन में वह ड्रामे और सर्कस और नाचनेवालों के गिरोह खाक में मिल गये। लोचनदास के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं, निराशापूर्ण धैर्य के साथ चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगा—यह तमाशा देखो, यह पेरिस के क़हवेखाने, यह मिस एलिन का नाच है। देखो, अंग्रेज़ रईस उस पर कितनी उदारता से सोने और हीरे-जवाहरात निछावर कर रहे हैं। जिसने यह सैर-तमाशे न देखे उसकी ज़िन्दगी मौत से बदतर। लेकिन मलका ने आँखें न खोलीं।

तब लोचनदास बदहवास और घबराया हुआ, बेद के दरख्त की तरह काँपता हुआ मलका के सामने आ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर बोला—हुजूर, आँखें खोलें। अपने इस गुलाम पर रहम करें, नहीं तो मेरी जान पर बन जायगी। गुलाम की गुस्ताखियाँ माफ़ फरमायें। अब यह बेअदबी न होगी।

मलका ने कहा—अच्छा जा, तेरी जाँबख्शी की लेकिन खबरदार अब सर न उठाना नहीं तो जहन्नुम रसीद कर दूँगी।

लोचनदास यह सुनते ही गिरता-पड़ता जान लेकर भागा। पीछे फिरकर भी न देखा। संतोख सिंह ने मलका से कहा—अब चलो मिर्ज़ा शमीम और रसराज के पास। वहाँ एक हाथ से नाक बन्द कर लेना और दूसरे हाथ से खानों के तश्त को ज़मीन पर गिरा देना।

मलका रसराज और शमीम के दरबार में पहुँची। उन्होंने जो संतोख को मलका के साथ देखा तो होश उड़ गये। मिर्ज़ा शमीम ने कस्तूरी और केसर की लपटें उड़ाना शुरू कीं। रसराज स्वादिष्ट खानों के तश्त सजा-सजाकर मलका के सामने लाने लगा, और उनकी तारीफ करने लगा—यह पुर्तगाल की तीन आँच दी हुई शराब है, इसे पिये तो बुड्ढा जवान हो जाय। यह फ्रांस का शैम्पेन है, इसे पिये तो मुर्दा जिन्दा हो जाय। यह मथुरा के पेड़े हैं, इन्हें खाये तो स्वर्ग की नेमतों को भूल जाय।

लेकिन मलका ने एक हाथ से नाक बन्द कर ली और दूसरे हाथ से उन तश्तों को ज़मीन पर गिरा दिया और बोतलों को ठोकरें मार-मारकर चूर कर दिया। ज्यों-ज्यों उसकी ठोकरें पड़ती थीं, दरबार के दरबारी चीख-चीखकर भागते थे। आखिर मिर्ज़ा शमीम और रसराज दोनों परीशान और बेहाल, सर से खून जारी, अंग-अंग टूटा हुआ, आकर मलका के सामने खड़े हो गये और गिड़गिड़ाकर बोले—हुज़ूर, गुलामों पर रहम करें। हुज़ूर की शान में जो गुस्ताखियाँ हुई हैं उन्हें मुआफ फरमायें, अब फिर ऐसी बेअदबी न होगी।

मलका ने कहा—रसराज को मैं जान से मारना चाहती हूँ। उसके कारण मुझे ज़लील होना पड़ा।

लेकिन संतोख सिंह ने मना किया—नहीं, इसे जान से न मारिये। इस तरह का सेवक मिलना कठिन है। यह आपके सब सूबेदार अपने काम में यकता हैं। सिर्फ इन्हें काबू में रखने की ज़रूरत है।

मलका ने कहा—अच्छा जाओ, तुम दोनों की भी जाँ-बख्शी की लेकिन खबरदार अब कभी उपद्रव मत खड़ा करना वर्ना तुम जानोगे।

दोनों गिरते-पड़ते भागे और दम के दम में नज़रों से ओझल हो गये।

मलका की रिआया और फौज ने भेंटें दीं, घर-घर शादियाने बजने लगे। चारों बाग़ी सूबेदार शहरपनाह के पास छापा मारने की घात में बैठ गये लेकिन संतोख-

सिंह जब रिआया और फौज को मसजिद में शुक्रिए की नमाज़ अदा करने के लिए ले गया तो बागियों को कोई उम्मीद न रही, वह निराश होकर चले गये।

जब इन कामों से फुर्सत हुई तो मलका ने संतोख सिंह से कहा——मेरे पास अलफ़ाज़ नहीं हैं, और न अलफ़ाज़ में इतनी ताक़त है कि मैं आपके एहसानों का शुक्रिया अदा कर सकूँ। आपने मुझे गुलामी से छुटकारा दिया, मैं आखिरी दम तक आपका जस गाऊँगी। अब शाह मसरूर के पास मुझे ले चलिए, मैं उनकी सेवा करके अपनी उम्र बसर करना चाहती हूँ। उनसे मुँह मोड़कर मैंने बहुत ज़िल्लत और मुसीबत झेली। अब कभी उनके कदमों से जुदा न हूँगी।

संतोख सिंह——हाँ, हाँ, चलिए, मैं तैयार हूँ, लेकिन मंजिल सख्त है, घबराना मत।

मलका ने हवाई जहाज मँगवाया। पर संतोख सिंह ने कहा——वहाँ हवाई जहाज़ का गुज़र नहीं है, पैदल चलना पड़ेगा। मलका ने मजबूर होकर हवाई जहाज़ वापस कर दिया और अकेले अपने स्वामी को मनाने चली।

वह दिन भर भूखी-प्यासी पैदल चलती रही। आँखों के सामने अँधेरा छाने लगा, प्यास से गले में काँटे पड़ने लगे। काँटों से पैर छलनी हो गये। उसने अपने मार्ग-दर्शक से पूछा——अभी कितनी दूर है?

संतोख——अभी बहुत दूर है। चुपचाप चली आओ। यहाँ बातें करने से मंजिल खोटी हो जाती है।

रात हुई, आसमान पर बादल छा गये। सामने एक नदी पड़ी, किश्ती का पता न था। मलका ने पूछा——किश्ती कहाँ है?

संतोख ने कहा——नदी में चलना पड़ेगा, यहाँ किश्ती कहाँ है।

मलका को डर मालूम हुआ लेकिन वह जान पर खेलकर दरिया में चल पड़ी। मालूम हुआ कि सिर्फ आँख का धोखा था। वह रेतीली ज़मीन थी। सारी रात संतोख सिंह ने एक क्षण के लिए भी दम न लिया। जब भोर का तारा निकल आया तो मलका ने रोकर कहा——अभी कितनी दूर है, मैं तो मरी जाती हूँ।

संतोख सिंह ने जवाब दिया——चुपचाप चली आओ।

मलका ने हिम्मत करके फिर कदम बढ़ाये। उसने पक्का इरादा कर लिया था कि रास्ते में मर ही क्यों न जाऊँ पर नाकाम न लौटूँगी। उस कैद से बचने के लिए वह कड़ी से कड़ी मुसीबतें झेलने को तैयार थी।

सूरज निकला, सामने एक पहाड़ नज़र आया जिसकी चोटियाँ आसमान में

घुसी हुई थीं। संतोख सिंह ने पूछा—इसी पहाड़ी की सबसे ऊँची चोटी पर शाह मसरूर मिलेंगे, चढ़ सकोगी ?

मलका ने धीरज से कहा—हाँ, चढ़ने की कोशिश करूँगी।

बादशाह से भेंट होने की उम्मीद ने उसके बेजान पैरों में पर लगा दिये। वह तेज़ी से कदम उठाकर पहाड़ पर चढ़ने लगी। पहाड़ के बीचों-बीच आते-आते वह थककर बैठ गयी, उसे ग़श आ गया। मालूम हुआ कि दम निकल रहा है। उसने निराश आँखों से अपने मित्र को देखा। संतोख सिंह ने कहा—एक दफा और हिम्मत करो, दिल में खुदा की याद करो। मलका ने खुदा की याद की। उसकी आँखें खुल गयीं। वह फुर्ती से उठी और एक ही हल्ले में चोटी पर जा पहुँची। उसने एक ठंडी साँस ली। वहाँ शुद्ध हवा में साँस लेते ही मलका को शरीर में एक नयी ज़िन्दगी का अनुभव हुआ। उसका चेहरा दमकने लगा। ऐसा मालूम होने लगा कि मैं चाहूँ तो हवा में उड़ सकती हूँ। उसने खुश होकर संतोख सिंह की तरफ देखा और आश्चर्य के सागर में डूब गयी। शरीर वही था, पर चेहरा शाह मसरूर का था। मलका ने फिर उसकी तरफ अचरज की आँखों से देखा। संतोख सिंह के शरीर पर से एक बादल का पर्दा हट गया और मलका को वहाँ शाह मसरूर खड़े नज़र आये—वही हलका पीला कुर्ता, वही गेरुए रंग की तहमद। उनके मुखमंडल से तेज की कांति बरस रही थी, माथा तारों की तरह चमक रहा था। मलका उनके पैरों पर गिर पड़ी। शाह मसरूर ने उसे सीने से लगा लिया।

—ज़माना, अप्रैल १९१८

वफ़ा का खंजर

जयगढ़ और विजयगढ़ दो बहुत ही हरे-भरे, सुसंस्कृत, दूर-दूर तक फैले हुए, मज़बूत राज्य थे। दोनों ही में विद्या और कला ख़ूब उन्नत थी। दोनों का धर्म एक, रहन-सहन एक, रस्म-रिवाज एक, दर्शन एक, तरक्क़ी का उसूल एक, जीवन का मानदण्ड एक, और ज़बान में भी नाममात्र का ही अन्तर था। जयगढ़ के कवियों की कविताओं पर विजयगढ़ वाले सर धुनते और विजयगढ़ी दार्शनिकों के विचार जयगढ़ के लिए धर्म की तरह थे। जयगढ़ी सुन्दरियों से विजयगढ़ के घर-बार रौशन होते थे और विजयगढ़ की देवियां जयगढ़ में पुजती थीं। तब भी दोनों राज्यों में हमेशा ठनी रहती थी। ठनी ही नहीं रहती थी बल्कि आपसी फूट और ईर्ष्या-द्वेष का बाज़ार बुरी तरह गर्म रहता और दोनों ही हमेशा एक-दूसरे के खिलाफ़ ख़ंजर उठाये रहते थे। जयगढ़ में अगर कोई देश का सुधार किया जाता तो विजयगढ़ में शोर मच जाता कि हमारी ज़िन्दगी ख़तरे में है। इसी तरह विजयगढ़ में कोई व्यापारिक उन्नति दिखायी देती तो जयगढ़ में शोर मच जाता था। जयगढ़ अगर रेलवे की कोई नई शाख़ निकालता तो विजयगढ़ उसे अपने लिए काला सांप समझता और विजयगढ़ में कोई नया जहाज़ तैयार होता तो जयगढ़ को वह ख़ून पीनेवाला घड़ियाल नज़र आता था। अगर यह बदगुमानियां अनपढ़ों या साधारण लोगों में पैदा होतीं तो एक बात थी, मज़े की बात यह थी कि यह राग-द्वेष, विद्या और जागृति, वैभव और प्रताप की धरती में पैदा होता था। अशिक्षा और जड़ता की ज़मीन उनके लिए ठीक न थी। ख़ास सोच-विचार और नियम-व्यवस्था के उपजाऊ क्षेत्र में तो इस बीज का बढ़ना कल्पना की शक्ति को भी मात कर देता था। नन्हाँ-सा बीज पलक मारते भर में ऊंचा-पूरा दरख़्त हो जाता। कूचे और बाज़ारों में रोने-पीटने की सदाएं गूँजने लगतीं, देश की सभाओं में एक भूचाल-सा आ जाता, अख़बारों के दिल जलानेवाले शब्द राज्य में हलचल मचा देते, कहीं से आवाज़ आ जाती—जयगढ़, प्यारे जयगढ़, पवित्र जयगढ़ के लिए यह कठिन परीक्षा का अवसर है। दुश्मन ने जो शिक्षा की व्यवस्था तैयार की है, वह हमारे लिए मृत्यु का सन्देश है। अब ज़रूरत और बहुत सख़्त ज़रूरत है कि हम हिम्मत बांधें और साबित कर दें कि जयगढ़,

अमर जयगढ़ इन हमलों से अपनी प्राण-रक्षा कर सकता है। नहीं, उनका मुँह-तोड़ जवाब दे सकता है। अगर हम इस वक्त न जागे तो जयगढ़, प्यारा जयगढ़ हस्ती के परदे से हमेशा के लिए मिट जायगा और इतिहास भी उसे भुला देगा।

दूसरी तरफ़ से आवाज़ आती—विजयगढ़ के बेख़बर सोनेवालो, हमारे मेहरबान पड़ोसियों ने अपने अख़बारों की ज़बान बन्द करने के लिए जो नये क़ायदे लागू किये हैं, उन पर नाराज़गी का इज़हार करना हमारा फ़र्ज़ है। उनका मंशा इसके सिवा और कुछ नहीं है कि वहां के मुआमलों से हमको बेख़बर रक्खा जाय और इस अंधेरे के परदे में हमारे ऊपर धावे किये जायं, हमारे गलों पर फेरने के लिए नये-नये हथियार तैयार किये जायं, और आख़िरकार हमारा नाम-निशान मिटा दिया जाय। लेकिन हम अपने दोस्तों को जता देना अपना फ़र्ज़ समझते हैं कि अगर उन्हें शरारत के हथियारों की ईजाद में कमाल है तो हमें भी उनकी काट करने में कमाल है। अगर शैतान उनका मददगार है तो हमको भी ईश्वर की सहायता प्राप्त है और अगर अब तक हमारे दोस्तों को मालूम नहीं है तो अब होना चाहिए कि ईश्वर की सहायता हमेशा शैतान को दबा देती है।

२

जयगढ़ बाकमाल कलावन्तों का अखाड़ा था। शीरीं बाई इस अखाड़े की सब्ज़ परी थी, उसकी कला की दूर-दूर ख्याति थी। वह संगीत की रानी थी जिसकी ड्योढ़ी पर बड़े-बड़े नामवर आकर सर झुकाते थे। चारों तरफ विजय का डंका बजाकर उसने विजयगढ़ की ओर प्रस्थान किया, जिससे अब तक उसे अपनी प्रशंसा का कर न मिला था। उसके आते ही विजयगढ़ में एक इंक़लाब-सा हो गया। राग-द्वेष और अनुचित गर्व हवा से उड़नेवाली सूखी पत्तियों की तरह तितर-बितर हो गये। सौन्दर्य और राग-रंग के बाज़ार में धूल उड़ने लगी, थियेटरों और नृत्यशालाओं में वीरानी छा गयी। ऐसा मालूम होता था कि जैसे सारी सृष्टि पर जादू छा गया है। शाम होते ही विजयगढ़ के धनी-धोरी जवान-बूढ़े शीरीं बाई की मजलिस की तरफ़ दौड़ते थे। सारा देश शीरीं की भक्ति के नशे में डूब गया।

विजयगढ़ के सचेत क्षेत्रों में देशवासियों के इस पागलपन से एक बेचैनी की हालत पदा हुई, सिर्फ़ यही नहीं कि उनके देश की दौलत बर्बाद हो रही थी बल्कि उनका राष्ट्रीय अभिमान और तेज भी धूल में मिला जाता था। जयगढ़ की एक

मामूली नाचनेवाली, चाहे वह कितनी ही मीठी अदाओंवाली क्यों न हो, विजयगढ़ के मनोरंजन का केन्द्र बन जाय, यह बहुत बड़ा अन्याय था। आपस में मशविरे हुए और देश के पुरोहितों की तरफ़ से देश के मन्त्रियों की सेवा में इस खास उद्देश्य से एक शिष्टमण्डल उपस्थित हुआ। विजयगढ़ के आमोद-प्रमोद के कर्ताओं की ओर से भी आवेदनपत्र पेश होने लगे। अख़बारों ने राष्ट्रीय अपमान और दुर्भाग्य के तराने छेड़े। साधारण लोगों के हल्क़ों में सवालों की बौछार होने लगी, यहां तक कि वज़ीर मजबूर हो गये, शीरीं बाई के नाम शाही फ़रमान पहुंचा—चूंकि तुम्हारे रहने से देश में उपद्रव होने की आशंका है इसलिए तुम फ़ौरन विजयगढ़ से चली जाओ। मगर यह हुक्म अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों, आपसी इक़रारनामे और सभ्यता के नियमों के सरासर ख़िलाफ़ था। जयगढ़ के राजदूत ने, जो विजयगढ़ में नियुक्त था, इस आदेश पर आपत्ति की और शीरीं बाई ने आख़िरकार उसको मानने से इनकार किया क्योंकि इससे उसकी आज़ादी और ख़ुददारी और उसके देश के अधिकारों और अभिमान पर चोट लगती थी।

३

जयगढ़ के कूचे और बाज़ार ख़ामोश थे। सैर की जगहें ख़ाली। तफ़रीह और तमाशे बन्द। शाही महल के लम्बे-चौड़े सहन और जनता के हरे-भरे मैदानों में आदमियों की भीड़ थी, मगर उनकी ज़बानें बन्द थीं और आंखें लाल। चेहरे का भाव कठोर और क्षुब्ध, त्योरियां चढ़ी हुईं, माथे पर शिकन, उमड़ी हुई काली घटा थी, डरावनी, खामोश, और बाढ़ को अपने दामन में छिपाये हुए।

मगर आम लोगों में एक बड़ा हंगामा मचा हुआ था, कोई सुलह का हामी था, कोई लड़ाई की मांग करता था, कोई समझौते की सलाह देता था, कोई कहता था कि छानबीन करने के लिए कमीशन बैठाओ। मामला नाज़ुक था, मौका तंग, तो भी आपसी बहस-मुबाहसों, बदगुमानियों, और एक-दूसरे पर हमलों का बाज़ार गर्म था। आधी रात गुज़र गयी मगर कोई फ़ैसला न हो सका। पूंजी की संगठित शक्ति, उसकी पहुंच और रोब-दाब फ़ैसले की ज़बान बन्द किये हुए था।

तीन पहर रात जा चुकी थी, हवा नींद से मतवाली होकर अँगड़ाइयां ले रही थी और दरख़्तों की आंखें झपकी जाती थीं। आकाश के दीपक भी झलमलाने लगे थे, दरबारी कभी दीवारों की तरफ़ ताकते थे, कभी छत की तरफ़। लेकिन कोई उपाय न सूझता था।

अचानक बाहर से आवाज़ आयी—युद्ध ! युद्ध ! सारा शहर इस बुलन्द नारे से गूंज उठा। दीवारों ने अपनी ख़ामोश ज़बान से जवाब दिया—युद्ध ! युद्ध !

यह अदृष्ट से आनेवाली एक पुकार थी जिसने उस ठहराव में हरकत पैदा कर दी थी। अब ठहरी हुई चीज़ों में खलबली पैदा हो गयी। दरबारी गोया ग़फ़लत की नींद से चौंक पड़े। जैसे कोई भूली हुई बात याद आते ही उछल पड़े। युद्धमंत्री सैयद असकरी ने फ़रमाया—क्या अब भी लोगों को लड़ाई का एलान करने में हिचकिचाहट है ? आम लोगों की ज़बान खुदा का हुक्म है और उसकी पुकार अभी आपके कानों में आयी, उसको पूरा करना हमारा फ़र्ज़ है। हमने आज इस लम्बी बैठक में यह साबित किया है कि हम ज़बान के धनी हैं, पर ज़बान तलवार है, ढाल नहीं। हमें इस वक़्त ढाल की जरूरत है, आइए हम अपने सीनों को ढाल बना लें और साबित कर दें कि हममें अभी वह जौहर बाक़ी है, जिसने हमारे बुज़ुर्गों का नाम रौशन किया। क़ौमी ग़ैरत ज़िन्दगी की रूह है। वह नफ़े और नुकसान से ऊपर है। वह हुण्डी ओर रोकड़, वसूल और बाक़ी, तेज़ी और मन्दी की पाबन्दियों से आज़ाद है। सारी खानों की छिपी हुई दौलत, सारी दुनिया की मण्डियां, सारी दुनिया के उद्योग-धन्धे उसके पासंग हैं। उसे बचाइए वर्ना आपका यह सारा निज़ाम तितर-बितर हो जायगा, शीराज़ा बिखर जायगा, आप मिट जायेंगे। पैसेवालों से हमारा सवाल है—क्या अब भी आपको जंग के एलान में हिचकिचाहट है ?

बाहर से सैकड़ों आवाज़ें आयीं—जंग ! जंग !

एक सेठ साहब ने फ़रमाया—आप जंग के लिए तैयार हैं ?

असकरी—हमेशा से ज़्यादा।

ख़्वाजा साहब—आपको फ़तेह का यक़ीन है ?

असकरी—पूरा यक़ीन है।

दूर-पास से 'जंग जंग' की गरजती हुई आवाज़ों का ताँता बँध गया कि जैसे हिमालय के किसी अथाह खड्ड से हथौड़ों की झनकार आ रही हो। शहर कांप उठा, ज़मीन थर्राने लगी, हथियार बँटने लगे। दरबारियों ने एकमत से लड़ाई का फ़ैसला किया। ग़ैरत जो कुछ न कर सकती थी, वह अवाम के नारे ने कर दिखाया।

४

आज से तीस साल पहले एक ज़बर्दस्त इन्क़लाब ने जयगढ़ को हिला डाला था।

वर्षों तक आपसी लड़ाइयों का दौर रहा, हज़ारों खानदान मिट गये। सैकड़ों क़स्बे वीरान हो गये। बाप, बेटे के खून का प्यासा था। भाई, भाई की जान का गाहक। जब आख़िरकार आज़ादी की फ़तेह हुई तो उसने ताज के फ़िदाइयों को चुन-चुन कर मारा। मुल्क के क़ैदखाने देशभक्तों से भर उठे। उन्हीं जांबाज़ों में एक मिर्ज़ा मंसूर भी था। उसे कन्नौज के क़िले में क़ैद किया गया जिसके तीन तरफ़ ऊंची दीवारें थीं और एक तरफ़ गंगा नदी। मंसूर को सारे दिन हथौड़े चलाना पड़ते। सिर्फ़ शाम को आध घण्टे के लिए नमाज़ की छुट्टी मिलती थी। उस वक़्त मंसूर गंगा के किनारे आ बैठता और देशभाइयों की हालत पर रोता। वह सारी राष्ट्रीय और सामाजिक व्यवस्था जो उसके विचार में राष्ट्रीयता का आवश्यक अंग थी, इस हंगामे की बाढ़ में नष्ट हो रही थी। वह एक ठण्डी आह भरकर कहता—जयगढ़, अब तेरा खुदा ही रखवाला है, तूने खाक को अक्सीर बनाया और अक्सीर को ख़ाक। तूने ख़ानदान की इज़्ज़त को, अदब और इख़लाक़ को, इल्मो-कमाल को मिटा दिया, बर्बाद कर दिया। अब तेरी बागडोर हमारे हाथ में नहीं है, चरवाहे तेरे रखवाले और बनिये तेरे दरबारी हैं। मगर देख लेना यह हवा है, और चरवाहे और साहूकार एक दिन तुझे ख़ून के आंसू रुलायेंगे। धन और वैभव अपना ढंग न छोड़ेगा, हुकूमत अपना रंग न बदलेगी, लोग चाहे बदल जायं, लेकिन निज़ाम वही रहेगा। यह तेरे नये शुभ-चिन्तक जो इस वक़्त विनय और सत्य और न्याय की मूर्तियां बने हुए हैं, एक दिन वैभव के नशे में मतवाले होंगे, उनकी सख़्तियां ताज की सख़्तियों से कहीं ज़्यादा सख़्त होंगी और उनके ज़ुल्म इससे कहीं ज़्यादा तेज़!

इन्हीं खयालों में डूबे हुए मंसूर को अपने वतन की याद आ जाती। घर का नक़शा आंखों में खिंच जाता, मासूम बच्चे असकरी की प्यारी-प्यारी सूरत आंखों में फिर जाती, जिसे तक़दीर ने मां के लाड़-प्यार से वंचित कर दिया था। तब मंसूर एक ठण्डी आह खींचकर उठ खड़ा होता और अपने बेटे से मिलने की पागल इच्छा में उसका जी चाहता कि गंगा में कूदकर पार निकल जाऊं।

धीरे-धीरे इस इच्छा ने इरादे की सूरत अख़्तियार की। गंगा उमड़ी हुई थी, ओर-छोर का कहीं पता न था। तेज़ और गरजती हुई लहरें दौड़ते हुए पहाड़ों के समान थीं। पाट देखकर सर में चक्कर-सा आ जाता था। मंसूर ने सोचा, नदी उतरने दूं। लेकिन नदी उतरने के बदले भयानक रोग की तरह बढ़ती जाती थी, यहां तक कि मंसूर को फिर धीरज न रहा, एक दिन वह रात को उठा और उस पुरशोर लहरों से भरे हुए अंधेरे में कूद पड़ा।

मंसूर सारी रात लहरों के साथ लड़ता-भिड़ता रहा, जैसे कोई नन्हीं-सी चिड़िया तूफ़ान में थपेड़े खा रही हो, कभी उनकी गोद में छिपा हुआ, कभी एक रेले में दस क़दम आगे, कभी एक धक्के में दस क़दम पीछे। ज़िन्दगी पानी की लिखावट की ज़िन्दा मिसाल! जब वह नदी के पार हुआ तो एक बेजान लाश था, सिर्फ़ सांस बाक़ी थी और सांस के साथ मिलने की इच्छा।

इसके तीसरे दिन मंसूर विजयगढ़ जा पहुंचा। एक गोद में असकरी था और दूसरे हाथ में ग़रीबी का एक छोटा-सा बुकचा। वहां उसने अपना नाम मिर्ज़ा जलाल बताया। हुलिया भी बदल लिया था, हट्टा-कट्टा सजीला जवान था, चेहरे पर शराफ़त और कुलीनता की कान्ति झलकती थी, नौकरी के लिए किसी और सिफ़ारिश की जरूरत न थी। सिपाहियों में दाख़िल हो गया और पांच ही साल में अपनी ख़िदमतों और भरोसे के बदौलत मन्दौर के सरहदी पहाड़ी क़िले का सूबेदार बना दिया गया।

लेकिन मिर्ज़ा जलाल को वतन की याद हमेशा सताया करती। वह असकरी को गोद में ले लेता और कोट पर चढ़कर उसे जयगढ़ की वह मुसकराती हुई चरागाहें और मतवाले झरने और सुथरी बस्तियां दिखाता जिनके कंगूरे क़िले से नज़र आते। उस वक़्त बेअख़्तियार उसके जिगर से एक सर्द आह निकल जाती और आंखें डबडबा आतीं। वह असकरी को गले लगा लेता और कहता—बेटा, वह तुम्हारा देश है। वही तुम्हारा और तुम्हारे बुज़ुर्गों का घोंसला है। तुमसे हो सके तो उसके एक कोने में बैठे हुए अपनी उम्र ख़त्म कर देना, मगर कभी उसकी आन में बट्टा न लगाना। कभी उससे दग़ा मत करना क्योंकि तुम उसी की मिट्टी और पानी से पैदा हुए हो और तुम्हारे बुज़ुर्गों की पाक रूहें अब भी वहां मँडला रही हैं। इस तरह बचपने से ही असकरी के दिल पर देश की सेवा और प्रेम अंकित हो गया था। वह जवान हुआ, तो जयगढ़ पर जान देता था। उसकी शान-शौकत पर निसार, उसके रोब-दाब की माला जपनेवाला। उसकी बेहतरी को आगे बढ़ाने के लिए हर वक़्त तैयार। उसके झण्डे को नयी अछूती धरती में गाड़ने का इच्छुक। बीस साल का सजीला जवान था, इरादा मज़बूत, हौसले बलन्द, हिम्मत बड़ी, फ़ौलादी जिस्म, आकर जयगढ़ की फ़ौज में दाख़िल हो गया और इस वक़्त जयगढ़ की फ़ौज का चमकता सूरज बना हुआ था।

५

जयगढ़ ने अल्टीमेटम दे दिया। अगर चौबीस घण्टों के अन्दर शीरीं बाई जयगढ़ न पहुँची तो उसकी अगवानी के लिए जयगढ़ की फ़ौज रवाना होगी।

विजयगढ़ ने जवाब दिया——जयगढ़ की फ़ौज आये, हम उसकी अगवानी के लिए हाज़िर हैं। शीरीं बाई जब तक यहां की अदालत से हुक्म-उदूली की सज़ा न पा ले, वह रिहा नहीं हो सकती और जयगढ़ को हमारे अन्दरूनी मामलों में दख़ल देने का कोई हक़ नहीं।

असकरी ने मुंहमांगी मुराद पायी। ख़ुफ़िया तौर पर एक दूत मिर्ज़ा जलाल के पास रवाना किया और ख़त में लिखा——

'आज विजयगढ़ से हमारी जंग छिड़ गयी, अब ख़ुदा ने चाहा तो दुनिया जयगढ़ की तलवार का लोहा मान जायगी। मंसूर का बेटा असकरी फ़तेह के दरबार का एक अदना दरबारी बन सकेगा और शायद मेरी वह दिली तमन्ना भी पूरी हो जो हमेशा मेरी रूह को तड़पाया करती है। शायद मैं मिर्ज़ा मंसूर को फिर जयगढ़ की रियासत में एक ऊंची जगह पर बैठे हुए देख सकूं। हम मन्दौर से न बोलेंगे और आप भी हमें न छेड़िएगा लेकिन अगर ख़ुदा न ख़्वास्ता कोई मुसीबत आ ही पड़े तो आप मेरी यह मुहर जिस सिपाही या अफ़सर को दिखा देंगे वह आपकी इज़्ज़त करेगा और आपको मेरे कैम्प में पहुंचा देगा। मुझे यक़ीन है कि अगर ज़रूरत पड़े तो उस जयगढ़ के लिए जो आपके लिए इतना प्यारा है और उस असकरी के ख़ातिर जो आपके जिगर का टुकड़ा है, आप थोड़ी-सी तकलीफ़ से (मुमकिन है वह रूहानी तकलीफ़ हो) दरेग़ न फ़रमायेंगे।

इसके तीसरे दिन जयगढ़ की फ़ौज ने विजयगढ़ पर हमला किया और मन्दौर से पांच मील के फ़ासले पर दोनों फ़ौजों का मुक़ाबला हुआ। विजयगढ़ को अपने हवाई जहाज़ों, ज़हरीले गड्ढों, और दूर तक मार करनेवाली तोपों का घमण्ड था। जयगढ़ को अपनी फ़ौज की बहादुरी, जीवट, समझदारी और बुद्धि का भरोसा। विजयगढ़ की फ़ौज नियम और अनुशासन की गुलाम थी, जयगढ़ वाले ज़िम्मेदारी और तमीज़ के क़ायल।

एक महीने तक दिन-रात, मार-काट के मार्के होते रहे। हमेशा आग और गोलों और ज़हरीली हवाओं का तूफ़ान उठा रहता। इन्सान थक जाता था, पर कलें अथक थीं। जयगढ़ियों के हौसले पस्त हो गये, बार-बार हार पर हार खायी। असकरी को मालूम हुआ कि ज़िम्मेदारी फ़तेह में चाहे करिश्मे कर दिखाये, पर शिकस्त में मैदान हुक्म की पाबन्दी ही के हाथ रहता है।

जयगढ़ के अख़बारों ने मन्त्रियों पर हमले शुरू किये। असकरी सारी क़ौम की लानत-मलामत का निशाना बन गया। वही असकरी जिस पर जयगढ़ फ़िदा

होता था, सब की नज़रों का काँटा हो गया। अनाथ बच्चों के आंसू, विधवाओं की आहें, घायलों की चीख़-पुकार, व्यापारियों की तबाही, राष्ट्र का अपमान––इन सबका कारण वही एक व्यक्ति असकरी था। क़ौम की अगुअई सोने का राजसिंहासन भले हो पर फूलों की सेज वह हरगिज़ नहीं।

अब जयगढ़ की जान बचने की इसके सिवा और कोई सूरत न थी कि किसी तरह विरोधी सेना का सम्बन्ध मन्दौर के क़िले से काट दिया जाय, जो लड़ाई और रसद के सामान और यातायात के साधनों का केन्द्र था। लड़ाई कठिन थी, बहुत ख़तरनाक, सफलता की आशा बहुत कम, असफलता की आशंका जी पर भारी। कामयाबी अगर सूखे धान का पानी थी तो नाकामी उसकी आग। मगर छुटकारे की और कोई दूसरी तदबीर न थी। असकरी ने मिर्ज़ा जलाल को लिखा—

"प्यारे अब्बा जान, अपने पिछले ख़त में मैंने जिस ज़रूरत का इशारा किया था, बदक़िस्मती से वह ज़रूरत आ पड़ी। आपका प्यारा जयगढ़ भेड़ियों के पंजे में फँसा हुआ है और आपका प्यारा असकरी नाउम्मीदी के भँवर में, दोनों आपकी तरफ़ आस लगाये ताक रहे हैं। आज हमारी आखिरी कोशिश है, हम मुख़ालिफ़ फ़ौज को मन्दौर के क़िले से अलग करना चाहते हैं। आधी रात के बाद यह मार्का शुरू होगा। आपसे सिर्फ़ इतनी दरख़्वास्त है कि अगर हम सर हथेली पर लेकर क़िले के सामने तक पहुंच सकें, तो हमें लोहे के दरवाज़े से सर टकराकर वापस न होना पड़े। वर्ना आप अपनी क़ौम की इज़्ज़त और अपने बेटे की लाश को उसी जगह पर तड़पते देखेंगे और जयगढ़ आपको कभी मुआफ़ न करेगा। उससे आपको कितनी ही तकलीफ़ क्यों न पहुंची हो मगर आप उसके हक़ों से सुबुकदोश नहीं हो सकते।"

शाम हो चुकी थी, मैदानेजंग ऐसा नज़र आता था कि जैसे जंगल आग से जल गया हो। विजयगढ़ी फ़ौज एक खूंरेज़ मार्के के बाद खन्दकों में आ रही थी, घायल मन्दौर के क़िले के अस्पताल में पहुंचाये जा रहे थे, तोपें थककर चुप हो गयी थीं और बन्दूकें ज़रा दम ले रही थीं। उसी वक़्त जयगढ़ी फ़ौज का एक अफ़सर विजयगढ़ी वर्दी पहने हुए असकरी के ख़ेमे से निकला, थकी हुई तोपें, सर झुकाये हुए हवाई जहाज़, घोड़ों की लाशें, औंधी पड़ी हुई हवागाड़ियां, और सजीव मगर टूटे-फूटे क़िले, उसके लिए पर्दे का काम करने लगे। उनकी आड़ में छिपता हुआ वह विजयगढ़ी घायलों की क़तार में जा पहुंचा और चुपचाप ज़मीन पर लेट गया।

६

आधी रात गुज़र चुकी थी। मन्दौर का क़िलेदार मिर्ज़ा जलाल क़िले की दीवार पर बैठा हुआ मैदाने जंग का तमाशा देख रहा था और सोचता था कि असकरी को मुझे ऐसा ख़त लिखने की हिम्मत क्योंकर हुई। उसे समझना चाहिए था कि जिस शख़्स ने अपने उसूलों पर अपनी ज़िन्दगी न्योछावर कर दी, देश से निकाला गया, और गुलामी का तौक़ गर्दन में डाला वह अब अपनी ज़िन्दगी के आख़िरी दौर में ऐसा कोई काम न करेगा, जिससे उसको बट्टा लगे। अपने उसूलों को न तोड़ेगा। खुदा के दरबार में वतन और वतनवाले और बेटा एक भी साथ न देगा। अपने भले-बुरे की सज़ा या इनाम आप ही भुगतना पड़ेगा। हिसाब के रोज़ उसे कोई न बचा सकेगा।

'तौबा! जयगढ़ियों से फिर वही बेवक़ूफ़ी हुई। ख़ामख़ाह गोलेबारी से दुश्मनों को ख़बर कर देने की क्या ज़रूरत थी? अब इधर से भी जवाब दिया जायगा और हज़ारों जानें ज़ाया होंगी। रात के अचानक हमले के माने तो यह हैं कि दुश्मन सर पर आ जाय और कानोंकान ख़बर न हो, चौतरफ़ा खलबली पड़ जाय। माना कि मौजूदा हालात में अपनी हरकतों को पोशीदा रखना मुश्किल है। इसका इलाज अंधेरे के ख़न्दक़ से करना चाहिए था। मगर आज शायद उनकी गोलेबारी मामूल से ज़्यादा तेज़ है। विजयगढ़ की क़तारों और तमाम मोर्चेबन्दियों को चीरकर बज़ाहिर उनका यहां तक आना तो मुहाल मालूम होता था, लेकिन अगर मान लो आ ही जायं तो मुझे क्या करना चाहिए। इस मसले को तय क्यों न कर लूं? ख़ूब, इसमें तय करने की बात ही क्या है? मेरा रास्ता साफ़ है। मैं विजयगढ़ का नमक खाता हूं। मैं जब बेघरबार, परीशान और अपने देश से निकाला हुआ था तो विजयगढ़ ने मुझे अपने दामन में पनाह दी और मेरी ख़िदमतों का मुनासिब लिहाज़ किया। उसकी बदौलत तीस साल तक मेरी ज़िन्दगी नेकनामी और इज़्ज़त से गुज़री। उससे दग़ा करना हद दर्जे की नमकहरामी है। ऐसा गुनाह जिसकी कोई सज़ा नहीं! वह ऊपर शोर हो रहा है। हवाई जहाज़ होंगे, वह गोला गिरा, मगर ख़ैरियत हुई, नीचे कोई नहीं था।

'मगर क्या दग़ा हर एक हालत में गुनाह है? ऐसी हालतें भी तो हैं, जब दग़ा वफ़ा से भी ज़्यादा अच्छी हो जाती है। अपने दुश्मन से दग़ा करना क्या गुनाह है? अपनी क़ौम के दुश्मन से दग़ा करना क्या गुनाह है? कितने ही काम जो ज़ाती हैसियत से ऐसे होते हैं कि उन्हें माफ़ नहीं किया जा सकता, क़ौमी हैसियत से नेक

काम हो जाते हैं। वही बेगुनाह का ख़ून जो ज़ाती हैसियत से सख़्त से सख़्त सज़ा के क़ाबिल है, मज़हबी हैसियत से शहादत का दर्जा पाता है, और क़ौमी हैसियत से देश-प्रेम का। कितनी बेरहमियां और ज़ुल्म, कितनी दग़ाएं और चालबाज़ियां, क़ौमी और मज़हबी नुक्ते-निगाह से सिर्फ़ ठीक ही नहीं, फ़र्ज़ों में दाख़िल हो जाती हैं। हाल की योरोप की बड़ी लड़ाई में इसकी कितनी ही मिसालें मिल सकती हैं। दुनिया का इतिहास ऐसी दग़ाओं से भरा पड़ा है। इस नये दौर में भले और बुरे का ज़ाती एहसास क़ौमी मसलहत के सामने कोई हक़ीक़त नहीं रखता। क़ौमियत ने ज़ात को मिटा दिया है। मुमकिन है यही ख़ुदा का मंशा हो। और उसके दरबार में भी हमारे कारनामे क़ौम की कसौटी ही पर परखे जायं। यह मसला इतना आसान नहीं है जितना मैं समझा था।

'फिर आसमान में शोर हुआ मगर शायद यह इधर ही के हवाई जहाज़ हैं। आज जयगढ़वाले बड़े दमख़म से लड़ रहे हैं। इधरवाले दबते नज़र आते हैं। आज यक़ीनन मैदान उन्हीं के हाथ रहेगा। जान पर खेले हुए हैं। जयगढ़ी वीरों की बहादुरी मायूसी ही में ख़ूब खुलती है। उनकी हार जीत से भी ज़्यादा शानदार होती है। बेशक, असकरी दांव-पेंच का उस्ताद है, किस ख़ूबसूरती से अपनी फ़ौज का रुख़ क़िले के दरवाज़े की तरफ़ फेर दिया। मगर सख़्त ग़लती कर रहे हैं। अपने हाथों अपनी क़ब्र खोद रहे हैं। सामने का मैदान दुश्मन के लिए ख़ाली किये देते हैं। वह चाहे तो बिला रोक-टोक आगे बढ़ सकता है और सुबह तक जयगढ़ की सरज़मीन में दाख़िल हो सकता है। जयगढ़ियों के लिए वापसी या तो ग़ैरमुमकिन है या निहायत ख़तरनाक। क़िले का दरवाज़ा बहुत मज़बूत है। दीवारों की संधियों से उन पर बेशुमार बन्दूकों के निशाने पड़ेंगे। उनका इस आग में एक घण्टा भी ठहरना मुमकिन नहीं है। क्या इतने देशवासियों की जानें सिर्फ़ एक उसूल पर, सिर्फ़ हिसाब के दिन के डर पर, सिर्फ़ अपने इख़लाक़ी एहसास पर क़ुर्बान कर दूं? और महज़ जानें ही क्यों? इस फ़ौज की तबाही जयगढ़ की तबाही है। कल जयगढ़ की पाक सरज़मीन दुश्मन के जीत के नक़्क़ारों से गूंज उठेगी। मेरी माएँ, बहनें और बेटियां हया को जलाकर ख़ाक कर देनेवाली हरकतों का शिकार होंगी। सारे मुल्क में क़त्ल और तबाही के हंगामे बरपा होंगे। पुरानी अदावत और झगड़ों के शोले भड़केंगे। क़ब्रिस्तान में सोयी हुई रूहें दुश्मन के क़दमों से पामाल होंगी। वह इमारतें जो हमारे पिछले बड़प्पन की ज़िन्दा निशानियाँ हैं, वह यादगारें जो हमारे बुज़ुर्गों की देन हैं, जो हमारे कारनामों के इतिहास, हमारे कमालों का ख़ज़ाना

और हमारी मेहनतों की रौशन गवाहियां हैं, जिनकी सजावट और खूबी को दुनिया की क़ौमें स्पर्द्धा की आँखों से देखती हैं, वह अर्द्ध-बर्बर, असभ्य लश्करियों का पड़ाव बनेंगी और उनके तबाही के जोश का शिकार। क्या अपनी क़ौम को इन तबाहियों का निशाना बनने दूं? महज़ इसलिए कि वफ़ा का मेरा उसूल न टूटे?

उफ् यह क़िले में ज़हरीले गैस कहां से आ गये! किसी जयगढ़ी जहाज़ की हरकत होगी! सर में चक्कर-सा आ रहा है। यहाँ से कुमक भेजी जा रही है। क़िले की दीवार के सूराखों में भी तोपें चढ़ायी जा रही हैं। जयगढ़वाले क़िले के सामने आ गये। एक धावे में वह हुमायूं दरवाज़े तक आ पहुंचेंगे। विजयगढ़वाले इस बाढ़ को अब नहीं रोक सकते। जयगढ़वालों के सामने कौन ठहर सकता है? या अल्लाह, किसी तरह दरवाज़ा खुद-ब-खुद खुल जाता, कोई जयगढ़ी हवाबाज़ मुझसे ज़बर्दस्ती कुंजी छीन लेता, मुझे मार डालता। आह, मेरे इतने अज़ीज़ हम-वतन प्यारे भाई आन की आन में ख़ाक में मिल जायेंगे और मैं बेबस हूं! हाथों में ज़ंजीर है, पैरों में बेड़ियां। एक-एक रोआँ रस्सियों से जकड़ा हुआ है। क्यों न इस ज़ंजीर को तोड़ दूं, इन बेड़ियों के टुकड़े-टुकड़े कर दूं और दरवाज़े के दोनों बाज़ू अपने अज़ीज़ फ़तेह करनेवालों की अगवानी के लिए खोल दूं। माना कि यह गुनाह है पर यह मौक़ा गुनाह से डरने का नहीं। जहन्नुम के आग उगलनेवाले सांप और खून पीनेवाले जानवर और लपकते हुए शोले मेरी रूह को जलायें, तड़पायें, कोई बात नहीं। अगर महज़ मेरी रूह की तबाही, मेरी क़ौम और वतन को मौत के गड्ढे से बचा सके तो वह मुबारक है। विजयगढ़ ने ज़्यादती की है, उसने महज़ जयगढ़ को ज़लील करने के लिए, सिर्फ़ उसको भड़काने के लिए शीरीं बाई को शहर-निकाले का हुक्म जारी किया जो सरासर बेजा था। हाय, अफ़सोस, मैंने उसी वक्त इस्तीफ़ा क्यों न दे दिया और ग़ुलामी की इस क़ैद से क्यों न निकल गया।

हाय ग़ज़ब, जयगढ़ी फ़ौज खन्दक़ों तक पहुंच गयी, या खुदा! इन जांबाज़ों पर रहम कर, इनकी मदद कर। कलदार तोपों से कैसे गोले बरस रहे हैं, गोया आसमान के बेशुमार तारे टूटे पड़ते हैं। अल्लाह की पनाह, हुमायूं दरवाज़े पर गोलों की कैसी चोटें पड़ रही हैं। कान के परदे फटे जाते हैं। काश दरवाज़ा टूट जाता! हाय मेरा असकरी, मेरे जिगर का टुकड़ा, वह घोड़े पर सवार आ रहा है। कैसा बहादुर, कैसा जांबाज़, कैसी पक्की हिम्मतवाला! आह, मुझ अभागे कलमुंहे को मौत क्यों नहीं आ जाती! मेरे सर पर कोई गोला क्यों नहीं आ गिरता! हाय, जिस पौदे को अपने जिगर के खून से पाला, जो मेरी पतझड़ जैसी ज़िन्दगी का सदाबहार फूल था, जो

मेरी अँधेरी रात का चिराग़, मेरी ज़िन्दगी की उम्मीद, मेरी हस्ती का दारोमदार, मेरी आरज़ू की इन्तहा था, वह मेरी आंखों के सामने आग के भंवर में पड़ा हुआ है, और मैं हिल नहीं सकता। इस क़ातिल ज़ंजीर को क्योंकर तोड़ दूं? इस बाग़ी दिल को क्योंकर समझाऊं? मुझे मुंह में कालिख लगाना मंजूर है, मुझे जहन्नुम की मुसीबतें झेलना मंजूर है, मैं सारी दुनिया के गुनाहों का बोझ अपने सर पर लेने को तैयार हूं, सिर्फ़ इस वक़्त मुझे गुनाह करने की, वफ़ा के पैमाने को तोड़ने की, नमकहराम बनने की तौफ़ीक़ दे! एक लमहे के लिए मुझे शैतान के हवाले कर दे, मैं नमकहराम बनूंगा, दग़ाबाज़ बनूंगा पर क़ौमफ़रोश नहीं बन सकता!

आह, ज़ालिम सुरंगें उड़ाने की तैयारी कर रहे हैं। सिपहसालार ने हुक्म दे दिया। वह तीन आदमी तहख़ाने की तरफ़ चले। जिगर कांप रहा है, जिस्म कांप रहा है। यह आख़िरी मौका है। एक लमहा और, बस फिर अँधेरा है और तबाही। हाय, मेरे ये बेवफ़ा हाथ-पाँव अब भी नहीं हिलते, जैसे इन्होंने मुझसे मुंह मोड़ लिया हो। यह ख़ून अब भी गरम नहीं होता। आह, वह धमाके की आवाज़ हुई, ख़ुदा की पनाह, ज़मीन कांप उठी, हाय असकरी, असकरी, रुख़सत, मेरे प्यारे बेटे, रुख़सत, इस ज़ालिम बेरहम बाप ने तुझे अपनी वफ़ा पर कुर्बान कर दिया! मैं तेरा बाप न था, तेरा दुश्मन था! मैंने तेरे गले पर छुरी चलायी। अब धुआं साफ़ हो गया। आह वह फ़ौज कहां है जो सैलाब की तरह बढ़ती आती थी और इन दीवारों से टकरा रही थी। ख़न्दकें लाशों से भरी हुई हैं और वह जिसका मैं दुश्मन था, जिसका क़ातिल, वह बेटा, वह मेरा दुलारा असकरी कहां है, कहीं नज़र नहीं आता....आह....।'

—ज़माना, नवम्बर १९१८

•

मुबारक बीमारी

रात के नौ बज गये थे। एक युवती अंगीठी के सामने बैठी हुई आग फूंकती थी और उसके गाल आग के कुन्दनी रंग में दहक रहे थे। उसकी बड़ी-बड़ी नरगिसी आँखें दरवाज़े की तरफ़ लगी हुई थीं। कभी चौंककर आँगन की तरफ ताकती, कभी कमरे की तरफ। फिर आनेवालों की इस देरी से त्योरियों पर बल पड़ जाते और आँखों में हलका-सा गुस्सा नज़र आता। कमल पानी में झकोले खाने लगता।

इसी बीच आनेवालों की आहट मिली। कहार बाहर पड़ा ख़र्राटे ले रहा था। बूढ़े लाला हरनामदास ने आते ही उसे एक ठोकर लगाकर कहा—कम्बख़्त, अभी शाम हुई है और अभी से लम्बी तान दी !

नौजवान लाला हरिदास घर में दाखिल हुए—चेहरा बुझा हुआ, चिन्तित। देवकी ने आकर उनका हाथ पकड़ लिया और गुस्से व प्यार की मिली हुई आवाज़ से बोली—आज इतनी देर क्यों हुई ?

दोनों नये खिले हुए फूल थे—एक पर ओस की ताज़गी थी, दूसरा धूप से मुरझाया हुआ।

हरिदास—हाँ आज देर हो गयी, तुम यहाँ क्यों बैठी रहीं ?

देवकी—क्या करती, आग बुझी जाती थी, खाना न ठण्डा हो जाता।

हरिदास—तुम ज़रा से काम के लिए इतनी देर आग के सामने न बैठा करो। बाज़ आया गरम खाने से।

देवकी—अच्छा कपड़े तो उतारो, आज इतनी देर क्यों की ?

हरिदास—क्या बताऊँ, पिता जी ने ऐसा नाक में दम कर दिया है कि कुछ कहते नहीं बनता। इस रोज़-रोज़ की झंझट से तो यही अच्छा है कि मैं कहीं और नौकरी कर लूँ।

लाला हरनामदास एक आटे की चक्की के मालिक थे। उनकी जवानी के दिनों में आस-पास दूसरी चक्की न थी। उन्होंने खूब धन कमाया। मगर अब वह हालत न थी। चक्कियाँ कीड़े-मकोड़ों की तरह पैदा हो गयी थीं, नयी मशीनों और ईजादों के साथ। उनके काम करनेवाले भी जोशीले नौजवान थे, मुस्तैदी से काम

करते थे। इसलिए हरनामदास का कारखाना रोज़ गिरता जाता था। बूढ़े आदमियों को नयी चीज़ों से जो चिढ़ हो जाती है वह लाला हरनामदास को भी थी। वह अपनी पुरानी मशीन ही को चलाते थे, किसी किस्म की तरक्की या सुधार को पाप समझते थे, मगर अपनी इस मन्दी पर कुढ़ा करते थे। हरिदास ने उनकी मर्ज़ी के खिलाफ कालेजियेट शिक्षा प्राप्त की थी और उसका इरादा था कि अपने पिता के कारखाने को नये उसूलों पर चलाकर आगे बढ़ाये। लेकिन जब वह उनसे किसी परिवर्तन या सुधार का जिक्र करता तो लाला साहब जामे से बाहर हो जाते और बड़े गर्व से कहते—कालेज में पढ़ने से तजुर्बा नहीं आता। तुम अभी बच्चे हो, इस काम में मेरे बाल सफेद हो गये हैं, तुम मुझे सलाह मत दो। जिस तरह मैं कहता हूँ, काम किये जाओ।

कई बार ऐसे मौके आ चुके थे कि बहुत ही छोटे मामलों में अपने पिता की मर्ज़ी के खिलाफ काम करने के जुर्म में हरिदास को सख्त फटकारें सहनी पड़ी थीं। इसी वजह से अब वह इस काम से कुछ उदासीन हो गया था और किसी दूसरे कारखाने में किस्मत आजमाना चाहता था जहाँ उसे अपने विचारों को अमली सूरत देने की ज़्यादा सहूलतें हासिल हों।

देवकी ने सहानुभूतिपूर्वक कहा—तुम इस फिक्र में क्यों जान खपाते हो, जैसे वह कहें, वैसे ही करो, भला दूसरी जगह नौकरी कर लोगे तो वह क्या कहेंगे ? और चाहे वे गुस्से के मारे कुछ न बोलें, लेकिन दुनिया तो तुम्हीं को बुरा कहेगी।

देवकी नयी शिक्षा के आभूषण से वंचित थी। उसने स्वार्थ का पाठ न पढ़ा था, मगर उसका पति अपने 'अलमामेटर' का एक प्रतिष्ठित सदस्य था। उसे अपनी योग्यता पर पूरा भरोसा था। उस पर नाम कमाने का जोश। इसलिए वह अपने बूढ़े पिता के पुराने ढर्रों को देखकर धीरज खो बैठता था। अगर अपनी योग्यताओं के लाभप्रद उपयोग की कोशिश के लिए दुनिया उसे बुरा कहे, तो उसको परवाह न थी। झुँझलाकर बोला—कुछ मैं अमरित की घरिया पीकर तो आया नहीं हूँ कि सारी उम्र उनके मरने का इन्तज़ार किया करूँ। मूर्खों की अनुचित टीका-टिप्पणियों के डर से क्या अपनी उम्र बरबाद कर दूँ। मैं अपने कुछ हमउम्रों को जानता हूँ जो हरगिज़ मेरी-सी योग्यता नहीं रखते। लेकिन वह मोटर पर हवा खाने निकलते हैं, बँगलों में रहते हैं और शान से ज़िन्दगी बसर करते हैं तो मैं क्यों हाथ पर हाथ रखे ज़िन्दगी को अमर समझे बैठा रहूँ। सन्तोष और निस्पृहता का युग बीत गया। यह संघर्ष का युग है। यह मैं जानता हूँ कि पिता का आदर

करना मेरा धर्म है। मगर सिद्धान्तों के मामले में मैं उनसे क्या किसी से भी नहीं दब सकता।

इसी बीच कहार ने आकर कहा——लाला जी थाली माँगते हैं।

लाला हरनामदास हिन्दू रस्म-रिवाज के बड़े पाबन्द थे। मगर बुढ़ापे के कारण चौके के चक्कर से मुक्ति पा चुके थे। पहले कुछ दिनों तक जाड़ों में रात को पूरियाँ खाते रहे, अब कमज़ोरी के कारण पूरियाँ न हज़म होती थीं इसलिए चपातियाँ ही अपनी बैठक में मँगा लिया करते थे। मजबूरी ने वह कराया था जो हुज्जत और दलील के काबू से बाहर था।

हरिदास के लिए भी देवकी ने खाना निकाला। पहले तो वह हज़रत बहुत दुखी नज़र आते थे, लेकिन बघार की खुशबू ने खाने के लिए चाव पैदा कर दिया था। अक्सर हम अपनी आँख और नाक से हाज़मे का काम लिया करते हैं।

२

लाला हरनामदास रात को भले-चंगे सोये लेकिन अपने बेटे की गुस्ताखियाँ और कुछ अपने कारबार की सुस्ती और मन्दी उनकी आत्मा के लिए भयानक कष्ट का कारण हो गयीं और चाहे इसी उद्विग्नता का असर हो, चाहे बुढ़ापे का, सुबह होने से पहले उन पर लक़वे का हमला हो गया। ज़बान बन्द हो गयी और चेहरा ऐंठ गया। हरिदास डाक्टर के पास दौड़ा। डाक्टर आये, मरीज़ को देखा और बोले——डरने की कोई बात नहीं। सेहत होगी मगर तीन महीने से कम न लगेंगे। चिन्ताओं के कारण यह हमला हुआ है इसलिए कोशिश करनी चाहिए कि वह आराम से सोयें, परेशान न हों और ज़बान खुल जाने पर भी जहाँ तक मुमकिन हो, बोलने से बचें।

बेचारी देवकी बैठी रो रही थी। हरिदास ने आकर उसको सान्त्वना दी, और फिर डाक्टर के यहाँ से दवा लाकर दी। थोड़ी देर में मरीज़ को होश आया, इधर-उधर कुछ खोजती हुई-सी निगाहों से देखा कि जैसे कुछ कहना चाहते हैं और फिर इशारे से लिखने के लिए काग़ज़ माँगा। हरिदास ने काग़ज़ और पेंसिल रख दी, तो बूढ़े लाला साहब ने हाथों को खूब सम्हालकर लिखा——इन्तज़ाम दीनानाथ के हाथ में रहे।

ये शब्द हरिदास के हृदय में तीर की तरह लगे। अफसोस! अब भी मुझ पर भरोसा नहीं। यानी कि दीनानाथ मेरा मालिक होगा और मैं उसका गुलाम बनकर

रहूँगा! यह नहीं होने का। काग़ज़ लिये हुए देवकी के पास आये और बोले—लाला जी ने दीनानाथ को मैनेजर बनाया है, उन्हें मुझ पर इतना एतबार भी नहीं है, लेकिन मैं इस मौके को हाथ से न जाने दूँगा। उनकी बीमारी का अफसोस तो ज़रूर है मगर शायद परमात्मा ने मुझे अपनी योग्यता दिखलाने का यह अवसर दिया है। और इससे मैं ज़रूर फायदा उठाऊँगा। कारखाने के कर्मचारियों ने इस दुर्घटना की खबर सुनी तो बहुत घबराये। उनमें कई निकम्मे, बेमसरफ आदमी भरे हुए थे, जो सिर्फ ख़ुशामद और चिकनी-चुपड़ी बातों की रोटी खाते थे। मिस्त्री ने कई दूसरे कारखानों में मरम्मत का काम उठा लिया था और रोज़ किसी न किसी बहाने से खिसक जाता था। फायरमैन और मशीनमैन दिन को तो झूठ-मूठ चक्की की सफ़ाई में काटते थे और रात को काम करके ओवर टाइम की मज़दूरी ले लिया करते थे। दीनानाथ ज़रूर होशियार और तजर्बेकार आदमी था, मगर उसे भी काम करने के मुकाबिले में 'जी हाँ' रटते रहने में ज़्यादा मज़ा आता था। लाला हरनामदास मज़दूरी देने में बहुत हीले-हवाले किया करते थे और अक्सर काट-कपट के भी आदी थे। इसी को वह कारबार का अच्छा उसूल समझते थे।

हरिदास ने कारखाने में पहुँचते ही साफ शब्दों में कह दिया कि तुम लोगों को मेरे वक्त में जी लगाकर काम करना होगा। मैं इसी महीने में काम देखकर सब की तरक्की करूँगा। मगर अब टाल-मटोल का गुज़र नहीं, जिन्हें मंजूर न हो वह अपना बोरिया-बिस्तर सम्हालें और फिर दीनानाथ को बुलाकर कहा—भाई साहब, मुझे खूब मालूम है कि आप होशियार और सूझ-बूझ रखनेवाले आदमी हैं। आपने अब तक यहाँ का जो रंग देखा, वही अख्तियार किया है। लेकिन अब मुझे आपके तजुर्बे और मेहनत की ज़रूरत है। पुराने हिसाबों की जाँच-पड़ताल कीजिए। बाहर से काम लाना मेरा जिम्मा है लेकिन यहाँ का इन्तज़ाम आपके सुपुर्द है। जो कुछ नफा होगा, उसमें आपका भी हिस्सा होगा। मैं चाहता हूँ कि दादा की अनुपस्थिति में कुछ अच्छा काम करके दिखाऊँ।

इस मुस्तैदी और चुस्ती का असर बहुत जल्द कारखाने में नज़र आने लगा। हरिदास ने ख़ूब इश्तहार बँटवाये। उसका असर यह हुआ कि काम आने लगा। दीनानाथ की मुस्तैदी की बदौलत गाहकों को नियत समय पर और किफायत से आटा मिलने लगा। पहला महीना भी खत्म न हुआ था कि हरिदास ने नयी मशीन मँगवायी। थोड़े अनुभवी आदमी रख लिये, फिर क्या था सारे शहर में इस कारखाने की धूम मच गयी। हरिदास गाहकों से इतनी अच्छी तरह पेश आता कि जो एक

बार उससे मुआमला करता वह हमेशा के लिए उसका खरीदार बन जाता। कर्मचारियों के साथ उसका सिद्धान्त था—काम सख्त और मजदूरी ठीक। उसके ऊँचे व्यक्तित्व का भी स्पष्ट प्रभाव दिखायी पड़ा। करीब-करीब सभी कारखानों का रंग फीका पड़ गया। उसने बहुत ही कम नफे पर कई ठेके ले लिये। मशीन को दम मारने की मोहलत न थी, रात और दिन काम होता था। तीसरा महीना खत्म होते-होते उस कारखाने की शकल ही बदल गयी। हाते में घुसते ही ठेले और गाड़ियों की भीड़ नज़र आती थी। कारखाने में बड़ी चहल-पहल थी—हर आदमी अपने-अपने काम में लगा हुआ। इसके साथ ही प्रबन्ध-कौशल का यह वरदान था कि भद्दी हड़बड़ी और जल्दबाज़ी का कहीं निशान न था।

३

लाला हरनामदास धीरे-धीरे ठीक होने लगे। एक महीने के बाद वह रुक-रुककर कुछ बोलने लगे। डाक्टर की सख्त ताकीद थी कि उन्हें पूरी शान्ति की स्थिति में रखा जाय मगर जब से उनकी ज़बान खुली उन्हें एक दम को भी चैन न था। देवकी से कहा करते—सारा कारबार मिट्टी में मिला जाता है। यह लड़का नहीं मालूम क्या कर रहा है, सारा काम अपने हाथ में ले रखा है। मैंने ताकीद कर दी थी कि दीनानाथ को मैनेजर बनाना लेकिन उसने ज़रा भी परवाह न की। मेरी सारी उम्र की कमाई बरबाद हुई जाती है।

देवकी उनको सान्त्वना देती कि आप इन बातों की आशंका न करें। कारबार बहुत खूबी से चल रहा है और खूब नफा हो रहा है। पर वह भी इस मामले को तूल देते हुए डरती थी कि कहीं लक़वे का फिर हमला न हो जाय। हूँ-हाँ कहकर टालना चाहती थी। हरिदास ज्यों ही घर में आता, लाला जो उस पर सवालों की बौछार कर देते और जब वह टालकर कोई दूसरा ज़िक्र छेड़ देता तो बिगड़ जाते और कहते—ज़ालिम, तू जीते जी मेरे गले पर छूरी फेर रहा है। मेरी पूँजी उड़ा रहा है। तुझे क्या मालूम कि मैंने एक-एक कौड़ी किस मशक्कत से जमा की है। तू ने दिल में ठान ली है कि इस बुढ़ापे में मुझे गली-गली ठोकर खिलाये, मुझे कौड़ी-कौड़ी का मुहताज बनाये।

हरिदास फटकार का कोई जवाब न देता क्योंकि बात से बात बढ़ती है। उसकी चुप्पी से लाला साहब को यक़ीन हो जाता कि ज़रूर कारखाना तबाह हो गया।

एक रोज़ देवकी ने हरिदास से कहा—अभी कितने दिन और इन बातों को लालाजी से छिपाओगे ?

हरिदास ने जवाब दिया—मैं चाहता हूँ कि नयी मशीन का रुपया अदा हो जाय तो उन्हें ले जाकर सब कुछ दिखा दूँ। तब तक डाक्टर साहब की हिदायत के अनुसार तीन महीने भी पूरे हो जायँगे।

देवकी—लेकिन इस छिपाने से क्या फायदा, जब वे आठों पहर इसी की रट लगाये रहते हैं। इससे तो चिन्ता और बढ़ती ही है, कम नहीं होती। इससे तो यही अच्छा है, कि उनसे सब कुछ कह दिया जाय।

हरिदास—मेरे कहने का तो उन्हें यक़ीन आ चुका। हाँ, दीनानाथ कहें तो शायद यक़ीन हो।

देवकी—अच्छा तो कल दीनानाथ को यहाँ भेज दो। लाला जी उसे देखते ही खुद बुला लेंगे, तुम्हें इस रोज़-रोज़ की डाँट-फटकार से तो छुट्टी मिल जायगी।

हरिदास—अब मुझे इन फटकारों का ज़रा भी दुख नहीं होता। मेरी मेहनत और योग्यता का नतीजा आँखों के सामने मौजूद है। जब मैंने कारखाना अपने हाथ में लिया था, आमदनी और खर्च का मीज़ान मुश्किल से बैठता था। आज पाँच सौ का नफा है। तीसरा महीना खत्म होनेवाला है और मैं मशीन की आधी कीमत अदा कर चुका। शायद अगले दो महीनों में पूरी कीमत अदा हो जायगी। उस वक्त से कारखाने का खर्च तिगुने से ज्यादा है लेकिन आमदनी पँचगुनी हो गयी है। हज़रत देखेंगे तो आँखें खुल जायँगी। कहाँ हाते में उल्लू बोलते थे। एक मेज़ पर बैठे आप ऊँघा करते थे, एक पर दीनानाथ कान कुरेदा करता था। मिस्त्री और फायर-मैन ताश खेलते थे। बस दिन में दो-चार घण्टे चक्की चल जाती थी। अब दम मारने की फुरसत नहीं है। सारी ज़िन्दगी में जो कुछ न कर सके वह मैंने तीन महीने में करके दिखा दिया। इसी तजुर्बे और कार्रवाई पर आपको इतना घमण्ड था। जितना काम वह एक महीने में करते थे उतना मैं रोज़ कर डालता हूँ।

देवकी ने भर्त्सनापूर्ण नेत्रों से देखकर कहा—अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना कोई तुमसे सीख ले! जिस तरह माँ अपने बेटे को हमेशा दुबला ही समझती है, उसी तरह बाप भी बेटे को हमेशा नादान समझा करता है। यह उनकी ममता है, बुरा मानने की बात नहीं है।

हरिदास ने लज्जित होकर सर झुका लिया।

४

दूसरे रोज़ दीनानाथ उनको देखने के बहाने से लाला हरनामदास की सेवा में उपस्थित हुआ। लाला जी उसे देखते ही तकिये के सहारे उठ बैठे और पागलों की तरह बेचैन होकर पूछा—क्यों, कारबार सब तबाह हो गया कि अभी कुछ कसर बाकी है! तुम लोगों ने तो मुझे मुर्दा समझ लिया है। कभी बात तक न पूछी। कम से कम तुमसे मुझे ऐसी उम्मीद न थी। बहू ने मेरी तीमारदारी न की होती तो मर ही गया होता।

दीनानाथ—आपका कुशल-मंगल रोज़ बाबू साहब से पूछ लिया करता था। आपने मेरे साथ जो नेकियाँ की हैं, उन्हें मैं भूल नहीं सकता। मेरा एक-एक रोआँ आपका एहसानमन्द है। मगर इस बीच काम ही कुछ ऐसा था कि हाज़िर होने की मोहलत न मिली।

हरनामदास—ख़ैर, कारखाने का क्या हाल है? दीवाला होने में क्या कसर बाकी है?

दीनानाथ ने ताज्जुब के साथ कहा—यह आपसे किसने कह दिया कि दीवाला होनेवाला है? इस अरसे में कारोबार में जो तरक्क़ी हुई है, वह आप खुद अपनी आँखों से देख लेंगे।

हरनामदास व्यंग्यपूर्वक बोले—शायद तुम्हारे बाबू साहब ने तुम्हारी मनचाही तरक्क़ी कर दी! अच्छा अब स्वामिभक्ति छोड़ो और साफ बतलाओ। मैंने ताकीद कर दी थी कि कारखाने का इन्तज़ाम तुम्हारे हाथ में रहेगा। मगर शायद हरिदास ने सब कुछ अपने ही हाथ में रखा।

दीनानाथ—जी हाँ, मगर मुझे इसका ज़रा भी दुख नहीं। वही इस काम के लिए ठीक भी थे। जो कुछ उन्होंने कर दिखाया, वह मुझसे हरगिज़ न हो सकता।

हरनामदास—मुझे यह सुन-सुनकर हैरत होती है। बतलाओ, क्या तरक्की हुई?

दीनानाथ—तफ़सील तो बहुत ज़्यादा होगी, मगर थोड़े में यह समझ लीजिए कि पहले हम लोग जितना काम एक महीने में करते थे उतना अब रोज़ होता है। नयी मशीन आयी थी, उसकी आधी कीमत अदा हो चुकी है। वह अक्सर रात को भी चलती है। ठाकुर कम्पनी का पाँच हजार मन आटे का ठीका लिया था, वह पूरा होनेवाला है। जगतराम बनवारीलाल से कमसरियट का ठेका लिया है। उन्होंने हमको पाँच सौ बोरे माहवार का बयाना दिया है। इसी तरह और फुटकर

काम कई गुना बढ़ गया है। आमदनी के साथ खर्च भी बढ़े हैं। कई आदमी नये रखे गये हैं, मुलाज़िमों को मज़दूरी के साथ कमीशन भी मिलता है मगर खालिस नफा पहले के मुकाबले में चौगुने के करीब है।

हरनामदास ने बड़े ध्यान से यह बातें सुनीं। वह ग़ौर से दीनानाथ के चेहरे की तरफ देख रहे थे। शायद उसके दिल में पैठकर सच्चाई की तह तक पहुँचना चाहते थे। सन्देहपूर्ण स्वर में बोले—दीनानाथ, तुम कभी मुझसे झूठ नहीं बोलते थे लेकिन तो भी मुझे इन बातों पर यक़ीन नहीं आता और जब तक अपनी आँखों से देख न लूँगा, यक़ीन न आयेगा।

दीनानाथ कुछ निराश होकर बिदा हुआ। उसे आशा थी कि लाला साहब तरक्की और कारगुजारी की बात सुनते ही फूले न समायँगे और मेरी मेहनत की दाद देंगे। उस बेचारे को न मालूम था कि कुछ दिलों में सन्देह की जड़ इतनी मज़बूत होती है कि सबूत और दलील के हमले उस पर कुछ असर नहीं कर सकते। यहाँ तक कि वह अपनी आँख से देखने को भी धोखा या तिलिस्म समझता है।

दीनानाथ के चले जाने के बाद लाला हरनामदास कुछ देर तक गहरे विचार में डूबे रहे और फिर यकायक कहार से बग्घी मँगवायी, लाठी के सहारे बग्घी में आ बैठे और उसे अपने चक्कीघर चलने का हुक्म दिया।

दोपहर का वक्त था। कारखानों के मज़दूर खाना खाने के लिए ग़ोल के ग़ोल भागे चले आते थे। मगर हरिदास के कारखाने में काम जारी था। बग्घी हाते में दाखिल हुई। दोनों तरफ फूलों की कतारें नज़र आयीं, माली क्यारियों में पानी दे रहा था। ठेले और गाड़ियों के मारे बग्घी को निकलने की जगह न मिलती थी। जिधर निगाह जाती थी, सफाई और हरियाली नज़र आती थी।

हरिदास अपने मुहर्रिर को कुछ खतों का मसौदा लिखा रहा था कि बूढ़े लाला जी लाठी टेकते हुए कारखाने में दाखिल हुए। हरिदास फौरन उठ खड़ा हुआ और उन्हें हाथों का सहारा देते हुए बोला—'आपने कहला क्यों न भेजा कि मैं आना चाहता हूँ, पालकी मँगवा देता। आपको बहुत तकलीफ हुई।' यह कहकर उसने एक आराम-कुर्सी बैठने के लिए खिसका दी। कारखाने के कर्मचारी दौड़े और उनके चारों तरफ बहुत अदब के साथ खड़े हो गये। हरनामदास कुर्सी पर बैठ गये और बोरों के छत चूमनेवाले ढेर पर नज़र दौड़ाकर बोले—मालूम होता है दीनानाथ सच कहता था। मुझे यहाँ कई नयी सूरतें नज़र आती हैं। भला कितना काम रोज होता है?

हरिदास—आजकल काम ज्यादा आ गया था इसलिए कोई पाँच सौ मन रोजाना

तैयार हो जाता था लेकिन औसत ढाई सौ मन का रहेगा। मुझे नयी मशीन की कीमत अदा करनी थी इसलिए अक्सर रात को भी काम होता है।

हरनामदास—कुछ क़र्ज़ लेना पड़ा ?

हरिदास—एक कौड़ी नहीं। सिर्फ मशीन की आधी कीमत बाकी है।

हरनामदास के चेहरे पर इत्मीनान का रंग नज़र आया। संदेह ने विश्वास को जगह दी। प्यारभरी आँखों से लड़के की तरफ देखा और करुण स्वर में बोले—बेटा, मैंने तुम्हारे ऊपर बड़ा जुल्म किया, मुझे माफ करो। मुझे आदमियों की पहचान का बड़ा घमण्ड था, लेकिन मुझे बहुत धोखा हुआ। मुझे अब से बहुत पहले इस काम से हाथ खींच लेना चाहिए था। मैंने तुम्हें बहुत नुकसान पहुँचाया। यह बीमारी बड़ी मुबारक है जिसने मुझे तुम्हारी परख का मौका दिया और तुम्हें अपनी लियाकत दिखाने का। काश यह हमला पाँच साल पहले ही हुआ होता। ईश्वर तुम्हें खुश रखे और हमेशा उन्नति दे, यही तुम्हारे बूढ़े बाप का आशीर्वाद है।

—'प्रेम बत्तीसी' से

वासना की कड़ियाँ

बहादुर, भाग्यशाली क़ासिम मुलतान की लड़ाई जीतकर घमंड के नशे से चूर चला आता था। शाम हो गयी थी, लश्कर के लोग आरामगाह की तलाश में नज़रें दौड़ाते थे, लेकिन क़ासिम को अपने नामदार मालिक की ख़िदमत में पहुंचने का शौक उड़ाये लिये आता था। उन तैयारियों का खयाल करके जो उसके स्वागत के लिए दिल्ली में की गयी होंगी उसका दिल उमंगों से भरपूर हो रहा था। सड़कें बन्दनवारों और झंडियों से सजी होंगी, चौराहों पर नौबतख़ाने अपना सुहाना राग अलापेंगे, ज्योंही मैं शहर के अन्दर दाखिल हूंगा सारे शहर में शोर मच जायगा, तोपें अगवानी के लिए ज़ोर-शोर से अपनी आवाज़ें बुलन्द करेंगी। हवेलियों के झरोखों पर शहर की चांद जैसी सुन्दर स्त्रियां आंखें गड़ाकर मुझे देखेंगी और मुझ पर फूलों की बारिश करेंगी। जड़ाऊ हौदों पर दरबार के लोग मेरी अगवानी को आयेंगे। इस शान से दीवाने ख़ास तक जाने के बाद जब मैं अपने हुज़ूर की ख़िदमत में पहुंचूंगा तो वह बाँहें खोले हुए मुझे सीने से लगाने के लिए उठेंगे और मैं बड़े आदर से उनके पैरों को चूम लूंगा। आह वह शुभ घड़ी कब आयेगी ? क़ासिम मतवाला हो गया, उसने अपने चाव की बेसुधी में घोड़े को एड़ लगायी।

क़ासिम लश्कर के पीछे था। घोड़ा एड़ पाते ही आगे बढ़ा, कैदियों का झुण्ड पीछे छूट गया। घायल सिपाहियों की डोलियां पीछे छूटीं, सवारों का दस्ता पीछे रहा। सवारों के आगे मुलतान के राजा की बेगमों और शहज़ादियों की पीनसें और सुखपाल थे। इन सवारियों के आगे-पीछे हथियारबन्द ख़्वाजासराओं की एक बड़ी जमात थी। क़ासिम अपने रौ में घोड़ा बढ़ाये चला आता था। यकायक उसे एक सजी हुई पालकी में से दो आंखें झांकती हुई नज़र आयीं। क़ासिम ठिठक गया, उसे मालूम हुआ कि मेरे हाथों के तोते उड़ गये, उसे अपने दिल में एक कँपकँपी, एक कमज़ोरी और बुद्धि पर एक उन्माद-सा अनुभव हुआ। उसका आसन खुद-ब-खुद ढीला पड़ गया। तनी हुई गर्दन झुक गयी। नज़रें नीची हुईं। वह दोनों आंखें दो चमकते और नाचते हुए सितारों की तरह, जिनमें जादू का-सा आकर्षण था, उसके दिल के गोशे में आ बैठीं। वह जिधर ताकता था वही दोनों उमंग की रौशनी

से चमकते हुए तारे नज़र आते थे। उसे बर्छी नहीं लगी, कटार नहीं लगी, किसी ने उस पर जादू नहीं किया, मंतर नहीं किया, नहीं, उसे अपने दिल में इस वक्त एक मज़ेदार बेसुधी, दर्द की एक लज़्ज़त, मीठी-मीठी-सी एक कैफ़ियत और एक सुहानी चुभन से भरी हुई रोने की-सी हालत महसूस हो रही थी। उसका रोने को जी चाहता था, किसी के दर्द की पुकार सुनकर शायद वह रो पड़ता, बेताब हो जाता। उसका दर्द का एहसास जाग उठा था जो इश्क़ की पहली मंज़िल है।

क्षण भर बाद उसने हुक्म दिया — आज हमारा यहीं क़याम होगा।

२

आधी रात गुज़र चुकी थी, लश्कर के आदमी मीठी नींद सो रहे थे। चारों तरफ़ मशालें जलती थीं और तिलाये के जवान जगह-जगह बैठे जम्हाइयां लेते थे। लेकिन क़ासिम की आंखों में नींद न थी। वह अपने लम्बे-चौड़े पुरलुत्फ़ ख़ेमे में बैठा हुआ सोच रहा था — क्या इस जवान औरत को एक नज़र देख लेना कोई बड़ा गुनाह है? माना कि वह मुलतान के राजा की शहज़ादी है और मेरे बादशाह अपने हरम को उससे रौशन करना चाहते हैं लेकिन मेरी आरज़ू तो सिर्फ़ इतनी है कि उसे एक निगाह देख लूं और वह भी इस तरह कि किसी को ख़बर न हो। बस। और मान लो यह गुनाह भी हो तो मैं इस वक्त यह गुनाह करूंगा। अभी हज़ारों बेगुनाहों को इन्हीं हाथों से क़त्ल कर आया हूँ। क्या खुदा के दरबार में इन गुनाहों की माफ़ी सिर्फ़ इसलिए हो जायगी कि वह बादशाह के हुक्म से किये गये? कुछ भी हो, किसी नाज़नीन को एक नज़र देख लेना किसी की जान लेने से बड़ा गुनाह नहीं। कम से कम मैं ऐसा नहीं समझता।

क़ासिम दीनदार नौजवान था। वह देर तक इस काम के नैतिक पहलू पर ग़ौर करता रहा। मुलतान को फ़तेह करने वाला हीरो दूसरी बाधाओं को क्यों ख़याल में लाता?

उसने अपने ख़ेमे से बाहर निकलकर देखा, बेगमों के ख़ेमे थोड़ी ही दूर पर गड़े हुए थे। क़ासिम ने जान-बूझकर अपना ख़ेमा उनके पास लगाया था। इन ख़ेमों के चारों तरफ़ कई मशालें जल रही थीं और पांच हब्शी ख्वाजासरा नंगी तलवारें लिये टहल रहे थे। क़ासिम आकर मसनद पर लेट गया और सोचने लगा — इन कम्बख़्तों को क्या नींद न आयेगी। और चारों तरफ़ इतनी मशालें क्यों जला रक्खी हैं? इन का गुल होना ज़रूरी है। इसलिए पुकारा — मसरूर।

—हुज़ूर, फ़रमाइए ?

— मशालें बुझा दो, मुझे नींद नहीं आती ।

—हुज़ूर, रात अँधेरी है ।

— कोई डर नहीं। तिलाये के जवान होशियार हैं ।

— सब की सब गुल कर दी जायं ?

— हां ।

—जैसी हुज़ूर की मर्ज़ी ।

ख़्वाजासरा चला गया और एक पल में सब की सब मशालें गुल हो गयीं, अँधेरा छा गया। थोड़ी देर में एक औरत ने शहज़ादी के ख़ेमे से निकलकर पूछा — मसरूर, सरकार पूछती हैं यह मशालें क्यों बुझा दी गयीं ?

मसरूर बोला — सिपहदार साहब की मर्ज़ी। तुम लोग होशियार रहना, मुझे उनकी नियत साफ़ नहीं मालूम होती।

३

क़ासिम उत्सुकता से व्यग्र होकर कभी लेटता था, कभी उठ बैठता था, कभी टहलने लगता था। बार-बार दरवाज़े पर आकर देखता, लेकिन पांचों ख़्वाजासरा देवों की तरह खड़े नज़र आते थे। क़ासिम को इस वक्त यही धुन थी कि शहज़ादी का दर्शन क्योंकर हो ? अंजाम की फ़िक्र, बदनामी का डर, और शाही गुस्से का ख़तरा उस पुरज़ोर ख़्वाहिश के नीचे दब गया था।

घड़ियाल ने एक बजाया। क़ासिम यों चौंक पड़ा गोया कोई अनहोनी बात हो गयी । जैसे कचहरी में बैठा हुआ कोई फ़रियादी अपने नाम की पुकार सुनकर चौंक पड़ता है। ओ हो, तीन ही घंटों में सुबह हो जायगी। ख़ेमे उखड़ जायंगे। लश्कर कूच कर देगा। वक़्त तंग है। अब देर करने की, हिचकिचाने की गुंजाइश नहीं । कल दिल्ली पहुंच जायंगे। अरमान दिल में क्यों रह जाये, किसी तरह इन हरामखोर ख़्वाजासराओं को चकमा देना चाहिए। उसने बाहर निकल आवाज़ दी — मसरूर ।

—हुज़ूर, फ़रमाइए ।

—होशियार हो न ?

—हुज़ूर, पलक तक नहीं झपकी ।

—नींद तो आती ही होगी, कैसी ठंडी हवा चल रही है ।

—जब हुज़ूर ही ने अभी तक आराम नहीं फ़रमाया तो गुलामों को क्योंकर नींद आती।

—मैं तुम्हें कुछ तकलीफ़ देना चाहता हूं।

—कहिए।

—तुम्हारे साथ पांच आदमी हैं, उन्हें लेकर ज़रा एक बार लश्कर का चक्कर लगा आओ। देखो, लोग क्या कर रहे हैं। अक्सर सिपाही रात को जुआ खेलते हैं। बाज़ आस-पास के इलाक़ों में जाकर ख़रमस्ती किया करते हैं। ज़रा होशियारी से काम करना।

मसरूर—मगर यहां मैदान ख़ाली हो जायगा।

क़ासिम—मैं तुम्हारे आने तक ख़बरदार रहूंगा।

—जो मर्ज़ी हुज़ूर।

क़ासिम—मैंने तुम्हें मोतबर समझकर यह ख़िदमत सुपुर्द की है, इसका मुआवज़ा, इंशाअल्लाह तुम्हें सरकार से अता होगा।

मसरूर ने दबी ज़बान से कहा—बन्दा आपकी यह चालें सब समझता है। इंशाअल्लाह सरकार से आपको भी इसका इनाम मिलेगा। और तब ज़ोर से बोला—आपकी बड़ी मेहरबानी है।

एक लमहे में पांचों ख़्वाजासरा लश्कर की तरफ़ चले। क़ासिम ने उन्हें जाते देखा। मैदान साफ़ हो गया। अब वह बेधड़क ख़ेमे में जा सकता था। लेकिन अब क़ासिम को मालूम हुआ कि अन्दर जाना इतना आसान नहीं है जितना वह समझा था। गुनाह का पहलू उसकी नज़र से ओझल हो गया था। अब सिर्फ़ ज़ाहिरी मुश्किलों पर निगाह थी।

४

क़ासिम दबे पांव शहज़ादी के ख़ेमे के पास आया, हालांकि दबे पांव आने की ज़रूरत न थी। उस सन्नाटे में वह अगर दौड़ता हुआ चलता तो भी किसी को ख़बर न होती। उसने ख़ेमे से कान लगाकर सुना, किसी की आहट न मिली। इत्मीनान हो गया। तब उसने कमर से चाकू निकाला और कांपते हुए हाथों से ख़ेमे की दो-तीन रस्सियां काट डालीं। अन्दर जाने का रास्ता निकल आया। उसने अन्दर की तरफ़ झांका। एक दीपक जल रहा था। दो बांदियां फ़र्श पर लेटी हुई थीं और शहज़ादी एक मख़मली गद्दे पर सो रही थी। क़ासिम की हिम्मत बढ़ी। वह सरककर अन्दर चला गया, और दबे पांव शहज़ादी के क़रीब जाकर उसके दिलफ़रेब हुस्न का

अमृत पीने लगा। उसे अब वह भय न था जो ख़ेमे में आते वक़्त हुआ था। उसने ज़रूरत पड़ने पर अपनी भागने की राह सोच ली थी।

क़ासिम एक मिनट तक मूरत की तरह खड़ा शहज़ादी को देखता रहा। काली-काली लटें खुलकर उसके गालों को छिपाये हुए थीं। गोया काले-काले अक्षरों में एक चमकता हुआ शायराना खयाल छिपा हुआ था। मिट्टी की इस दुनिया में यह मज़ा, यह घुलावट, यह दीप्ति कहां ? क़ासिम की आंखें इस दृश्य के नशे से चूर हो गयीं। उसके दिल पर एक उमंग बढ़ानेवाला उन्माद-सा छा गया, जो नतीजों से नहीं डरता था। उत्कण्ठा ने इच्छा का रूप धारण किया। उत्कण्ठा में अधीरता थी और आवेश, इच्छा में एक उन्माद और पीड़ा का आनन्द। उसके दिल में इस सुन्दरी के पैरों पर सर मलने की, उसके सामने रोने की, उसके क़दमों पर जान दे देने की, प्रेम का निवेदन करने की, अपने ग़म को बयान करने की एक लहर-सी उठने लगी। वासना के भंवर में पड़ गया।

५

क़ासिम आध घंटे तक उस रूप की रानी के पैरों के पास सर झुकाये सोचता रहा कि उसे कैसे जगाऊं। ज्योंही वह करवट बदलती वह डर के मारे थरथरा जाता। वह बहादुरी जिसने मुलतान को जीता था, उसका साथ छोड़े देती थी।

एकाएक कासिम की निगाह एक सुनहरे गुलाबपाश पर पड़ी जो क़रीब ही एक चौकी पर रक्खा हुआ था। उसने गुलाबपाश उठा लिया और एक मिनट खड़ा सोचता रहा कि शहज़ादी को जगाऊं या न जगाऊं ? सोने की डली पड़ी हुई देखकर हमें उसके उठाने में जो आगा-पीछा होता है, वही इस वक्त उसे हो रहा था। आखिर-कार उसने कलेजा मज़बूत करके शहज़ादी के कान्तिमान मुखमण्डल पर गुलाब के कई छींटे दिये। दीपक मोतियों की लड़ी से सज उठा।

शहज़ादी ने चौंककर आँखें खोलीं और क़ासिम को सामने खड़ा देखकर फ़ौरन मुंह पर नक़ाब खींच लिया और धीरे से बोली — मसरूर।

क़ासिम ने कहा — मसरूर तो यहां नहीं है, लेकिन मुझे भी अपना एक अदना जांबाज़ खादिम समझिए। जो हुक्म होगा उसकी तामील में बाल बराबर उज्र न होगा।

शहज़ादी ने नक़ाब और खींच लिया और ख़ेमे के एक कोने में जाकर खड़ी हो गयी।

क़ासिम को अपनी वाक्-शक्ति का आज पहली बार अनुभव हुआ। वह बहुत कम बोलनेवाला और गम्भीर आदमी था। अपने हृदय के भावों को प्रकट करने में उसे हमेशा झिझक होती थी लेकिन इस वक़्त शब्द बारिश की बूंदों की तरह उसकी ज़बान पर आने लगे। गहरे पानी के बहाव में एक दर्द का स्वर पैदा हो जाता है। बोला — मैं जानता हूं कि मेरी यह गुस्ताख़ी आपकी नाजुक तबीयत पर नागवार गुज़री है। हुजूर, इसकी जो सज़ा मुनासिब समझें उसके लिए यह सर झुका हुआ है। आह, मैं ही वह बदनसीब, काले दिल का इंसान हूं जिसने आपके बुजुर्ग बाप और प्यारे भाइयों के ख़ून से अपना दामन नापाक किया है। मेरे ही हाथों मुलतान के हज़ारों जवान मारे गये, सल्तनत तबाह हो गयी, शाही ख़ानदान पर मुसीबत आयी और आपको यह स्याह दिन देखना पड़ा। लेकिन इस वक़्त आपका यह मुजरिम आपके सामने हाथ बांधे हाज़िर है। आपके एक इशारे पर वह आपके क़दमों पर न्योछावर हो जायगा और उसकी नापाक ज़िन्दगी से दुनिया पाक हो जायगी। मुझे आज मालूम हुआ कि बहादुरी के परदे में वासना आदमी से कैसे-कैसे पाप करवाती है। यह महज़ लालच की आग है, राख में छिपी हुई। सिर्फ़ एक क़ातिल ज़हर है, खुशनुमा शीशे में बन्द! काश मेरी आंखें पहले खुली होतीं तो एक नामवर शाही ख़ानदान यों ख़ाक में न मिल जाता। पर इस मुहब्बत की शमा ने, जो कल शाम को मेरे सीने में रौशन हुई, इस अंधेरे कोने को रोशनी से भर दिया। यह उन रूहानी जज़्बात का फ़ैज़ है, जो कल मेरे दिल में जाग उठे, जिन्होंने मुझे लालच की क़ैद से आज़ाद कर दिया।

इसके बाद क़ासिम ने अपनी बेक़रारी और दर्दे दिल और वियोग की पीड़ा का बहुत ही करुण शब्दों में वर्णन किया, यहां तक कि उसके शब्दों का भंडार ख़त्म हो गया। अपना हाल कह सुनाने की लालसा पूरी हो गयी।

६

लेकिन वह वासना का बन्दी वहाँ से हिला नहीं। उसकी आरज़ूओं ने एक क़दम और आगे बढ़ाया। मेरी इस रामकहानी का हासिल क्या? अगर सिर्फ़ दर्दे दिल ही सुनाना था, तो किसी तसवीर को सुना सकता था। वह तसवीर इससे ज़्यादा ध्यान से और ख़ामोशी से मेरे ग़म की दास्तान सुनती। काश मैं भी इस रूप की रानी की मीठी आवाज़ सुनता, वह भी मुझसे कुछ अपने दिल का हाल कहती, मुझे मालूम होता कि मेरे इस दर्द के क़िस्से का उसके दिल पर क्या असर हुआ। काश मुझे मालूम होता कि जिस आग में मैं फुंका जा रहा हूं, कुछ उसकी आंच उधर

भी पहुंचती है या नहीं। कौन जाने यह सच हो कि मुहब्बत पहले माशूक़ के दिल में पैदा होती है। ऐसा न होता तो वह सब्र को तोड़नेवाली निगाह मुझ पर पड़ती ही क्यों ? आह, इस हुस्न की देवी की बातों में कितना लुत्फ़ आयेगा। बुलबुल का गाना सभी सुनते हैं पर फूल का गाना किसने सुना है। काश मैं वह गाना सुन सकता, उसकी आवाज़ कितनी दिलकश होगी, कितनी पाकीज़ा, कितनी नूरानी, अमृत में डूबी हुई और जो कहीं वह भी मुझ से प्यार करती हो तो फिर मुझसे ज़्यादा खुशनसीब दुनिया में और कौन होगा ?

इस खयाल से क़ासिम का दिल उछलने लगा। रगों में एक हरकत-सी महसूस हुई। इसके बावजूद कि बांदियों के जाग जाने और मसरूर की वापसी का धड़का लगा हुआ था, आपसी बातचीत की इच्छा ने उसे अधीर कर दिया, बोला—हुस्न की मलका, यह ज़ख़्मी दिल आपकी इनायत की नज़र का मुस्तहक़ है। कुछ उसके हाल पर रहम न कीजिएगा ?

शहज़ादी ने नक़ाब की ओट से उसकी तरफ़ ताका और बोली —जो खुद रहम का मुस्तहक़ हो, वह दूसरों के साथ क्या रहम कर सकता है ? क़ैद में तड़पते हुए पंछी से, जिसके न बाल हैं न पर, गाने की उम्मीद रखना बेकार है। मैं जानती हूं कि कल शाम को मैं दिल्ली के ज़ालिम बादशाह के सामने बांदियों की तरह हाथ बांधे खड़ी हूंगी। मेरी इज़्ज़त, मेरे रुतबे और मेरी शान का दारोमदार खानदानी इज़्ज़त पर नहीं बल्कि मेरी सूरत पर होगा। नसीब का हक़ पूरा हो जायगा। कौन ऐसा आदमी है जो इस ज़िन्दगी की आरज़ू रक्खेगा ? आह, मुलतान की शहज़ादी आज एक ज़ालिम, चालबाज़, पापी आदमी की वासना का शिकार बनने पर मजबूर है ! जाइए, मुझे मेरे हाल पर छोड़ दीजिए। मैं बदनसीब हूँ, ऐसा न हो कि मेरे साथ आपको भी शाही गुस्से का शिकार बनना पड़े। दिल में कितनी ही बातें हैं मगर क्यों कहूं, क्या हासिल ? इस भेद का भेद बना रहना ही अच्छा है। आपमें सच्ची बहादुरी और खुददारी का जौहर है। आप दुनिया में नाम पैदा करेंगे, बड़े-बड़े काम करेंगे, खुदा आपके इरादों में बरकत दे —यही इस आफ़त की मारी हुई औरत की दुआ है। मैं सच्चे दिल से कहती हूं कि मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं है। आज मुझे मालूम हुआ कि मुहब्बत बैर से कितनी पाक होती है। वह उस दामन में मुंह छिपाने से भी परहेज़ नहीं करती जो उसके अज़ीज़ों के खून से लिथड़ा हुआ हो। आह यह कम्बख्त दिल उबला पड़ता है। अपने कान बन्द कर लीजिए, वह अपने आपे में नहीं है, उसकी बातें न सुनिए। सिर्फ़ आपसे यही बिनती है कि इस ग़रीब

को भूल न जाइएगा। मेरे दिल में उस मीठे सपने की याद हमेशा ताज़ा रहेगी, हरम की क़ैद में यही सपना दिल को तसकीन देता रहेगा, इस सपने को तोड़िए मत। अब खुदा के वास्ते यहाँ से जाइए, ऐसा न हो कि मसरूर आ जाय, वह एक ही ज़ालिम है। मुझे अंदेशा है कि उसने आपको धोखा दिया, अजब नहीं कि यहीं कहीं छुपा बैठा हो, उससे होशियार रहिएगा। ख़ुदा हाफ़िज़ !

७

क़ासिम पर एक बेसुधी की-सी हालत छा गयी। जैसे आत्मा का गीत सुनने के बाद किसी योगी की होती है। उसे सपने में भी जो उम्मीद न हो सकती थी, वह पूरी हो गयी थी। गर्व से उसकी गर्दन की रगें तन गयीं, उसे मालूम हुआ कि दुनिया में मुझसे ज़्यादा भाग्यशाली दूसरा नहीं है। मैं चाहूं तो इस रूप की बाटिका की बहार लूट सकता हूं, इस प्याले से मस्त हो सकता हूं। आह, वह कितनी नशीली कितनी मुबारक ज़िन्दगी होगी ! अब तक क़ासिम की मुहब्बत ग्वाले का दूध थी, पानी से मिली हुई; शहज़ादी के दिल की तड़प ने पानी को जलाकर सच्चाई का रंग पैदा कर दिया। उसके दिल ने कहा — मैं इस रूप की रानी के लिए क्या कुछ नहीं कर सकता ? कोई ऐसी मुसीबत नहीं है जो झेल न सकूं, कोई ऐसी आग नहीं, जिसमें कूद न सकूं, मुझे किसका डर है ! बादशाह का ? मैं बादशाह का गुलाम नहीं, उसके सामने हाथ फैलानेवाला नहीं, उसका मुहताज नहीं। मेरे जौहर की हर एक दरबार में क़द्र हो सकती है। मैं आज इस गुलामी की ज़ंजीर को तोड़ डालूंगा और उस देश में जा बसूंगा, जहां बादशाह के फ़रिश्ते भी पर नहीं मार सकते। हुस्न की नेमत पाकर अब मुझे और किसी चीज़ की इच्छा नहीं। अब अपनी आरज़ुओं का क्यों गला घोटूं ? कामनाओं को क्यों निराशा का ग्रास बनने दूं ? उसने उन्माद की-सी स्थिति में कमर से तलवार निकाली और जोश के साथ बोला — जब तक मेरे बाज़ुओं में दम है, कोई आपकी तरफ़ आंख उठाकर देख भी नहीं सकता। चाहे वह दिल्ली का बादशाह ही क्यों न हो ! मैं दिल्ली के कूचे और बाज़ार में खून की नदी बहा दूंगा, सल्तनत की जड़ें हिला दूंगा, शाही तख़्त को उलट-पलट कर रख दूंगा, और कुछ न कर सकूंगा तो मर मिटूंगा। पर अपनी आँखों से आपकी यह ज़िल्लत न देखूंगा।

शहज़ादी आहिस्ता-आहिस्ता उसके क़रीब आयी और बोली — मुझे आप पर पूरा भरोसा है, लेकिन आपको मेरी ख़ातिर से ज़ब्त और सब्र करना होगा।

आपके लिए मैं महलसरा की तकलीफ़ें और ज़ुल्म सब सह लूंगी। आपकी मुहब्बत ही मेरी ज़िन्दगी का सहारा होगी। यह यक़ीन कि आप मुझे अपनी लौंडी समझते हैं, मुझे हमेशा सम्हालता रहेगा। कौन जाने तक़दीर हमें फिर मिलाये।

क़ासिम ने अकड़कर कहा — आप दिल्ली जायें ही क्यों? हम सुबह होते-होते भरतपुर पहुंच सकते हैं।

शहज़ादी— मगर हिन्दोस्तान के बाहर तो नहीं जा सकते। दिल्ली की आंख का काँटा बनकर मुमकिन है हम जंगलों और वीरानों में ज़िन्दगी के दिन काटें पर चैन नसीब न होगा। असलियत की तरफ़ से आंखें न बन्द कीजिए, ख़ुदा ने आपको बहादुरी दी है, पर तेग़े इस्फ़हानी भी तो पहाड़ से टकराकर टूट ही जायगी।

क़ासिम का जोश कुछ धीमा हुआ। भ्रम का परदा नज़रों से हट गया। कल्पना की दुनिया में बढ़-बढ़कर बातें करना आदमी का गुण है। क़ासिम को अपनी बेबसी साफ़ दिखायी पड़ने लगी। बेशक मेरी यह लनतरानियां मज़ाक़ की चीज़ हैं। दिल्ली के शाह के मुक़ाबिले में मेरी क्या हस्ती है? उनका एक इशारा मेरी हस्ती को मिटा सकता है। हसरत-भरे लहजे में बोला — मान लीजिए, हमको जंगलों और वीरानों ही में ज़िन्दगी के दिन काटने पड़ें तो क्या? मुहब्बत करनेवाले अंधेरे कोने में भी चमन की सैर का लुत्फ़ उठाते हैं। मुहब्बत में वह फ़क़ीरों और दरवेशों जैसा अलगाव है, जो दुनिया की नेमतों की तरफ़ आंख उठाकर भी नहीं देखता।

शहज़ादी — मगर मुझसे यह कब मुमकिन है कि अपनी भलाई के लिए आपको इन ख़तरों में डालूं? मैं शाहे दिल्ली के ज़ुल्मों की कहानियां सुन चुकी हूं, उन्हें याद करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ख़ुदा वह दिन न लाये कि मेरी वजह से आपका बाल भी बांका हो। आपकी लड़ाइयों के चर्चे, आपकी ख़ैरियत की ख़बरें, उस क़ैद में मुझको तसकीन और ताक़त देंगी। मैं मुसीबतें झेलूंगी और हँस-हँसकर आग में जलूंगी और माथे पर बल न आने दूंगी। हां, मैं शाहे दिल्ली के दिल को अपना बनाऊंगी, सिर्फ़ आपकी ख़ातिर से ताकि आपके लिए मौक़ा पड़ने पर दो-चार अच्छी बातें कह सकूं।

८

लेकिन क़ासिम अब भी वहां से न हिला। उसकी आरज़ूएं उम्मीद से बढ़कर पूरी होती जाती थीं, फिर हवस भी उसी अन्दाज़ से बढ़ती जाती थी। उसने सोचा

अगर हमारी मुहब्बत की बहार सिर्फ़ कुछ लमहों की मेहमान है. तो फिर उन मुबारक लमहों को आगे की चिन्ता से क्यों बेमज़ा करें। अगर तक़दीर में इस हुस्न की नेमत को पाना नहीं लिखा है, तो इस मौक़े को हाथ से क्यों जाने दूं? कौन जाने फिर मुलाकात हो या न हो? यह मुहब्बत रहे या न रहे? बोला — शहज़ादी, अगर आपका यही आख़िरी फ़ैसला है, तो मेरे लिए सिवाय हसरत और मायूसी के और क्या चारा है? दुख होगा, कुढ़ूंगा, पर सब्र करूंगा। अब एक दम के लिए यहां आकर मेरे पहलू में बैठ जाइए ताकि इस बेक़रार दिल को तस्कीन हो। आइए, एक लमहे के लिए भूल जायं कि जुदाई की घड़ी हमारे सर पर खड़ी है। कौन जाने यह दिन कब आयें? शान-शौकत ग़रीबों की याद भुला देती है, आइए एक घड़ी मिलकर बैठें। अपनी जुल्फ़ों की अम्बरीं ख़ुशबू से इस जलती हुई रूह को तरावट पहुंचाइए। यह बांहें, गलों की ज़ंजीरें बन जायं। अपने बिल्लौर जैसे हाथों से प्रेम के प्याले भर-भरकर पिलाइए। साग़र के ऐसे दौर चलें कि हम छक जायं। दिलों पर सुरूर का ऐसा गाढ़ा रंग चढ़े जिस पर जुदाई की तुर्शियों का असर न हो। वह रंगीन शराब पिलाइए जो इस झुलसी हुई आरज़ूओं की खेती को सींच दे और यह रूह की प्यास हमेशा के लिए बुझ जाये।

मए अर्ग़वानी के दौर चलने लगे। शहज़ादी की बिल्लौरी हथेली में सुर्ख़ शराब का प्याला ऐसा मालूम होता था जैसे पानी की बिल्लौरी सतह पर कमल का फूल खिला हो। क़ासिम दोनों दुनिया से बेख़बर प्याले पर प्याले चढ़ाता जाता था जैसे कोई डाकू लूट के माल पर टूटा हुआ हो। यहां तक कि उसकी आंखें लाल हो गयीं, गर्दन झुक गयी, पी-पीकर मदहोश हो गया। शहज़ादी की तरफ़ वासना-भरी आंखों से ताकता हुआ बाँहें खोले बढ़ा कि घड़ियाल ने चार बजाये और कूच के डंके की दिल छेद देनेवाली आवाज़ें कान में आयीं। बाँहें खुली की खुली रह गयीं। लौंडियाँ उठ बैठीं, शहज़ादी उठ खड़ी हुई और बदनसीब क़ासिम दिल की आरज़ूएं लिये ख़ेमे से बाहर निकला, जैसे तक़दीर के फ़ौलादी पंजे ने उसे ढकेलकर बाहर निकाल दिया हो। जब अपने ख़ेमे में आया तो दिल आरज़ूओं से भरा हुआ था। कुछ देर के बाद आरज़ूओं ने हवस का रूप भरा और अब बाहर निकला तो दिल हसरतों से पामाल था, हवस का मकड़ी-जाल उसकी रूह के लिए लोहे की ज़ंजीर बना हुआ था।

९

शाम का सुहाना वक़्त था। सुबह की ठण्डी-ठण्डी हवा के सागर में धीरे-

धीरे लहरें उठ रही थीं। बहादुर, क़िस्मत का धनी क़ासिम मुलतान के मोर्चे को सर करके गर्व की मदिरा पिये उसके नशे में चूर चला आता था। दिल्ली की सड़कें बन्दनवारों और झंडियों से सजी हुई थीं। गुलाब और केवड़े की खुशबू चारों तरफ़ उड़ रही थी। जगह-जगह नौबतखाने अपना सुहाना राग अलाप रहे थे। शहरपनाह के अन्दर दाख़िल होते ही सारे शहर में एक शोर मच गया। तोपों ने अगवानी की धनगरज सदाएँ बुलन्द कीं। ऊपर झरोखों में नगर की सुन्दरियां सितारों की तरह चमकने लगीं। क़ासिम पर फूलों की बरखा होने लगी। वह शाही महल के क़रीब पहुंचा तो बड़े-बड़े अमीर-उमरा उसकी अगवानी के लिए क़तार बांधे खड़े थे। इस शान से वह दीवाने ख़ास तक पहुंचा। उसका दिमाग़ इस वक्त सातवें आसमान पर था। चाव-भरी आंखों से ताकता हुआ बादशाह के पास पहुंचा और शाही तख़्त को चूम लिया। बादशाह मुस्कराकर तख़्त से उतरे और बाँहें खोले हुए क़ासिम को सीने से लगाने के लिए बढ़े। क़ासिम आदर से उनके पैरों को चूमने के लिए झुका कि यकायक उसके सिर पर एक बिजली-सी गिरी। बादशाह का तेज़ ख़ंजर उसकी गर्दन पर पड़ा और सर तन से जुदा होकर अलग जा गिरा। ख़ून के फ़ौवारे बादशाह के क़दमों की तरफ़, तख़्त की तरफ़ और तख़्त के पीछे खड़े होनेवाले मसरूर की तरफ़ लपके, गोया कोई झल्लाया हुआ आग का सांप है।

घायल शरीर एक पल में ठंडा हो गया। मगर दोनों आंखें हसरत की मारी हुई दो मूरतों की तरह देर तक दीवारों की तरफ़ ताकती रहीं। आख़िर वह भी बन्द हो गयीं। हवस ने अपना काम पूरा कर दिया। अब सिर्फ़ हसरत बाक़ी थी जो बरसों तक दीवाने ख़ास के दरोदीवार पर छायी रही और जिसकी झलक अभी तक क़ासिम के मज़ार पर घास-फूस की सूरत में नज़र आती है।

—'प्रेम बत्तीसी' से